उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग
एवं
संन्यासाधिकार विमर्श

चित्रकूटस्थ-तुलसीपीठाधीश्वर-स्वामिश्रीरामभद्राचार्य-पक्षधरखण्डन

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.
ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2020
Third Edition - 2022

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews. The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references ["Content"]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

All Rights Reserved – Author

उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग
एवं
संन्यासाधिकार विमर्श

चित्रकूटस्थ-तुलसीपीठाधीश्वर-स्वामिश्रीरामभद्राचार्य-पक्षधरखण्डन

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

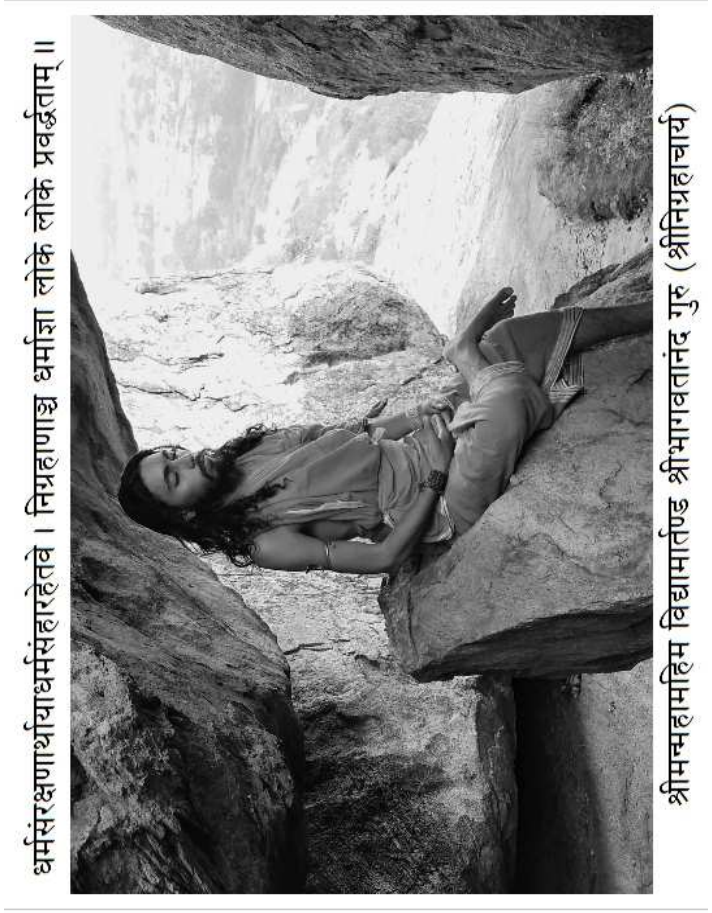
धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे । निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ॥
श्रीमन्महामहिम विद्यामार्तण्ड श्रीभागवतानंद गुरु (श्रीनिग्रहाचार्य)

विषय सूची

विषय			पृष्ठ
• शास्त्रज्ञ विद्वज्जनों के आशीर्वचन	----	----	06
• पुरोवाक्	----	----	24
1. प्रथम भाग	----	----	31
2. द्वितीय भाग	----	----	91
3. तृतीय भाग	----	----	112
4. चतुर्थ भाग	----	----	121
5. पञ्चम भाग	----	----	154
6. षष्ठ भाग	----	----	181
7. सप्तम भाग	----	----	211
8. अष्टम भाग	----	----	242
9. नवम भाग	----	----	279
10. दशम भाग	----	----	302

शास्त्रज्ञ विद्वज्जनों के आशीर्वचन

(०१)

श्रीरामानन्द एवं श्रीरामानुज सम्प्रदाय में कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है। भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य जी एवं भगवान् श्रीरामानुजाचार्य जी, दोनों का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही है अतः भगवान् रामानन्दाचार्य ने कोई भाष्य की रचना नहीं की क्योंकि सिद्धान्त एक ही है। उन्होंने पूर्वाचार्य के मत का ही प्रसार किया अतएव हमारे एवं श्रीरामभद्राचार्य जी के बीच सैद्धान्तिक मतभेद की तो कोई बात ही नहीं है। दो दशक पूर्व हमने 'सीता निर्वासन नहीं' नामक ग्रन्थ पढ़ा था जो सीताजी के निर्वासन को लेकर था।

ये सब उनका व्यक्तिगत मत हो सकता है और पौराणिक, महाभारतीय एवं वाल्मीकीयरामायणगत विषयों का अपने ढंग से विवेचन भी हो सकता है किन्तु हमारे आचार्य, यथा श्रीलोकाचार्यस्वामी जी जो रहस्यग्रन्थों के महत्वपूर्ण आचार्य हैं, वे श्रीवचनभूषणम् में महालक्ष्मी (श्रीजानकी) का महाविष्णु (श्रीरामचन्द्र) से तीन बार वियोग स्वीकार करते हैं - लक्ष्म्याः प्रथमविश्लेषः स्वकृपाप्रकाशनार्थम्। रावण के द्वारा हरण के समय सीताजी का श्रीराघवेन्द्रसरकार से प्रथम वियोग हुआ, कृपा के प्रकाशनार्थ। रावणवध के उपरान्त राक्षसियों को चित्रबद्ध करके दण्डित करने को उद्यत श्रीहनुमान् जी को सीताजी ऐसा करने से कृपापूर्वक रोक देती हैं। पूर्वकाल में अक्षम्य अपराधी इन्द्रपुत्र जयन्त को भी कृपापूर्वक क्षमा कर देती हैं।

निर्वासन के समय दूसरी बार सीता जी के वियोग के सन्दर्भ में श्रीवचनभूषणकार उसे पारतंत्रप्रकाशनार्थ कहते हैं। मैं तो कहता हूँ कि श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में यह प्रसंग जब उत्तरकाण्ड में प्रारम्भ होता है, वहां से लेकर लक्ष्मण जी के लौट कर आने एवं श्रीरामजी से पुनः बातचीत करने तक यह विषय बारम्बार सहृदय लोगों को पढना चाहिये। इसको पढने से वस्तुतः पता चलता है कि भगवती सीताजी का आदर्श क्या था ! वह आदर्श बहुत ही महत्वपूर्ण था और उस आदर्श की स्थापना ही नहीं हो पाती अगर यह 'सीताजी का द्वितीय विश्लेष' भगवान् से नहीं होता। भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकार के आदर्श की स्थापना तो पूर्णतया हो चुकी थी किन्तु भगवती जनकनन्दिनी जानकी के आदर्श की स्थापना तो इसी में है। इसीलिए मैं यही कहूँगा कि यह सब विषय बड़े गम्भीर हैं और

आचार्यों ने इसका अनुसन्धान किया है। अपने प्रातिभप्रागल्भ्य के बल पर हम शास्त्रीय, स्थापित एवं अनुष्ठित परम्पराओं को, विचारों को इस तरह से उपेक्षित नहीं कर सकते हैं, तिरस्कृत और अस्वीकृत नहीं कर सकते हैं। उपजीव्यविरोध का परित्याग करके, पूर्वाचार्यों के मत के अनुसार चलते हुए, भगवान् श्रीरामानुजाचार्य जी ने स्वतन्त्र सामर्थ्य होने पर भी ब्रह्मसूत्र की बोधायन वृत्ति प्राप्त करके ही श्रीभाष्य का व्याख्यान किया।

यह विचारणीय विषय है, केवल वाल्मीकीय रामायण में ही सीतनिर्वासन का प्रसंग नहीं है, अपितु अन्यत्र भी पुराणों में इसके सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। हम सभी आचार्यों की एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी यह बनती है कि भगवान् के प्रति, भगवान् के परमप्रियप्राणतमा श्रीजनकनन्दिनी जानकी जी के प्रति, भगवान् के श्रीरामकृष्णवामननृसिंहादि समस्त स्वरूपों के प्रति जो संसार में धारणा है, उसे हम किसी एक बात को सिद्ध करने के चक्कर में छिन्न-भिन्न न करें अन्यथा हमसे बहुत बड़ा अपराध हो जायेगा। इसीलिए, हमें लोगों की भावना को विकृत नहीं करना चाहिये। भगवान् वाल्मीकि भी कहते हैं -

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।

अर्थात् प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु ही श्रीराम के रूप में आते हैं।
वेदव्यास जी कहते हैं -

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥

भगवान् रामानुजाचार्य जी तो अवतार एवं अवतारी में कोई भेद ही नहीं मानते, अपितु एकत्व एवं एकनिष्ठा स्वीकार करते हैं। कोई भेद करता है तो वह अपराधी है, यह भी स्वीकार करते हैं।

इस विषय पर निष्पक्ष शास्त्रीय चिन्तन होना बहुत आवश्यक है। पूर्वाग्रहग्रहीत चिन्तन न तो जगत् का कल्याण कर सकेगा और न स्वयं का कल्याण कर सकेगा। तो विद्वानों की विचारपद्धति, विद्वानों की शास्त्रीय परम्परा के अनुसार विवेचनापद्धति सर्वदा-सर्वथा-सर्वत्र स्तुत्य है। महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास एवं पूर्वाचार्यों से अविरुद्ध अर्थ रखते हुए उनके

सिद्धांतों को प्रकाशित करने के लिए यदि अपने प्रतिभाप्रागल्भ्य के बल पर हम उसका निर्वचन करते हैं तो उन ऋषियों एवं आचार्यों का भी आशीर्वाद हमें मिलता है। सनातन धर्म में शास्त्रार्थ की परम्परा रही है। यह विचारणापद्धति तो भारतीय संस्कृति की अमूल्य सम्पत्ति है। लोकतंत्र में वाणी चलती है, लेखनी चलती है, तलवार नहीं चलती, बलप्रयोग नहीं होता है। यही लोकतंत्र की विशेषता है एवं यही शास्त्रतंत्र की भी विशेषता है।

प्राचीनकाल में शास्त्रार्थ की सभायें होती थीं। लीलापूर्वक किसी कार्य को करने के लिए अलग से कोई पक्ष लेकर भी प्रतिभा का व्यायाम किया जा सकता है किन्तु उसे सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है। वाल्मीकीय रामायण में पाठक देखें कि महर्षि जाबालि ने चित्रकूट में भगवान् श्रीराम को लौटाने के लिये जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, श्रीराम जी ने क्रुद्ध होकर जाबालि से कहा कि आपका कथन अनुचित है। अन्ततः भगवान् को क्रुद्ध जानकर वशिष्ठ जी को कहना पड़ा -

जाबालिरपि जानीते धर्मस्यास्य (लोकस्यास्य) गतागतिम्।
निवर्त्तयितुकामस्तु त्वामेतद्वाक्यमुक्तवान्॥

जाबालि महर्षि भी धर्म के तत्त्व को जानते हैं, स्नेहप्रस्कन्नमनसा ... स्नेह में बहकर आपको लौटाने के लिये इन्होंने ऐसा कहा है। अर्थात् शास्त्रार्थ की परम्परा में प्रतिभा का प्रकाशन करने के लिये उस समय कोई प्रतिभा के बल पर कुछ कहे तो वह मात्र प्रतिभा का व्यायाम है। अच्छी बात है, किन्तु उसी को सिद्धान्त मान लेना उचित नहीं है।

बहुत से पूर्वाचार्यों के ऐसे विचार हैं, जगद्धिताय सर्वजनसुखाय हैं, उनका सम्मान करें, श्रुतिस्मृतिपुराणविरोध न होने पावे एवं श्रुतिस्मृतिपुराणनिष्ठ जीवन जीने वाले शिष्ट आचार्यों से भी विरोध न हो सके, वेदानुमोदित स्मृतियों एवं स्मृत्यनुमोदित पुराणों से विरोध न हो सके, इस तरह हमें लोगों के बीच में विचार प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। कोई भी विचार है तो उसका समाधान विचारों के बल पर करना ही शास्त्रोचित पद्धति है। लाठी के बल पर समाधान कैसे होगा ? व्यवधान अवश्य हो सकता है। मैं यही सोचता हूँ कि श्रीभागवतानंद जी के लिये शास्त्रीय परम्परा, महर्षि वाल्मीकि की विचारणा, भगवान् वेदव्यास की भावना, वेदानुमोदित शास्त्रों एवं वेदों के विपरीत न जाती हुई, सनातन

संस्कृति का सर्वथा-सर्वदा-सर्वत्र प्रचार प्रसार करते हुए इस विचारसरणी के माध्यम से, जिसमें कोई हठ या दुराग्रह न हो, शास्त्रीय मन्तव्यों का परिपूर्ण समर्थन एवं परस्पर विरुद्ध बातों का भी समन्वय करते हुए आज समाज में परस्पर सन्धायपद्धति का अनुसन्धान करते हुए विचार प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

मैं पूज्य तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज का अग्रज के रूप में, मात्र अवस्था अधिक होने के कारण ही नहीं, अपितु शास्त्रों में उनके श्रम को और उनके द्वारा किये गये व्याकरण के कार्यों को देखते हुए हृदय से उनका सम्मान करता हूँ और उनकी उन सभी बातों का समर्थन करता हूँ जिसमें पूर्वाचार्यों का किसी भी प्रकार से सिद्धान्तविरोध न हो। मूलतः भगवान् वेद एवं वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में षट्काण्डानि तथोत्तरम्, तथोत्तरम् के द्वारा उत्तरकाण्ड को स्वीकार किया जाता है और आचार्यों ने उसे स्वीकार किया है, पूरे अंश पर व्याख्यान भी किया है।

प्रतिभा के बल पर तो कोई भी बात किसी भी तरह से कही जा सकती है, वह अलग विषय है। किन्तु पूर्वाचार्यों ने क्या स्वीकार किया है, इसे ध्यान में रखकर उसे भी उसी प्रतिभा के बल पर सिद्ध किया जाये तो वह प्रतिभा वन्दनीया, ध्येया, स्वीकार्या, अनुष्ठेया होगी और जगत्कल्याणकारिणी भी होगी। मैं अपनी बात रखते हुए, अपने विचारों को शिष्टाचारपूर्वक प्रस्तुत करने वाले श्रीभागवतानंद गुरुजी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि ये साहित्यसर्जन में लगे हुए हैं, ये इसी प्रकार से साहित्यसर्जन करते रहें। आचार्यों की सन्निधि में भी पहुँच करके विचार-विमर्श करते रहें एवं उन विमर्शों को यथावत् लिपिबद्ध भी करते रहें। किसी से कोई मतभेद है तो दूरभाष से भी विचार विमर्श करना अधिक उपयुक्त एवं समाज के लिये लाभदायक भी होता है क्योंकि लेखबद्ध शास्त्रार्थों की परम्परा कभी समाप्त नहीं होती है, वह चलती ही रहती है, आजतक चल रही है।

कलहरहित, परस्पर मनोमालिन्यरहित एवं शिष्टाचारानुमोदित किसी भी प्रकार की विचारपरम्परा यदि चल रही है, चलती है तो उसका स्वागत होना चाहिये। भूमिका को पढने से जैसा पता चला, उस सन्दर्भ में यही कहूँगा कि विचारपद्धति एवं विचारपरम्परा को बलपूर्वक दबाना उचित नहीं है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपने विचारों, पूर्वाचार्यों के विचारों एवं पूर्वर्षियों के विचारों को जगत् में पहुंचाने वाले विचारकों का हृदय से धन्यवाद करते हुए यह शुभकामना व्यक्त करता हूँ कि उदीयमान विचारक श्रीभागवतानंद जी,

जिनके नाम के आगे 'गुरु' शब्द का प्रयोग होता है, ऐसे श्रीभागवतानंद गुरु जो कह रहे हैं और हमारे अग्रज 'जगद्गुरु' श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज जो कह रहे हैं, उन बातों में, केवल तलवार चलाने वाली, बलप्रयोग करने वाली बातें छोड़ करके सभी बातें विचार की पद्धति से स्वीकार की जाती हैं। बात ऐसी है कि शास्त्रों की विचारपद्धति, शास्त्रीय परम्परा, शास्त्र चिन्तन, यह सब विद्वानों का पाथेय है, इसके बिना विद्वान् रहेंगे कैसे ? और पाथेय तो होना भी चाहिये, आवश्यक भी है। इसमें शास्त्र ही न्यायालय है।

शास्त्रों के प्रमाणबल और प्रमाणसंख्या को, उनके अर्थ को हम अपनी बुद्धि के बल पर बदल दें, केवल व्याकरण की व्युत्पत्ति के बल पर मूल से विरुद्ध मनमाना अर्थ कर दें तो यह अव्यवस्था की बात हो जायेगी, समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसा करना प्रतिभा हो सकती है, सिद्धान्त नहीं। प्रतिभा के भाव को सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है। मैं इन सभी विचारकों का हृदय से अभिनन्दन करते हुए ग्रन्थकर्ता के प्रति भगवान् श्रीकोसलेश की सन्निधि से यह विज्ञापन करना चाहता हूँ कि भगवान् उन्हें श्रुतिस्मृति पुराणप्रतिपादित सिद्धान्तों, चरित्रों, आख्यानों के माध्यम से भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने, पुष्ट करने की शक्ति प्रदान करें।

अस्तु ...

श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य 'विद्याभास्कर' जी महाराज
श्रीकोसलेशसदन, श्रीअयोध्याधाम

(०२)

श्रीभागवतानंद जी साधना एवं कीर्ति में बहुत आगे निकल चुके हैं, भारतवर्ष के श्रेष्ठ विद्वानों में गणना हो चुकी है। धन एवं पद से ही कोई बड़ा नहीं होता कि उसकी बात को ही प्रामाणिक माना जाए। श्रीभागवतानंद जी की सरलता, एकाग्रता एवं स्पष्ट वक्तव्य अद्भुत है। वे हिन्दुओं के लिए गौरव हैं। जिस २३ वर्ष की आयु में युवक-युवतियां नशा एवं फोन की पतनकारिणी वार्ता में व्यस्त रहते हैं, साथ ही आयु, यौवन, समय एवं धन के नाश में लगे रहते हैं, उस अवस्था में श्रीभागवतानंद जी अठारह-अठारह घण्टे धार्मिक लेख लिखते हैं, यह अद्भुत बात है। कितनी धर्मनिष्ठा है, शास्त्रों के संरक्षण के प्रति दृढ़ सङ्कल्प है ! उन लोगों की बुद्धि का स्तर क्या होगा जो धर्म की ओट में धन, पद, प्रतिष्ठा के लिए धर्मग्रन्थों को ही प्रक्षिप्त बताने लगे हैं, यह समाज को सोचना पड़ेगा। शास्त्र की रक्षा में तत्पर श्रीभागवतानंद गुरु देश, धर्म, संस्कृति के प्रति समर्पित, भौतिक वासना एवं

सुविधाओं का बलिदान करके तपस्या एवं अध्ययन में रत हैं। श्रीभागवतानंद गुरु अल्प अवस्था में, अविवाहित, निडर, निर्भीक, अदम्य साहस के साथ सभी षड्दर्शन ,षड्सम्प्रदाय के प्रति समान, समसरता का भाव रखते हुए श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्रादि शास्त्रों का गहनतम अवलोकन करके स्वयं के युक्तियुक्त तर्कसंगत वाक्यों के द्वारा शास्त्रों के विषय में भ्रमित समाज को सवारने में लगे हैं। ऐसे व्यक्तित्व के प्रति भी कुछ अविवेकी जन अपशब्द, अभद्रता का व्यवहार कर रहे हैं, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इस प्रकरण को देखने पर अनायास ही, श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी के गीताभाष्य का वचन स्मरण हो आता है - ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद्वैदिको धर्मः। ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म सुरक्षित रह सकता है, यह उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

श्रीदण्डी स्वामी ब्रजेश्वराश्रम जी महाराज

(०३)

'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' नामक ग्रंथ का प्रकाशन स्वनामधन्य श्रीभागवतानंद गुरु जी के द्वारा कराया जा रहा है, यह आनन्द का विषय है। जो भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा के मूलाधार एवं मूल स्रोत अपौरुषेय ग्रंथ वेद हैं, जो भगवान् स्वयं वेदवेद्य हैं, जिनकी जीवनगाथा महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायणरूपी गायत्रीभाष्य के रूप में समाज को दिया है, उसमें उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त कहना महान् असह्य अपराध है। आधुनिक समाज में बौद्धिक क्षमता को दृष्टिगत करते हुए परम भागवत श्रीभागवतानंद गुरु के अथक प्रयास से 'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' नामक खण्डनग्रन्थ का प्रणयन किया गया है जिसमें सभी वेदतन्त्रपुराणोपनिषदादि ग्रंथों से सप्रमाण संग्रह करके अत्यन्त सुन्दर प्रस्तुति दी गयी है। अतः समाज में सीतानिर्वासन एवं शम्बूकवध आदि विषयों को लेकर जो विकृति एवं भ्रम का प्रसार किया जा रहा है, उसका सुगमता से निराकरण हो सकेगा एवं सभी जन लाभान्वित हो सकेंगे। यह अत्यन्त सराहनीय कार्य है जो जिज्ञासुओं के भ्रमभंजन के एक उत्कृष्ट साधन के रूप में उपलब्ध हो रहा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि उदार पाठकगण ग्रन्थकार के स्तुत्य प्रयास का हृदय से स्वागत करेंगे। भगवान् श्रीराजराजेश्वर से प्रार्थना है कि इनके इस सुप्रयास को सर्वथा सफल बनायें। मेरी यही शुभकामना है। जय श्रीमन्नारायण !

श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीस्वामी विश्वेशप्रपन्नाचार्य जी महाराज
श्रीसुग्रीवकिला, श्रीअयोध्याधाम

(०४)

आपका लेख पढने पर बहुत समयोपरान्त किसी में इतनी तीव्र शास्त्रनिष्ठा का दर्शन होने की प्रतीति हुई। परमपूज्य महाराजश्री धर्मसम्राट् करपात्री स्वामी जी के पथ का अंशतोऽपि अनुगमन हम कर सकें, यही प्रयास है। आपमें वह झलक दिखती है, जिसे खोने की परवाह नहीं, पाने को इस जग में कुछ धरा नहीं। आपके लिए व्यंजनावृत्ति के आश्रय से खण्डनीय का संकेत करना अधिक समीचीन होगा जैसा कि हमारे आचार्यों की शैली है। यह एक कटु सत्य है कि स्थापित लोग कभी भी किसी भी क्षेत्र में नये प्रतिभाशाली से आशङ्कित होकर उसे जमने नहीं देते। स्वघोषित अनुचर-पोषित अनैतिक सत्ताधीश सर्वत्र हैं। आपका लेख अतीव सारगर्भित, विस्तृत, प्रामाणिक, समाधानोन्मुख है, जिसे मैंने समग्र पढ़ा है। सैकडों वर्षों में कोई कोई इतना दुर्धर्ष-लेखनकलावित् जन्म लेता है। नियति आपसे अवश्य महान् कार्य कराएगी।

आपकी लेखनी में एक विलक्षण प्रहार की क्षमता है। वेदभगवान् आपकी रक्षा करेंगे। अतिश्रमसाध्य प्रमाणान्वेषण, तदनुशीलन चिंतन तथा टंकण, वह भी इतने विशालस्तर पर, यह अद्भुत प्रतिभा है। आज के स्वार्थसाधनपरायण - प्रचुरजनसम्मर्द में ऐसी अदम्य, अडिग, निर्वैर, निर्भय शास्त्रनिष्ठा वाले आपको पाकर मां भारती इठलाती होगी। शास्त्रोपासक ऋषिजन प्रमुदित होते होंगे। सनातनधर्म सचमुच भगवद्रक्षित धर्म है। इसका पोषण करने हेतु धरा पर विभूति आती ही रही हैं एवं आगे भी सदैव आती रहेंगी। आप भी, सनातन के सजग प्रहरी, किसी महापुरुष से कम नहीं है। भविष्य आपकी तेजस्विता के धवल प्रकाश से प्रकाशवान् दिख रहा है। आप सनातन धर्म की अनुपम धरोहर हैं। हमारी सर्वविध-शुभाशंसा सदैव आपके साथ है।

समर्थश्री त्र्यम्बकेश्वर चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज

(०५)

बालोऽहं जगदानन्दो न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥

जय श्रीमन्नारायण !

भारतवर्ष में सदैव प्रतिभाओं का उदय होता रहा है। उसी श्रृंखला में आदर तथा गम्भीरता के साथ यदि देखा जाए, तो झारखण्ड - बोकारो के निवासी एवं भारत के गौरव श्रीभागवतानंद गुरुजी का नाम भी आता है जिनकी लेखनी सदैव शास्त्रीय प्रमाणों की

शोधपरक रक्षा करती है। किसी के भी बाह्य वैभव को देखकर आप उसके शास्त्रविरुद्ध कृत्य या वक्तव्यों के सामने नतमस्तक नहीं होते हैं। श्रीभागवतानंद गुरु जी अवस्था में कम हैं, किन्तु एक ज्ञानवृद्ध के पास जो ज्ञान होना चाहिए, वह इनके पास है, अतएव इनका हम अभिनंदन करते हैं। आपका विद्यावैभव बहुत पुष्ट है, हमने आपके इस लेखन का सिंहावलोकन किया। इसमें आपने नाना पुराणों एवं ग्रंथस्थलों का विवेचन प्रस्तुत किया है, जिसे एक पुस्तिका लेकर अवश्य संकलित करना चाहिए।

यह भी सत्य है कि आपके लेखों को अक्षरशः एक बार नहीं, अपितु कई बार पढ़ना चाहिए। यह विडम्बना है कि आप जैसे सुयोग्य व्यक्तित्व को वास्तव में जो सम्मान मिलना है, वह समाज में नहीं मिल पा रहा है, जो खेद का विषय है। श्रीभागवतानंद गुरुजी सनातन धर्मावलम्बियों के लिए एक आदर्श हैं, जिनका परिचय अपने आप में गौरवयुक्त है। सदैव शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर वार्ता करने की निश्चित बुद्धि है। आपके लेख गम्भीर विवेचना के लिए प्रसिद्ध हैं, हम आपके मंगल की कामना करते हैं। सम्भावना करते हैं कि निरंतर अपनी आध्यात्मिक गुरुता की किरणों से समस्त सनातन धर्मावलम्बियों को अनुप्राणित करते हुए धर्मध्वज के सफल संवाहक के रूप में आप चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहें।

जय श्रीमन्नारायण

श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीस्वामी मधुसूदनाचार्य वेदान्ती जी महाराज

(०६)

॥ अशंसयम् ॥

श्रीभागवतानन्देन गुरुणा विरचितं 'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' इति ग्रन्थरत्नमवालोकि मया। तत्र कणेहत्य पुराणोपनिषत्स्मृतिसमुद्धृतसिद्धान्तमुपस्कुर्वन् स्वेच्छयोल्लापितवाग्विलासपुरःसरसमुज्मिितात्मख्यातिवशीकृताहम्मन्यविजल्पनसरणिमनङ्गीचकार। पूर्वपक्षसमीरितकल्पितसिद्धान्तपोषणवृत्ति मशेषामनेकशास्त्रोक्तवाक्शेमुषीसहकृतसुवचोभिर्गुरुरयं भागवतीं मनीषां सगौरवं पोस्फुटीति। वाल्मीकीयमुदञ्चयन्नपि भवभूतिवाग्झरीमुत्तररामचरितजन्यामपि सुदृढमभिमतमुपस्थापनाय समुदाजहार। संन्यासाधिकारप्रसङ्गेऽपि नैकविधानुल्लेखचयान् प्राकाशि विदुषानेन। स्वयम्भूत्वमचखण्डत् स्वच्छन्दतामचखण्डत्, परम्परां मंमनीति, पूर्वाचार्यान् मंमन्यते शास्त्राभिप्रायप्रकटनचातुरीमसहमानस्तत्तात्पर्यमभितस्तोष्टवीति ग्रन्थोऽयम्।

भारतीयमनीषावैभवरिरक्षिषया स्वकल्पितविचारप्रसारणकल्पनामयं सविनयमस्वीचक्रे। ग्रन्थमिमं पाठं पाठं, प्रस्तुतिं ध्यायं ध्यायं सहर्षमयं जनः कामयते यदयं क्रमः समाजस्य भ्रमनिवारणैकनिष्ठुरः सन् प्रमत्तां प्रवृत्तिमग्रेऽपि दर्शं दर्शं शास्त्रालोचनलोचनेन प्रकामं वाग्धारां ज्येष्ठाचार्याणामनुवर्तयन् ससम्मानं यथावसरं प्रवर्तितः स्यादविच्छिन्नतया। एतदर्थं श्रीभागवतानन्दगुरोः प्रयासोऽभिनन्दनीयः। विदुषां व्रातः पल्लवितामिमां वाणीं सादरं स्वीकरिष्यतीति मदीयो दृढतरः विश्रम्भः स्यादित्याशासे।

महामहोपाध्यायः पण्डितराज आचार्यो मिथिलाप्रसादत्रिपाठी
(राष्ट्रपतिना सम्मानितः) पूर्वकुलपतिः
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन

(०७)

'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' ग्रन्थ का सावधानतया निरीक्षण किया। इस ग्रन्थ में चित्रकूटस्थ तुलसीपीठाधीश्वर स्वामिश्रीरामभद्राचार्य जी के अशास्त्रीय विचारों का सप्रमाण और सयुक्तिक खण्डन किया गया है। ग्रन्थकार ने बड़ा ही पवित्र कार्य किया है। जो वाणी खण्डित नहीं हो तो वह स्वीकृत मानी जाती है - स्वाकृतैव खलु वागपरास्ता। श्री अभिराजराजेन्द्र मिश्र के 'जानकीजीवन' काव्य में भी श्रीरामभद्राचार्य जी उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त घोषित किये हैं। जो गोस्वामी श्रीतुलसीदास के श्रीरामचरितमानस की चौपाईयां बदल दे और बांसुरी का 'गदा' अर्थ करे, वह कुछ भी अकार्य कर सकता है। 'केशानवतीति केशवः' ऐसी व्युत्पत्ति भी मैं उनके मुख से सुन चुका हूँ जो पाणिनि के अनुशासन से विरुद्ध है।

महाकवि कालिदास, भवभूति, राजशेखर, दिङ्नाग आदि अनेक महामनीषी कवियों के महाकाव्यों में उत्तरकाण्ड की कथा यदि मिलती है तो शिष्टपरम्परापरिगृहीत होने से उसे महर्षि वाल्मीकिकृत ही माना जायेगा। पाश्चात्यों ने बालकाण्ड के अनेक सर्गों को और उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त कहा है जिनका पोषण द्रव्यलोभ से प्रचोदित होकर अनेक लोग करते हैं। श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज भी उन्हीं लोगों में से अन्यतम हैं। तिलकटीका के साथ छपे रामायण के उत्तरकाण्ड के कुछ सर्ग 'प्रक्षिप्त' के रूप में छपे हैं। वे भी प्रक्षिप्त नहीं हैं, इसमें मुझे प्रमाण मिला है। ध्वन्यालोक की लोचनटीका में आचार्यश्री अभिनवगुप्त ने इन्द्रवज्रा के एक पाद को उद्धृत किया है - क्रोधोऽपि देवस्य वरेणतुल्यः। यह अंश प्रक्षिप्त माने जाने वाले सर्ग के श्लोक का है।

सर्वमान्य महामाहेश्वर संज्ञा से समलङ्कृत आचार्य की दृष्टि से तो यही सिद्ध हो रहा है कि वाल्मीकिरामायण का कोई भी श्लोक या सर्ग प्रक्षिप्त नहीं है। एवञ्च पूरे काण्ड को ही प्रक्षिप्त घोषित कर देना बहुत बड़ा साहस है। मनीषियों को यह सह्य नहीं होना चाहिये। प्रकृत ग्रन्थ के रचयिता के श्लाघनीय प्रयास को हम नमन करते हैं। हमारे आर्ष वाङ्मय पर होने वाले आक्रमण का निराकरण इसी प्रकार होते रहना चाहिये। यह ग्रन्थ प्रक्षेपध्वान्त प्रेमियों की निविडतमिस्रा का निरास करके आस्तिकजनों को आह्लाद प्रदान करे, ऐसी कामना भगवान् श्री श्रीनिवास से करता हूँ।

प्रो० कमलाकान्त त्रिपाठी
आचार्य - पूर्वमीमांसाविभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(०८)

महानयं हर्षस्य विषयो यद्गुरूपाह्वैः श्रीभागवतानन्दमहोदयैरुत्तरकाण्डप्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकारविमर्शनामा ग्रन्थः प्रणीतः। अस्य ग्रन्थस्य केचिदंशा मयापि मण्डूकप्लुत्यावलोकिताः। मान्यानां वाल्मीकिव्यासप्रभृत्युपजीव्यानामृषीणां वचनेषु धूलिप्रक्षेपणं विदुषा ग्रन्थकृतानङ्गीकृतमत एव स्वमनीषया विचारपूर्वकमनेन वाल्मीकिव्यासादिवचनासहिष्णूनां विदुषां तर्का निरस्ताः सप्रमाणं तद्विद्वद्भिर्विचारशीलैरवश्यमेवावलोकनीयाः।

यदिनामात्र किमपि क्षोदक्षमं तत्त्वं विलोक्यते तदवश्यमेव पिपठिषूणां जिज्ञासूनां सन्देहनिवारणाय प्रमापणीयमेव 'वादे वादे जायते तत्वबोध' इति नयेन द्वयोरपि विदुषोस्तर्कश्रवणविचारणद्वारा भविष्यत्येव प्राकृतानामपि जनानां यथातथ्यं जिज्ञासूनां लाभः। विदुषो लेखकस्य कृते आस्माकीनाः सद्भावनाः। नूनमस्य ग्रन्थस्यावलोकनेन सेत्स्यत्येव निष्कृष्टार्थबोध इति कामयते भगवन्तं वृन्दावनविहारिणम् नमन्नयञ्जनः -

डॉ० श्रीरामकृपालत्रिपाठी
प्राचार्यचरः - श्रीरङ्गलक्ष्मीआदर्श संस्कृतमहाविद्यालयस्य वृन्दावनस्थस्य

(०९)

॥ परमात्मने नमः ॥

अधुना काल के धर्मविपरीत प्रबल प्रवाह से वर्ण तथा आश्रम मर्यादा कृशकाय हो रही है। उसके प्रभाव से लोक में विपरीत, अनर्थ और असत् विषय – सम्यक्, सार्थक तथा सद्रूपवत् भासित हो रहा है। सिकता तथा शर्करा मिश्रण के समान, सत्य और अनृत मिश्रित आचरण के भयावह काल में धर्म, सत्य, तप तथा सारस्वत आचरण विभूतिमान् वरेण्यजन ही धर्म के सम्बल हैं। उनके आचरण और वचन ही शास्त्रों के मर्म को लोकगम्य व्यवहार में व्यक्त करते हैं। आश्रमचतुष्टय (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) का चूडान्त संन्यास आश्रम परम योग्यता तथा चरम उपलब्धि है।

जब कलिकाल के प्रबलवेग से धर्मस्तम्भ प्रकम्पित हो रहे हैं, ऐसी दशा में पराम्बा की अहैतुकी कृपा सम्पन्न, उनके सारस्वतशक्तिलब्ध, प्रातिभज्ञानसम्पन्न, आचार्य श्रीभागवतानंद गुरु की 'संन्यासतत्त्व, स्वरूप तथा अधिकारी' विषयाधारित 'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' रचना संन्यासाधिकार के सर्वांगीण स्वरूप को लोकगम्य शैली में अभिव्यक्त करती है। पुनश्च, अधुना प्रव्रज्यासम्बन्धी विविध प्रचलित अशास्त्रीय भ्रमभञ्जन के साथ नीरक्षीरविवेचनी दृष्टि भी देती है। इस ग्रन्थ का प्रयोजन तब और सार्थकता को प्राप्त होता है, जब यह संन्याससम्बन्धी धर्मशास्त्रीय मानदण्डों में से 'उक्त' को स्पष्ट करता है, 'अनुक्त' को व्यक्त कर 'दुरुक्त', को सम्यक् परिप्रेक्ष्य में अशेष अभिव्यक्त करता है। आचार्य श्रीभागवतानंद गुरु की यह रचना 'संन्यास सम्बन्धी मर्यादा विचार हेतु एक संग्रहणीय ग्रन्थ' के रूप में लोकविश्रुत होगी।

अशेष मंगलकामना सहित,

विद्यावारिधि पं० दीनदयालमणि त्रिपाठी

आदिशंकर वैदिक विद्या संस्थान, लखनऊ

(१०)

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा 'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श' नामक पुस्तक का लेखन एवं प्रकाशन कराया जा रहा है, यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। उक्त पुस्तक चित्रकूटस्थ तुलसीपीठाधीश्वर स्वामिश्रीरामभद्राचार्य - पक्षधरखण्डन है। वस्तुतः जो महानुभाव स्वयं चित्रकूट पीठ की स्थापना कर अपने आपको चित्रकूटपीठाधीश्वर घोषित किये हुए हैं, वे जगद्गुरु कहलाने योग्य हैं या नहीं यह विचारणीय है क्योंकि जो अपने

आपको पूर्वकालीन विभिन्न मतप्रवर्तक जगद्गुरुओं से श्रेष्ठ मानता हो तथा उन परम सम्माननीय जगद्गुरुओं को अपशब्द से व्यक्त करता हो, वह जगद्गुरु नहीं हो सकता है। जिन श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्दाचार्य जी की परम्परा में उक्त श्रीमान् जी ने दीक्षा ली है, उन्होंने भी अपने जीवन काल में कभी भी किसी भी जगद्गुरु के लिए अपशब्द का प्रयोग नहीं किया हैं। श्रीमान् जी अपने आपको संसार का सर्वश्रेष्ठ विद्वान समझते हैं। जब तक अन्य विद्वानों के द्वारा स्वीकृत न किया जाय कि यह विद्वान् हैं तब तक कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता। 'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः' के अनुसार जो शास्त्र का अध्ययन करके तदनुसार अपना जीवन व्यतीत न करता है, वह शास्त्र पढ़कर भी अनपढ़ जैसा होता है।

विद्याविवादाय धनं मदाय शक्तिं परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

उक्त श्लोक के अनुसार यदि दुष्ट को विद्या प्राप्त हो जाती है तो उसकी विद्या मात्र विवादकरी होती है, धन मददायक तथा शक्ति अपने से भिन्न लोगों की परिपीड़नी होती है किन्तु साधु पुरुषों की विद्या ज्ञानदायिनी, धन दान के लिए तथा शक्ति प्राणीमात्र की रक्षा करती है। अब स्वयम्भू जगद्गुरु जी विचार करें कि विद्या प्राप्त करके क्या कर रहे हैं ? 'सा विद्या या विमुक्तये' के अनुसार सांसारिक प्रपञ्चों से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा मिले, ऐसा प्रयास अपनी विद्या के द्वारा करनी चाहिए किन्तु श्रीमान् जी कर क्या रहे हैं ?

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति ततो धर्मस्ततः सुखम्॥

उक्त श्लोक के अनुसार आप विचार करें कि आप में विनम्रता है या नहीं ! गैरिकवस्त्रधारण करने से क्या होता है ? अपने को विरक्त मानने वाले श्रीमान् जी आत्मावलोकन करने का प्रयास करें। विरक्त शब्द का तात्पर्यार्थ है, विशेष = परमात्मनिरक्तः संलग्नः अर्थात् सदा सर्वदा परमात्मचिन्तनपूर्वक जीवनयापन करता हो, वही विरक्त है। गृहस्थ भी विरक्त होते हैं, क्या राजा जनक विरक्त नहीं थे ? अतः श्रीमान् जी अपनी जीवनशैली में परिवर्तन लावें, तभी कल्याण होगा। यदि मेरी लेखनी ने अपना कार्य करना प्रारम्भ कर दिया तो कहाँ है जौनपुर जहां श्रीमान् जी ने जन्म लिया ? तथा काशी में साक्षात् पाणिनिकल्प

वैकुण्ठवासी श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी जी से अध्ययन किया। उसी काल में वैकुण्ठवासी आचार्य बद्रीनाथशुक्ल जी से मैंने भी काशी में रहकर अध्ययन किया है, श्रीमान् जी के अतीत से पूर्ण परिचित हूँ। श्रीभागवतानंद गुरु का यह लेखन, प्रकाशनादि तथा उसमें प्रतिपाद्य विषय एवं शैली प्रशंसनीय है। इसी प्रकार इनकी लेखनी द्वारा लोगों के गर्व का मर्दन होता रहे। मैं परमपिता परमेश्वर से श्रीभागवतानंद गुरु के लिए प्रार्थना करता हूँ कि इनकी लेखनी निरन्तर अबाधगति से चलती रहे। समस्त शुभकामनाओं सहित मंगलानुशासन करता हूँ।

आचार्य रामसुदर्शन मिश्र
प्राचार्य - श्रीरङ्गलक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन

(११)

॥ न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः ॥

चतुरुत्तरद्विशतं पृष्ठेषु भागदशके श्रीभागवतानन्दगुरुप्रणीत उत्तरकाण्डप्रसङ्ग — संन्यासाधिकारविमर्शनामको ग्रन्थो व्यवालोक्यत मया। ग्रन्थोऽयं वादे वादे जायते तत्त्वबोध इति धिया स्पन्दयते शिक्षास्मृतिपुराणादितत्त्वज्ञान् प्रेरयति तर्कोपायदीक्षितानान्दोलयति श्रीरामचरितविमर्शकान् खण्डनमण्डनदिशा चेति। निश्चितार्थान्न विरमन्ति धीरा इति धिया सुधीतल्लजाः शास्त्रप्रमाणपुरस्सरं सर्वस्वसमर्पितास्तत्त्वजातं निष्पादयन्त्येव । मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना इति दृशा शास्त्रवैशारद्यमवलोक्यमानं ज्ञानकाण्डं विस्तारयत्येव। विना खण्डनमण्डनाभ्यां शास्त्रमविसंवादि जायत एव न, परमेतत्कार्यमसिधाराव्रतमेवास्ते। खण्डनस्यापि कदाचित् खण्डनं कालचक्रक्रमेण सम्भाव्यते।

जगद्गुरुरामभद्राचार्यास्तुलसीपीठाधीश्वरा विकलाङ्गविश्वविद्यालयचित्रकूटकुलाधीशा भागवततत्त्वमर्मज्ञाः संस्कृतमहाकाव्यादिप्रणेतारः प्रामाणिकसुविद्वांस उत्तरकाण्डस्य प्रक्षिप्ततामुदघोषयंस्तत्र श्रीभागवतानन्दगुरुमहोदयास्तन्मतखण्डयितारो ग्रन्थममुं संस्थापयन्ति संस्थापयन्तु नाम परमुभयमतमादरणीयमेव। यतो हि विवेचना गूढग्रन्थिभरा समुद्रवद्गम्भीरा परिवर्तनशीला भवत्येव। अत्र वेदपुराणस्मृतिसन्दर्भपुरस्सरं खण्डनं प्रक्षिप्ततार्थस्य प्रतिपक्षं विहितं ततः परं ग्रन्थममुमुपलभ्य श्रीभागवतानन्दगुरुमतं निरीक्षिष्यन्ते तत्त्ववेत्तारो निश्चप्रचमेव। श्रीभागवतानन्दगुरुमतं श्लाघनीयं शास्त्रनिकषे तुलनया तथापि अनन्तता हि शास्त्रस्येति धिया प्रतीक्षापि विधेया। अल्पविद्यो महागर्वीति भणित्या कोपि सुविद्वान् सगर्वमकुशलपक्षन्नोपस्थापयितुमर्हति। अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रमिति धिया को नामात्र

सडिण्डिमं स्वप्रकर्षं कीर्तयेदिति धिया कविकुलगुरुकालिदासोपि रघूणामन्वयं वक्तुं मन्दः कवियशः प्रार्थीति निजमन्दकवित्वं विनयवृत्त्यैवोद्घोषयति, तस्मान्न कोपि व्याख्याता निजमतस्य चरमनिर्णायकत्वमुद्घोषयेत्। ग्रन्थस्यास्य प्रथमभागे तुलसीपीठाधीश्वरेण प्रत्याख्याता सीतानिर्वासनशम्बूकवधरजतप्रसङ्गादिघटना तत्रैव लेखकवर्येणात्र पद्मनारददेवीभागवतस्कन्दबृहद्धर्मादिपुराणाध्यात्मानन्दरामायणगर्गसंहितादीनां सन्दर्भैस्स्वमतं पर्यपोषि पूर्वपक्षश्च निराकारि। भारते सर्वत्रोत्तरकाण्डपर्यवसायि रामायणं तुलसीकृतरामचरितमानसं काव्यं पापठ्यमानं दृश्यते, यद्यपि रामलीलासु सीतानिर्वासनशम्बूकवधरजतप्रसङ्गादिघटना न प्रदर्श्यते रामपराभवमुद्दिश्य तथाप्युत्तरकाण्डं निविष्टं को हि निस्सारयितुमर्हति, किमत्र खण्डनमण्डनविधया।

विद्वद्विवेचकास्स्वमतोपन्यासे शास्त्रप्रामाण्यपुरस्सरं स्वातन्त्र्यमर्हन्ति परं वाग्वैदग्ध्यवशादेव, न च वैयक्तिकद्वेषमाश्रित्य शास्त्रे दण्डप्रहारादिना। न कश्चिच्छास्त्रहन्ता स्वाभीष्टायुक्तलक्ष्यसाधनेन वा जायताम्। सिद्धर्षिवाल्मीक्यादिकवयस्तु क्रान्तदर्शिनः प्रजापतिकल्पाःस्वयम्भुव एवमरा यथोक्तं नीतिशतके -

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

श्रेष्ठविद्वांसो न बिभ्यति कस्मादपि लब्धाधिकारात्परं सुप्रतिष्ठिताः सुधियोपि न पराभवनीया द्वेषादिबुद्ध्या, कदापि शिष्टोक्तिसीमानं नातिक्रमेत कश्चित्। विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रममिति धिया परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्नोति कोपि वा मनीषी। मात्सर्यग्रस्तास्त्वभिनन्द्यन्त एवात्र न कदापि केपि वा पीठाधीश्वराश्चिन्तका वा मनागपि पद लोलुपाः। भवभूतेरुत्तररामचरितं सुप्रसिद्धनाटकमुत्तरकाण्डवृत्तं परिपुष्णात्येव तदपि चिरात्संस्कृतपाठ्यग्रन्थत्वेन पाठ्यते। यद्यपि वाल्मीकिरामायणे क्वचित्प्रक्षिप्तांशा अपि सम्मतास्तथाप्युत्तरकाण्डं को निस्सारयितुमर्हति साम्प्रतं प्रचलितसुदृढपरम्परां को नाम समापयितुं क्षमेत।

श्रीभागवतानन्दगुरुमतं हि द्वितीयभागे शतोत्तरैकादशतमे पृष्ठे — 'शास्त्र को समझने के लिये यह आवश्यक है कि आप अपना मस्तिष्क खाली रखकर उसे पढें, लोग पहले से धारणा बना लेते हैं और उन धारणाओं को शास्त्र में खोजते हैं और जब उन्हें मन के

अनुकूल वाक्य नहीं मिलते हैं तो प्रतिकूल वाक्यों को प्रक्षिप्त कह देते हैं जब कि ऐसा नहीं होना चाहिए'। मैं लेखक के इस मत से असहमत हूँ, क्योंकि कोई भी सुचिन्तक विद्वान् रिक्त मस्तिष्क हो ही नहीं सकता, कालिदास ने मेघदूत में जैसा कि कहा है कि 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय' के अनुसार ऐसा चिन्तक लघु बन जाता है, कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। शास्त्र के साथ छेड़छाड़ करना कभी बडा महंगा पडता है इसीलिये सुविद्वान् को अनुपम तर्क तथा तीक्ष्ण मेधा से किसी भी शास्त्रीय समस्या के समाधान का प्रयास करना चाहिये। सुगवेषक तो शास्त्रानुकूल लेखनी चलाता है, न ही प्रतिकूलता के पीछे दौड लगाता है, क्योंकि विधि की प्रतिकूलता में समग्र साधन विफल हो जाते हैं। जैसा कि काव्याचार्य कहते हैं — प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहु साधनता। तृतीयचतुर्थभागयोर्ग्रन्थस्यास्य

'क्या नेत्रहीन या विकलांग व्यक्ति संन्यास के अधिकारी हैं ?'

अनया जिज्ञासया प्रारभ्यते, विकलाङ्गकृते सम्प्रति प्रयुज्यमानं दिव्याङ्गपदं व्यमर्शि साभिप्रायं लेखकेन। शास्त्रप्रामाण्येन विकलाङ्गा हि पीठाधीश्वरपदानर्हा इत्यपि समसाधि, सूरदाससदृशभक्तकवेरपि न पीठाधीश्वरत्वं यतित्वं वा प्रकृतविषये लेखकप्रदत्तशास्त्रीयसन्दर्भेषु विचारो नितरामपेक्ष्यते, तत्र संन्यासोपनिषत्कूर्मपुराणवैष्णवमताब्जभास्करादिसन्दर्भेण साकं रामाधारशर्मण आक्षेपा श्रीभागवतानन्दगुरुलेखकप्रत्युत्तराणि प्रादीयन्त।

पञ्चमभागे रामानन्द शर्मणां कृतं खण्डनं तदुत्तरे लेखकेन प्रदत्तप्रतिखण्डनमपि सूक्ष्मेक्षिकया निभालनीयमेव शास्त्रपारीणैः। षष्ठभागे नित्यानन्दमिश्रेण विहित खण्डनं व्यवेचि। सप्तमाष्टमनवमदशमभागेषु संन्यासाधिकारविमर्शः प्रत्यपादि, नित्यानन्दमिश्रो हि स्वामिरामभद्राचार्यमतपोषको श्रीभागवतानन्दमतखण्डयिता चेति। महाभारतादिसन्दर्भेण रामाधारकृता आक्षेपा लेखकेन व्यखण्ड्यन्त।

पुस्तकान्ते लेखकमतम् - 'देवता देश एवं ब्राह्मण से द्रोह करने वाले नेता एवं शास्त्रों को प्रक्षिप्त कहने वाले जगद्गुरु तो गांव गांव में मिल जायेंगे, इन्हें अधिक महत्त्व न दें, व्यक्ति के पीछे नहीं शास्त्र के पीछे चलें', इस कथन के साथ ग्रन्थ की पूर्णता हो जाती है। इसमें भी मत्स्य, शिव, स्कन्द, भविष्य, पद्म, देवीभागवत, विष्णुधर्मोत्तर तथा श्रीमद्भागवत इत्यादि पुराणों के सन्दर्भ भी दिये गये हैं, इन सन्दर्भों पर निष्पक्ष विचार होना चाहिये

लेखक के तर्क तथा युक्तियों की दृष्टि से। जगद्गुरु तो कोई तत्त्ववेत्ता भगवदुपासक ही हो सकता है चाहे गांव का हो या शहर का। सच्चा शास्त्राराधक कभी भी शास्त्र के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता। स्वामी रामभद्राचार्य तो सुप्रतिष्ठित ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं, जो विश्वविद्यालय के संस्थापक भी हैं। मैं उनसे काशी में अध्ययनकाल से ही परिचित हूं, मेरे व्याकरण शास्त्र के गुरु जौनपुरनिवासी पं शशिधर मिश्र से भी वे परिचित हैं क्योंकि मैंने व्याकरण की शिक्षा पण्डित प्रवर श्रीमिश्र जी से काशी में १९८०-८३ तक प्राप्त की है।

अभी इसी दशक में मऊरानीपुर, जि० झांसी में जब स्वामी जी श्रीमद्भागवतकथा प्रवचन कर रहे थे तभी मैं वहां संयोग से अपने गुरु तथा पितृव्यपाद संस्कृत मनीषी पं० यमुनाप्रसादशास्त्री जी के साथ वहां पहुंचा तो मैंने स्वामी जी का अभिनन्दन संस्कृत में किया था, तथा अभिनन्दनपत्रम् उन्हें समर्पित किया था, जिसके उत्तर में सद्यः स्वामी जी ने परिनिष्ठित संस्कृत में मुझे प्रवचनमञ्च से धन्यवाद दिया था, एवं तदीयसंस्कृतक्षमतया नितान्तम्मे मनः समतुष्यत् प्रवचने च प्रतिपदं व्याकरणव्युत्पत्तिमवेक्ष्य। काश्यामेकदा सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालये स्वामिवर्यसमभिनन्दने विहितसंस्कृतकविसम्मेलने मदीयकवितया ते नितरां प्रामोदन्त। तस्माद्भारतीयसंस्कृतशास्त्रपुरोधसस्ते श्रीभागवतानन्दगुरुवर्यैरत्र प्रस्तुतविषयेऽवश्यमेव ससौहार्दं निजमतोपन्यासेन शास्त्रपरम्परां द्रढयिष्यन्तीति विनिवेदयन्नितरां विशेषशुभकामना श्रीभागवतानन्दगुरुवर्येभ्यो ग्रन्थ ममुमुद्दिश्य विशेषप्रणतयश्च जगद्गुरु स्वामिपादेभ्यो यदीयप्रस्तुतविषयमालक्ष्य ग्रन्थरत्नमिदं विदुषां पुरस्तात् समुपस्थाप्यते साभिप्रायं, समभिनन्दनीयावुभावपि विश्रुतविद्वांसौ मे।

न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीरा इति सविश्रम्भं वच्मि -
संन्यासरीतेरधिकारनीतिर्व्यमर्शि रामायणपोषकत्वम्।
प्रक्षिप्तता तस्य निराकृतात्र समीक्षणीया हि पुनः सुधीभिः॥
लेखकस्यात्र दृष्टिर्यथा वेद्यतां तच्श्रमो दृश्यतां स्वाद्यतां सोत्सहम्।
स्वामिनां तन्मतं पठ्यतामीक्ष्यतां युक्तितर्कादिभिश्चापि निर्णीयताम्॥
सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिर्विद्वद्वरैः कैरपि लभ्यतान्नु।
चाटूक्तिभिर्नैव न राजनीत्या कृतिर्विलेख्या न च नेतृतुष्टयै॥
॥इति शम्॥

प्रो.धर्मदत्तचतुर्वेदी
संस्कृतविभागाध्यक्षः शब्दविद्यासङ्कायप्रमुखश्च
केन्द्रिय उच्चतिब्बतीशिक्षासंस्थानम् (मानितिविश्वविद्यालय) सारनाथ, वाराणसी

(१२)

विविध ग्रन्थों के प्रमाणों से परिपुष्ट और तर्कसंगत पद्धति से लिखा हुआ यह लेख श्रीभागवतानंद महाराज के शीर्ष पाण्डित्य का परिचायक है। लेख संग्रहणीय और मननीय है।

आपको हार्दिक धन्यवाद ...

शास्त्रार्थ पञ्चानन डॉ० प्रेमाचार्य शास्त्री जी

(१३)

संत ना छाडै संतई, कोटिक मिले असंत ।
चन्दन भुवंगा बैठिया, तौ सीतलता न तजंत ॥

वास्तविक संतों को निंदा और स्तुति में भी समत्व रखना चाहिए। इस जगत् में मेरे विषय पर कौन क्या कर रहा है, कौन क्या कह रहा है, इसमें संत को विशेष रुचि नहीं रखनी चाहिए। श्रीभागवतानंद गुरुजी के द्वारा लिखे गए लेख का मैंने पूर्ण पठन किया है। उन्होंने अपना जो भी पक्ष रखा है वह शास्त्रोक्त और सप्रमाण ही है।

उसमें ऐसा कहीं भी प्रतीत नहीं हुआ कि श्रीरामभद्राचार्य जी के प्रति दुर्वाक्य अथवा अपशब्दों का प्रयोग किया गया है, फिर भी श्रीरामभद्राचार्य जी अथवा उनके अनुयायियों को ऐसा आभास हुआ हो कि लेख के माध्यम से उनकी अवमानना की गयी है तो स्मरणीय है कि संत को सदैव शास्त्रोक्त नियमों के आधार से ही अपना पक्ष प्रतिपक्ष रखना चाहिये।

जितना परिश्रम करके श्रीभागवतानंद जी ने लेख लिखा है, विपक्षीगण उससे कई गुणा अधिक श्रीभागवतानंद जी के प्रतिपक्ष में लिखते अथवा मीडिया के माध्यम से, पत्रकारों के माध्यम से, अन्य विविध स्रोतों से उनके लेख का खंडन करते, प्रतिकार करते तो मैं अवश्य उनकी प्रशंसा करता किंतु विपक्षियों का जैसा व्यवहार संसार के समक्ष दिखाई पड़ रहा है, यदि यह सत्य है तो उचित नहीं हो रहा है।

श्री पं० कृपाशंकर शास्त्री जी
श्री वैदिकशक्ति संरक्षण चैरिटेबल ट्रस्ट

(१४)

जय श्रीमन्नारायण !

प्रस्तुत पुस्तक 'उत्तरकाण्ड प्रसङ्ग एवं संन्यासाधिकार विमर्श', हमारे परम प्रिय श्रीभागवतानंद गुरुजी के द्वारा लिखी गयी है जिसका हमने अवलोकन किया। बहुत ही सटीक प्रमाणों के द्वारा इन्होंने अपने मन्तव्य को रखा है, शास्त्रसम्मत बात इसमें की है। उत्तरकाण्ड को जो लोग प्रक्षिप्त कहते हैं, उन प्रक्षिप्तवादियों को एकबार इस पुस्तक को सम्पूर्णता से अवश्य पढना चाहिये।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय का रहस्यग्रंथों में यह सिद्धान्त रहा है कि श्रीसीताजी का भगवान् से जो तीन बार वियोग हुआ है, वह आकारत्रय को प्रकट करने के लिये, आकारत्रय को समझाने के लिये ही हुआ है, इस कारण रामानुज सम्प्रदाय में तो उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त माना ही नहीं जाता, फिर भी जो आजकल के 'बुद्धिजीवी' उत्तरकाण्ड को शम्बूकवध के कारण, सीताजी के परित्याग के कारण प्रक्षिप्त बताते हैं, उनको एक बार इस पुस्तक का अवलोकन अवश्य ही करना चाहिये। यह पुस्तक बहुत ही सुन्दर है, संन्यासाधिकार पर लेखक ने बहुत ही प्रामाणिक लेखन किया है, इसके लिये मैं इनको बहुत बहुत शुभकामनाएं देता हूँ। पाठक स्वच्छ मन से इस पुस्तक का अध्ययन करके स्वविवेक से निर्णय लें।

जय श्रीमन्नारायण

श्री पुण्डरीकाक्षाचार्य वेदान्ती जी

पुरोवाक्

ॐ असावादित्यो ब्रह्म !

इस पुस्तक का इतिहास एवं प्रयोजन बहुत विचित्र है। स्वयं को अनेकों स्थानों पर एकमात्र प्रामाणिक जगद्गुरु तथा भाष्यकार बताने वाले श्रीरामभद्राचार्य जी ने जब सार्वजनिक मंच एवं दूरसंचार माध्यमों से उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त बताना प्रारम्भ किया तो अन्य पीठाधीश्वरों की क्षुब्धता एवं सामाजिक मौन को देखने के बाद मैंने रामभद्राचार्य जी के वक्तव्य के विरुद्ध एक लेख लिखा था, जिसे अपने फेसबुक खाते पर साझा किया।

उस समय यह विषय कितनी दूर जाएगा, इसका थोड़ा भी भान मुझे नहीं था। उस लेख के प्रकाशित होने के बाद समाज में उसकी व्याप्ति अत्यन्त शीघ्रता से हो गयी, जिसके बाद मुझे ऐसा लगा कि निश्चय ही इसके विषयवस्तु की वृद्धि होनी चाहिए, अतः मैंने उसका दूसरा भाग भी लिखा, जिसमें प्रमाणों की स्पष्टता को सुनिश्चित किया गया।

कोई हमारे ऊपर सैद्धान्तिक प्रहार कर रहा है, ऐसा देखकर चित्रकूट की तुलसी पीठ वाले एवं उनके अन्य समर्थकगण विचलित हो उठे और फिर उनके पक्ष से एक वृद्ध विद्वान् ब्राह्मण (लोगों ने उनका नाम आचार्य श्री रामाधार शर्मा बताया) ने एक वीडियो वक्तव्य जारी करके मेरे लेख के खण्डन का प्रयास करते हुए उसके तर्कों को अप्रामाणिक बता दिया।

इसके अनन्तर जब मैंने उनके वीडियो का प्रत्युत्तर देते हुए इस शृंखला का तीसरा लेख लिखा और उनके आरोपों का शमन भी किया तदनन्तर मुख्य विवाद का सूत्रपात हुआ। ये लेख तुलसी पीठ के आधिकारिक दूरसंचार मंचों तक पहुंचे और उधर से (अनौपचारिक रूप में) श्री रामाधार शर्मा एवं श्री नित्यानन्द मिश्र ने पक्षप्राधान्य से मेरा लिखित खण्डन करने का प्रयास किया।

मैंने अपने लेखों को देशभर के कई गणमान्य पीठाधीश्वर, मठाधीश एवं विद्वानों के पास भेजा किन्तु रामभद्राचार्य जी का नाम स्पष्ट रूप से होने के कारण और इस विषय का

विवाद बढ़ता देख कर, उस समय दो चार सज्जनों को छोड़कर किसी ने मेरा प्रत्यक्ष सामाजिक समर्थन नहीं किया, भले ही वे सभी मेरे लेखों से मन ही मन अत्यन्त सन्तुष्ट एवं मुदित थे। यह सत्र चल ही रहा था कि कुछ मध्यस्थों ने, साथ ही तुलसी पीठ के आधिकारिक व्यक्तियों ने भी मुझे सीधे चित्रकूट आकर स्वामी रामभद्राचार्य जी से सम्वाद करने का निमन्त्रण (वस्तुतः चुनौती) दिया। कोरोना संकट में फंसे होने के कारण मैंने स्थिति सामान्य होने के बाद ऐसा ही करने की तात्कालिक स्वीकृति भी दे दी।

इसके बाद एक अप्रत्याशित घटना घटित हुई। २२ अप्रैल, २०२० को मध्याह्न सवा दो बजे मुझे एक सन्देश एवं फोन आया जिसमें कहा गया कि वे चित्रकूट के पुलिस अधीक्षक के कार्यालय (आईटी विभाग) से बात कर रहे हैं एवं मेरे विरुद्ध एक प्राथमिकी दर्ज हुई है। मुझे पहले तो वार्ता समझ में ही नहीं आयी। उसके बाद एक दूसरे व्यक्ति ने (जिसने अपना परिचय चित्रकूट के पुलिस अधीक्षक के रूप में दिया) मुझसे बात की और पूछा कि आपकी अवस्था कितनी है ? मैंने कहा - तेईस वर्ष।

अधीक्षक महोदय ने अब अपनी शैली बदली और कहा - "तुम्हें जरा भी समझ नहीं है कि उन वयोवृद्ध व्यक्ति के विरुद्ध लिख रहे हो जो जगद्गुरु हैं, भारत सरकार से पद्म-पुरस्कार सम्मानित हैं एवं एक विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हैं ? तुम यदि एक लिखित माफीनामा दो एवं सारे लेखों को मिटा दो तो तुम्हारे विरुद्ध कार्रवाई नहीं की जाएगी एवं इस प्रकार तुम्हारा जीवन बर्बाद होने से बच जाएगा।"

मैंने भी स्पष्ट कह दिया कि मैं न माफीनामा लिखूंगा और न ही लेखों को मिटाऊंगा, क्योंकि रामभद्राचार्य जी से मेरी कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है और न ही मैंने उनके प्रति किसी अपशब्द का प्रयोग किया है। मेरे लेख उनके वक्तव्यों की शास्त्रीय आलोचना मात्र हैं और पद्म-पुरस्कार तथा कुलाधिपति पद की प्राप्ति उन्हें शास्त्रीय आलोचना से परे नहीं बनाती है। आप जो कानूनी कार्रवाई करना चाहें, कर सकते हैं।

फिर पुलिस अधीक्षक ने मुझसे मेरा तात्कालिक पता मांगा और कहा कि मेरी शिकायत झारखण्ड डीजीपी कार्यालय को स्थानान्तरित की जा रही है, जिसके बाद मुझे सन्ध्या तक गिरफ्तार कर लिया जाएगा। मैंने पूछा कि मेरे विरुद्ध शिकायत किसने की है ? उत्तर मिला - यह शिकायत सीधे भारत सरकार के गृह मन्त्रालय से आयी है, साथ ही दो तीन और

लोगों के विरुद्ध भी आयी है, जो स्वामी रामभद्राचार्य जी के विरुद्ध अपशब्द लिख रहे थे। शेष लोगों के विरुद्ध कार्रवाई चल रही है, अब तुम्हारी बारी है। मैंने इस बात की सूचना अपने फेसबुक पर डाल दी, जिससे लोगों में आश्चर्यमिश्रित खिन्नता व्याप्त हो गई एवं यद्यपि मैंने किसी से कोई सहायता नहीं मांगी थी, किन्तु फिर भी कुछ वरिष्ठ शुभचिन्तकों ने तुलसी पीठ से सीधे सम्वाद करके घटना की सूचना प्राप्त की, और कहा कि शास्त्रीय सम्वादों में प्रशासनिक हस्तक्षेप इस विषय को और बिगाड़ेगा और यह अपनी राजनीतिक पैठ का सीधा दुरुपयोग करना सिद्ध होगा, विशेषकर तब, जब श्रीभागवतानंद गुरु ने श्रीरामभद्राचार्य जी के लिए किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया है। इसपर तुलसी पीठ के उत्तराधिकारी जय शर्मा जी ने कहा कि पीठ के प्रशासन को इस प्रकार की कोई सूचना नहीं है और यदि कोई प्राथमिकी दर्ज हुई है, तो उसकी गतिविधि हमलोग रुकवा देते हैं।

इस बीच मेरे पिताजी एवं अन्य लोगों ने भी चित्रकूट प्रशासन से सम्पर्क करके विषय का संज्ञान लिया। साथ ही, मेरे कुछ परिचितों ने केन्द्रीय गृहमन्त्री के आधिकारिक सहायकों से भी बात की तो ज्ञात हुआ कि रामभद्राचार्य जी के सन्दर्भ में कुछ लोगों के विरुद्ध कानूनी शिकायत तो मन्त्रालय की ओर से निर्गत हुई है, किन्तु उन लोगों के नाम का प्रकाशन सामाजिक रूप से नहीं किया जा सकता। सन्ध्या तक जब मेरी गिरफ्तारी नहीं हुई तो मैंने पुनः चित्रकूट पुलिस अधीक्षक के पास फोन किया और तब मुझे ज्ञात हुआ कि तुलसी पीठ के हस्तक्षेप के कारण अस्थायी रूप से गिरफ्तारी पर रोक लगा दी गयी है।

मैंने इस अद्यतित सूचना का विवरण भी लोगों की शान्ति के उद्देश्य से फेसबुक पर डाल दिया, साथ ही शिकायतकर्ता एवं स्थगनकर्ता का भी उल्लेख कर दिया। इसके बाद तुलसी पीठ के समर्थकों ने धमकी भरे फोन, सन्देश, टिप्पणी आदि करने प्रारम्भ किये और मेरे पास नकली नाम और पहचान वाले लोगों के द्वारा विविध प्रकार के अपशब्दों से भरे सन्देश आने लगे।

इसी बीच एक बार पुनः चित्रकूट के प्रशासन का फोन आया और उन्होंने भी समान शैली का आश्रय लेते हुए अविलम्ब जेल भेजने की धमकी दी, क्योंकि मैंने गृह मन्त्रालय और तुलसी पीठ का नाम सार्वजनिक कर दिया था, और इस प्रकार से मेरे फेसबुक पेज एवं खाते को प्रतिबन्धित कर दिया गया। मैं, मेरे सहयोगी या कोई तृतीय पक्षीय व्यक्ति मेरे नए या प्राचीन लेखों को साझा करने अथवा उनकी प्रतिलिपि बनाने में सक्षम नहीं थे।

यहां तक कि मेरी श्रीगोवर्द्धनमठ, पुरी शङ्कराचार्य जी के प्रति आस्था है एवं उनके पीठ के अधिकारियों से घनिष्ठता है, यह जानकर मेरे बहाने तुलसी पीठ के कतिपय समर्थकों ने श्रीपुरी शंकराचार्य जी के विरुद्ध भी अत्यन्त निन्दनीय एवं आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे लोगों में देश के कुछ ख्यातिलब्ध कथावाचक भी थे जो बाहर से अत्यन्त श्रेष्ठ आचरण वाले दिखते हैं एवं "नमो राघवाय" दल के सदस्य हैं।

कुछ लोगों ने तो यह भी कहा कि मेरे लेखों को कोई और व्यक्ति या व्यक्तियों का दल लिखता है तथा मुझमें ऐसे लेखन की मौलिक योग्यता न होने से मैं इन लेखों का बौद्धिक तस्कर हूँ। जब मैं ऐसे लोगों को प्रत्युत्तर देने के लिये सामाजिक माध्यमों का प्रयोग करता था तो प्रशासन के धमकी भरे फोन आने लगते थे, और जब प्रशासन की बात का सम्मान करते हुए मौन रहता था तो ये लोग मुझे कायर, पाखण्डी आदि कहकर ललकारते थे।

मुझे भोगानन्द, गुरुद्रोही, कौवा, गधा, आदि तथा और भी अवाच्य दुर्वचनों के साथ न जाने क्या क्या अपशब्द भी कहे, जबकि मैंने रामभद्राचार्य जी के नाम तक को कहीं विकृत प्रारूप में नहीं लिखा। यदि उस समय मैंने भी रामभद्राचार्य जी के स्थान पर मात्र अभद्राचार्य शब्द लिख दिया होता, तो उसके बाद होने वाले वैचारिक विस्फोट की कल्पना करना अधिक कठिन नहीं है। पाठक, इन लोगों का षड्यंत्र समझ सकते हैं, कि आपसी सांठगांठ से इन लोगों ने, मेरे प्रमाणों एवं तर्कों का प्रतिखण्डन करने के स्थान पर, किस प्रकार से मेरा एवं मेरे परिवार की मानसिक प्रताड़ना की और आजतक कर रहे हैं।

मुझे आजतक कुछ बातें समझ में नहीं आयीं कि -

१) यदि शिकायतकर्ता गृह मन्त्रालय है और उसकी शिकायत का आधार शास्त्रीय आलोचना न होकर मात्र इतना ही है कि मैं एक कुलाधिपति अथवा पद्म-पुरस्कार से सम्मानित व्यक्ति के विरुद्ध लिख रहा हूँ, तो कार्रवाई को स्थगित करने का अधिकार तुलसी पीठ के प्रबन्धन के पास कैसे आ गया ?

२) यदि यह सम्भव भी हो तो इस बात को सार्वजनिक करने से प्रशासन को क्षोभ क्यों हुआ ? गृह मन्त्रालय एवं तुलसी पीठ का नाम स्पष्ट रूप से लेने पर प्रशासन मुझपर क्रुद्ध क्यों हो गया ?

३) इस देश में आदिशङ्कराचार्य जी को कुपथगामी, एवं आदिरामानुजाचार्य जी को अन्धा कहने वाले रामभद्राचार्य जी के विरुद्ध ऐसी कोई शिकायत किसी भी मन्त्रालय या पीठ की ओर से क्यों नहीं होती है ?

इसी बीच मुझे तुलसी पीठ के निकटवर्ती एक दो व्यक्तियों से गुप्त सूचना मिली कि पूर्व में एक ब्राह्मण ऐसे ही रामभद्राचार्य जी के अशास्त्रीय वक्तव्यों के विरुद्ध कुछ लिख रहे थे, तो उन्हें सम्वाद हेतु चित्रकूट आमन्त्रित किया गया और एक सप्ताह तक बन्धक बना कर रखा गया, जिसके बाद वे बड़ी कठिनाई से छूटे।

यद्यपि मुझे इस बात की आशंका तो थी ही क्योंकि मेरे पास भले ही इस नई सूचना के सन्दर्भ में कोई ठोस प्रमाण न हो, और सम्भवतः यह मात्र एक दुष्प्रचार हो किन्तु जिस प्रकार के फोन और सन्देश मुझे प्राप्त हो रहे थे, उससे मैं अपनी भौतिक सुरक्षा को लेकर कुछ आशंकित तो अवश्य था। इसके बाद मुझे तुलसी पीठ से सम्बन्धित एक प्रतिष्ठित आचार्य ने चित्रकूट आने पर मन्दाकिनी में डुबाने की धमकी भी दी (सम्भवतः वे जानते थे कि मुझे तैरना नहीं आता)। फिर भी मैंने उनका वाग्विलास समझकर इसकी उपेक्षा की।

इसके बाद मैंने एक निर्णय किया कि मैं चित्रकूट की तुलसी पीठ में जाकर स्वामी रामभद्राचार्य जी से एकान्त कक्ष में सम्वाद नहीं करूंगा, अपितु किसी निष्पक्ष स्थान में एक मंच की व्यवस्था होने पर देश के मान्य एवं निष्पक्ष शास्त्रज्ञों की निर्णायक भूमिका के मध्य वीडियो रिकॉर्डिंग के साथ इस विषय पर श्रीरामभद्राचार्य जी से सम्वाद करूँगा। अब मेरे पास इस व्यवस्था हेतु उचित संसाधन का अभाव था तो मैंने तुलसी पीठ से इस प्रबन्ध की अपेक्षा रखी। मेरी यह अभिलाषा आज तक अधूरी ही रह गयी और तुलसी पीठ वाले लोग एकान्त कक्ष की चर्चा पर ही डटे रहे।

इसके बाद यह प्रकरण उभय पक्षों की चर्चा के माध्यम से कुल दस लेखों की शृंखला तक विस्तृत हुआ। बीच में एक घटना और घटित हुई। तुलसी पीठ से सम्बन्धित कुछ आचार्य एवं ख्यापित कथावाचकों के आपसी सम्वाद का एक दृढ़ प्रमाण मुझे प्राप्त हुआ जिसमें कुछ लोग मेरे अङ्ग-भङ्ग की बात कर रहे थे तो कुछ अन्य लोग तो मुझे "भूतपूर्व" और "नर्कवासी" ही करवाना चाहते थे।

मुझे तो लगता है कि ये लोग श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत "नमो राघवाय" के गुप्त सङ्केत के साथ एक षड्यंत्रकारी प्रकल्प का सञ्चालन कर रहे हैं, जिसमें रामभद्राचार्य जी को एकमात्र प्रामाणिक जगद्गुरु, तथा स्वघोषित तुलसी पीठ को एकमात्र प्रामाणिक पीठ के रूप में ख्यापित करने का कुप्रयास कर रहे हैं। यह सभी लोग परम्परागत धर्मज्ञानाचरण से हीन होकर देवविक्रय के माध्यम से मात्र उदरपोषण में लगे हुए हैं।

ये लोग श्रीराम जी की श्रेष्ठता को अनुचित शैली में ख्यापित करने के लिए श्रीरामचन्द्र के द्वारा आराधित भगवान् शिव एवं सूर्य (वाल्मीकीय रामायण के अनुसार), भगवान् गणेश (मुद्गल पुराण के अनुसार), भगवती दुर्गा (कालिका पुराण के अनुसार) की निन्दा करते हैं और अन्य सम्प्रदायों के प्रति अपार घृणा रखते हैं। ये लोग रामानन्द-सम्प्रदायरूपी वृक्ष को काटने वाली उस कुल्हाड़ी के समान हैं, जिसमें दुर्भाग्य से रामानन्द सम्प्रदाय की ही लकड़ी लगी हुई है।

तुलसी पीठ न शास्त्रोक्त है, न रामभद्राचार्य जी जगद्गुरु हो सकते हैं, क्योंकि उनके संन्यासाधिकार पर ही आपत्ति हो जाती है, ऐसा मेरा मत है। शिवावतार आद्यशंकराचार्य, शेषावतार आद्यरामानुजाचार्य जी को कुपथगामी एवं अन्धा कहने एवं लिखने वाले लोग जगद्गुरु तो क्या, सामान्य गुरु भी नहीं हो सकते हैं। जो व्यक्ति स्वयं कहता हो कि मैं स्वप्न में शिव जी से सौ सौ स्तरों तक शास्त्रार्थ करता हूँ, मेरे सामने कोई पांच मिनट नहीं टिक सकता है, जो व्यक्ति स्वयं को लाखों श्लोकों का कण्ठवाहक घोषित करता हो, ऐसा व्यक्ति शास्त्रीय प्रमाणों की घोर उपेक्षा करके उत्तरकाण्ड एवं उसकी घटनाओं को प्रक्षिप्त कहे, और फिर एकमात्र जगद्गुरु भी बन जाये, ये दोनों बातें अमावस्या के चन्द्रग्रहण के समान हैं।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशन से पूर्व समीक्षा हेतु भारतवर्ष के शताधिक मान्य मठाधीश एवं आचार्यों के पास भेजा गया किन्तु सैद्धांतिक रूप से सहमत होने एवं पुस्तक की प्रशंसा करने के बाद भी तुलसीपीठ एवं पीठाधीश्वर के साथ अनावश्यक विवाद की आशंकामात्र से उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से अपनी लिखित सम्मति नहीं भेजी। इस स्थिति में भी जिन चौदह उदात्तचरित्र विद्वानों ने सांसारिक स्थितियों की परवाह न करते हुए आशीर्वचन भेजा है, उनका मैं सदैव आभारी रहूँगा। समन्वय एवं प्रसारण हेतु आचार्य ऋषिकुमार तिवारी जी को धन्यवाद देता हूँ।

मेरे साथ भविष्य में इन लोगों के षड्यंत्र के प्रतिफल में होने वाले किसी घातक आक्रमण की पूरी सम्भावना है, अतएव मैं इन लेखों को सनातन धर्म के अनुयायियों के भ्रमोच्छेदन के निवारण हेतु पुस्तकीय प्रारूप में उपलब्ध कराने के लिए विवश हूँ। पूर्वकाल के मूल लेखों की शैली में अधिक स्पष्टवादिता होने से गुरुजनों को कुछ कटुता का बोध हुआ था, अतएव उनके निर्देश का सम्मान करते हुए मैंने लेखों की शैली का आंशिक संशोधन किया है, जिसमें मूल भाव और प्रमाणों की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा गया है। यद्यपि मानवीय भूल से पुस्तक में टंकण सम्बन्धी कतिपय दोष रह गये होंगे किन्तु उदारमना पाठक उसका स्वविवेक से मार्जन करेंगे, ऐसा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक में शास्त्रों से जो भी प्रमाण दिए गए हैं, उनमें हमने सबों के बृहत्तर संस्करण का आश्रय लिया है। बृहत्तर संस्करण से यह तात्पर्य है कि मेरे पास महाभारत, रामायण अथवा पुराणों के जितने पाठभेदों से युक्त जितने भी संस्करण उपलब्ध हैं, उनका समग्र सम्मिलित रूप बनाने के बाद जो बृहत्तर संस्करण निर्मित हुआ, उसके आधार पर अध्याय एवं श्लोक संदर्भित किये गए हैं। इससे आपको कुछ प्रकाशकों की प्रतियों में अध्याय तथा श्लोकों के क्रम में कुछ असंतुलन का बोध हो सकता है अतएव आप अपने पास उपलब्ध प्रकाशक की प्रति एवं पाठभेद के संस्करण के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करके पठन करें ताकि अनावश्यक भ्रम एवं आक्षेप की स्थिति न उत्पन्न हो।

। सीतापतिर्जयति भूपतिचक्रवर्ती।

श्रीभागवतानंद गुरु
श्मशानकाली मन्दिर, राँची
भाद्रपद कृष्ण अघोरचतुर्दशी, विक्रम संवत् - २०७७

* * *

प्रथम भाग

अनन्यो भाष्यकारोऽस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
रामभद्रस्य गर्वोक्तिं शिष्या दध्मुः दिगन्तरम्॥

'मैं अद्वितीय भाष्यकार हूँ, मेरे समान यहाँ कौन है ?'
रामभद्राचार्य की ऐसी गर्वोक्ति को शिष्यगण सभी दिशाओं में गुञ्जायमान करने लगे।

बहुत दिनों से एक अद्भुत विवाद चल रहा है। श्रीराम जी के चरित्र की समीक्षा चल रही है। जिनके चरित्र के विषय में नारद, भगवान् शिव, वशिष्ठ मुनि आदि का वचन है कि वे भी उन्हें पूरा पूरा नहीं जानते, उन परात्पर श्रीराम जी के चरित्र की समीक्षा आजकल के लोग कर रहे हैं। कोई कहता है, राम भगवान् थे ही नहीं, केवल महापुरुष थे, यद्यपि वे भूल जाते हैं कि शिव जी किसी महापुरुष को प्रणाम नहीं करते, ब्रह्मदेव किसी महापुरुष की स्तुति नहीं करते। ये तो केवल नारायण के ही प्रेमी हैं।

कोई कहता है कि किस बात के मर्यादापुरुषोत्तम ? राम का कृत्य तो अक्षम्य है। उनके ऊपर सीतात्याग का कलंक लगा हुआ है, 'निरपराध' शम्बूक के वध के द्वारा उन्होंने समाज का शोषण किया है। कोई कहता है कि नहीं नहीं, राम जी तो बहुत अच्छे थे, उनके विषय में सीतात्याग, शम्बूक वध आदि की बातें तो किसी ने बाद में जोड़ दीं, किसी ने प्रक्षिप्त अंश मिला दिया, ये सब बातें काल्पनिक हैं। वस्तुतः, ये सभी लोग राम जी के बहाने केवल अपनी कल्पना के आधार पर वक्तव्य देते रहते हैं। हमारे ग्रंथों में लिखी एक एक बात सत्य है, प्रामाणिक है और असंदिग्ध है।

अभी हाल ही में प्रचारित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य जी के द्वारा एक वक्तव्य आया, जिसका मुख्य बिंदु इस प्रकार है,

१) सीता त्याग हुआ ही नहीं, लवकुश का जन्म घर में ही हुआ।
२) धोबी आदि ने कोई लोकापवाद नहीं फैलाया।
३) राम जी ने शम्बूक का वध नहीं किया है।

४) उपर्युक्त कथाओं का वर्णन करने वाला वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकांड पूरा प्रक्षिप्त है, वाल्मीकि जी ने उत्तरकांड लिखा ही नहीं।
५) बाद में बौद्धों ने अपने मन से ग्रंथों में मिलावट कर दी है।

मुझे इस बात की आशंका है कि तो रामभद्राचार्य जी ने किसी आर्थिक या राजनीतिक लाभ के उद्देश्य की पूर्ति हेतु बड़े नाटकीय ढंग से प्रस्तुति देते हुए सनातनी समाज की श्रद्धालु, जिज्ञासु किन्तु शास्त्रज्ञान से रहित जनता को भावनात्मक मूर्ख बनाने का कार्य किया है अथवा उन्होंने जानबूझकर अतिरिक्त प्रसिद्धि के लिए शास्त्रीय प्रमाणों की घोर उपेक्षा करते हुए यह वक्तव्य दिया है।

आर्थिक या राजनीतिक स्वार्थ की बात मैं इसीलिए करता हूँ कि आजकल मठ मन्दिर के वैभव में अपार धन भी चाहिए, और रामभद्राचार्य जी का वीडियो निकट समय में भी आया था जिसमें कहा गया था कि तुलसी पीठ ही एकमात्र शास्त्रोक्त एवं प्रामाणिक पीठ है, जिसके प्रति लोगों को भरपूर दान करना चाहिये। वैसे भी जिन नेताओं से उनकी विशेष नजदीकियां देखी जा सकती हैं, वे एवं उनके दल वाले श्रीराम जी को तो भगवान् मानते ही नहीं, अपितु महापुरुष मानते हैं। अस्तु, यह केवल मेरी निजी आशंका है, क्योंकि धर्माधिकारियों को निष्पक्ष, निराश्रित एवं निर्भय होना चाहिए, जिस विषय में रामभद्राचार्य जी के वक्तव्य घोर निराशा को जन्म देते हैं।

आज हम सीतात्याग, रजक (धोबी के प्रसङ्ग), शम्बूक वध एवं वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड की प्रामाणिकता की वार्ता करेंगे, किन्तु उससे पूर्व कुछ और बिंदुओं पर ध्यान देते हैं। रामभद्राचार्य जी कुशाग्र हैं, निजी रूप से तपस्वी भी हो सकते हैं, लोगों के मध्य सम्मानित हैं और बहुत से प्रतिष्ठित पुरस्कार भी मिल चुके हैं। रामानन्द वैष्णव सम्प्रदाय से दीक्षित दंडी संन्यासी हैं, और सम्भवतः सम्प्रदाय के नाम पर चलाये गए नेत्रहीनों के विश्वविद्यालय के कुलाधिपति भी हैं।

संन्यासोपनिषत् के अनुसार अंगविकल व्यक्ति संन्यासी बनने का अधिकारी ही नहीं है। रामभद्राचार्य जी नेत्रहीन होने से इसके लिए प्रथमदृष्ट्या अनुपयुक्त हो गए। पुनः कुछ का मत है कि उपनिषदों की यह बात जन्म से विकलांग पर विशेष लागू होती है, बाद में अंग भंग हुआ, उस पर नहीं, क्योंकि नश्वर देह है, धीरे धीरे कैसे भी क्षीण तो होगा ही न। यदि व्यक्ति बाद में विकलांग हुआ, किन्तु तपस्वी है, शास्त्रज्ञ है तो संन्यास में कैसा दोष ? और रामभद्राचार्य जी तो बाद में नेत्रदोष से ग्रस्त हुए।

चलो, ये बात मान ली, संन्यासोपनिषत् में ही आगे कहा है कि विकलांग आदि व्यक्ति यदि योग्य हों, और संन्यास ले लें तो भी महावाक्योपदेश, प्रवचन आदि के अधिकारी नहीं हैं। आतुरसंन्यास, मरने के समय लिया जाने वाला वाचिक वैराग्य हो तो अलग बात है, उसमें अधिक नियमभेद नहीं है।

विद्वान् होना और संन्यासी होना, कथावाचक होना और पुरोहित होना, कर्मकांडी होना और ज्योतिषी या तांत्रिक होना, वैदिक होना और दार्शनिक होना, सब अलग अलग है। हिन्दू समाज, बाबा मतलब सबको एक ही समझता है। बाबा मतलब बाबा, और कुछ नहीं - बाबा वाक्यं सदा सत्यम् को मानता है। कौन क्या है, किसका क्या अधिकार है, किसमें क्या योग्यता है, आदि आदि का विचार ही नहीं करता, तभी तो 'अली मौला' वाले मोरारी बापू को भी संत ही मान लेता है। 'सूरत आपकी सुभानल्लाह' वाले चिन्मयानन्द बापू तो राष्ट्रीय संत बने घूम ही रहे हैं।

शास्त्र एक एक पद की, उसके कर्तव्य की क्या सूक्ष्म परिभाषा देता है, इसका एक छोटा उदाहरण देता हूँ। साधु-संत शब्द को ही ले लीजिए। वैसे तो इसके कई प्रकार और परिभाषा वर्णित हैं किंतु केवल संकेत समझाने के लिए एक एक उदाहरण देता हूँ।

ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्च देवानां व्यक्तमूर्तयः।
सम्पूज्या ब्रह्मणा ह्येतास्तेन सन्तः प्रचक्षते॥

ब्राह्मण ग्रंथ और वेदों के शब्द, ये देवताओं की निर्देशिका मूर्तियां हैं। जिनके अन्तःकरण में इनके और ब्रह्म का संयोग बना रहता है, वह सन्त कहलाते हैं।
(मत्स्यपुराण के अनुसार)

न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम्॥

जो अपना सम्मान होने पर प्रसन्न नहीं होता एवं अपमान होने पर क्रोधित नहीं होता। क्रुद्ध होकर जो कठोर वाणी नहीं बोलता, वह साधु है।
(गरुड़पुराण के अनुसार)

क्या समाज वाले किसी को साधु या सन्त समझने एवं घोषित करने से पूर्व इन बातों पर विचार करते हैं ? नहीं, क्योंकि उन्हें न इन बातों का ज्ञान है, न अपने अज्ञानी होने का बोध। वे तो स्वयं को इतना ज्ञानी मानते हैं कि सीधे राम जी के आचरण की समीक्षा करने लगते हैं। जो इन्द्र को एक आदेश देकर अमृतवर्षा से वानरों को जीवित करवा सकते हैं, उनकी दृष्टि, शक्ति, आचरण आदि का स्तर क्या होगा, इसका थोड़ा भी अनुमान ऐसे लोग क्यों नहीं लगाते ?

रामभद्राचार्य जी के संन्यास में अधिकृत होने या न होने के विवाद से दूर जाते हुए अब पीठ पर आते हैं। तुलसी पीठ कोई प्रामाणिक शास्त्रोक्त पीठ नहीं है, अपितु स्वयम्भू पीठ है। अपने राघवकृपाभाष्य में रामभद्राचार्य जी श्रीआद्यशंकराचार्य जी के लिए विक्षिप्त आदि शब्द का प्रयोग भी कर चुके हैं। ये शब्द तो स्वयं उनके सम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्य जी ने भी नहीं लिखे। यह एक कटु सत्य है कि नेत्र जैसे महत्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय के अभाव में व्यक्ति भले कितना शास्त्र सुन कर स्मरण कर लें, बोलकर ग्रंथ लिखवा दे, किन्तु चाटुकारों से सदैव घिरा रहता है, जो उसे सर्वज्ञ होने का भ्रम दिलाते रहते हैं।

रामभद्राचार्य जी के शिष्यगण यह न समझें कि मेरे इस लेख का उद्देश्य उनका अपमान करना, मूर्ख सिद्ध करना या स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करना है। ऐसा उद्देश्य मेरा है ही नहीं। मैं तो बस उन प्रमाणों को सजाकर आपके समक्ष रख रहा हूँ जिनके प्रकाश में सत्य स्वयं आलोकित होगा। मैं केवल राम जी के चरित्र के संदर्भ में व्याप्त भ्रम और विवाद को एक उचित दिशा देने का प्रयास कर रहा हूँ।

एक सज्जन ने लिखा कि अब तो वर्तमान के "एकमात्र जगद्गुरु" रामभद्राचार्य ने भी कह दिया, और तो और कुमार विश्वास भी कह रहे हैं कि राम जी ने सीता त्याग नहीं किया, इसीलिए सनातनी समाज को अब ये बात मान लेनी चाहिए। हद है, एकमात्र जगद्गुरु ? मित्र महोदय को सम्भवतः स्मरण नहीं कि इस देश में श्री (शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्दाचार्य) जी की मूल पीठों में मान्य जगद्गुरुओं की परम्परा सहस्रों वर्षों से आजतक चली आ रही है, जो अनेकों बार मुक्त कंठ से रामभद्राचार्य जी के मत का कठोर खंडन कर चुके हैं। और कुमार विश्वास क्या हैं ? साहित्यिक प्रतिभा वाला व्यक्ति शास्त्रज्ञ नहीं होता, न धर्माधिकारी होता है। यदि साहित्यिक प्रतिभा की बात ही करते हैं तो अपने अपने भाषा और विषय में ग़ालिब, राहत इंदौरी, इकबाल आदि का भी नाम बड़ा ही है, उन्हें भी शास्त्रज्ञ मान लें ? वाक्पटुता

शास्त्रनैपुण्य का प्रमाण नहीं होती है। एक दूसरे सज्जन ने रामभद्राचार्य जी के वक्तव्य का आश्रय लेकर कह दिया कि धोबी का प्रसङ्ग, शम्बूक का प्रसङ्ग सब नकली है, किसी ने बाद में लिख दिया। अच्छा जी ... आपको कैसे पता कि बाद में लिख दिया ? वाल्मीकि जी को कागज कलम की आपूर्ति आप ही करते थे क्या अथवा आपको राम जी ने स्वप्न दिया था ? जिनकी लीला को समझने में बड़े बड़े त्रिकालदर्शी योगीजन भ्रमित हो जाते हैं, उनकी लीला जब इन लोगों को समझ नहीं आती तो श्रद्धापूर्वक गुरुजनों के पास जाकर समझने के स्थान पर सीधे प्रसङ्ग को ही मिलावटी बता देते हैं।

आप भरद्वाज ऋषि से बड़े ज्ञानी हैं ? आप सनत्कुमार, गरुड़ जी, काकभुशुण्डि, वात्स्यायन जी, माता पार्वती आदि से भी श्रेष्ठ हैं ? जब ये लोग रामकथा को समझने में भ्रमित हो गए तो ज्ञात है, इन्होंने क्या किया ? इन्होंने राम जी की समीक्षा प्रारम्भ नहीं कर दी, इन्होंने प्रसङ्गों को प्रक्षिप्त कहना प्रारम्भ नहीं कर दिया। अपितु सनत्कुमार ने हनुमानजी से पूछा। भरद्वाज ऋषि ने ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य की शरण ग्रहण की। गरुड़ महाराज काकभुशुण्डि के पास गए, काकभुशुण्डि जी ब्रह्मदेव और शिव जी के पास गए। माता पार्वती ने शिव जी से प्रश्न किया। वात्स्यायन ऋषि ने शेषनाग की शरण ग्रहण की।

मैं अब मुख्य लेख प्रारम्भ करूं, इससे पूर्व कुछ बातें स्पष्ट कर देता हूँ। न वाल्मीकि जी रामकथा के एकमात्र ज्ञाता हैं, न उन्होंने सम्पूर्ण रामचरित्र का लेखन किया है और न ही उन्होंने मात्र एक ही रामायण लिखी है। वाल्मीकि जी से पूर्व ही हनुमानजी ने सनत्कुमार आदि को रहस्य रामायण सुनाई थी। ब्रह्मदेव ने काकभुशुण्डि को भुशुण्डि रामायण सुनाई थी। शिव जी ने माता पार्वती को अध्यात्म रामायण सुनाई थी। और साथ ही अगस्त्य जी की अगस्त्य रामायण, लोमश मुनि की लोमश रामायण आदि भी थीं।

अब प्रश्न है कि वाल्मीकि जी को आदिकाव्य का रचयिता क्यों कहा गया ? वह इसीलिए कि उपर्युक्त सभी प्राचीन रामायण देवताओं के पास दिव्य लोकों में थीं, श्रोता-वक्ता सभी देवता थे। पृथ्वी पर मानवीय प्रारूप में रामकथा को सुलभ कराने का श्रेय, मनुष्य श्रोता-वक्ता में प्रसारण का निमित्त वाल्मीकि जी बने इसीलिए वे आदिकवि कहलाये। वाल्मीकीय रामायण के प्रथम सर्ग में, जिसे मूलरामायण भी कहते हैं, स्वयं वाल्मीकि जी ने देवर्षि नारद से प्रश्न करके रामकथा का संक्षिप्त विवरण प्राप्त किया है। अति-उत्साही लोग कहते हैं कि हम तो केवल एक वाल्मीकीय रामायण को ही प्रमाण मानते हैं, शेष किसी और रामायण को नहीं, और वाल्मीकीय रामायण में भी केवल लंकाकांड तक। अद्भुत !! फिर

इसी प्रथम अध्याय के आधार पर लोग कहते हैं कि मूलरामायण में उत्तरकाण्ड की कथा का वर्णन नहीं है, अतएव उत्तरकाण्ड बाद में जोड़ा गया होगा। उन लोगों को मैं बता दूं कि इस मूलरामायण में तो राम जी का अवतार, ताड़का वध, अहल्या उद्धार, सीता विवाह के घटनाक्रम आदि भी वर्णित नहीं है तो क्या ये सब प्रसङ्ग भी काल्पनिक ही हैं ?

वाल्मीकीय रामायण के प्रथम सर्ग (मूलरामायण) में ही निम्न श्लोक है।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥

ग्यारह हजार वर्षों तक राम जी राज्य करके अपने परमपद को चले जायेंगे।

अब हमें बताएं कि राम जी का राज्याभिषेक तो उनके पचास वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही हो गया था। जिनका लौकिक कार्यकाल ग्यारह हजार वर्षों का हो, उनके जीवन का वर्णन वाल्मीकि जी ने क्या लंकाकांड तक ही किया ? शेष दस हज़ार, नौ सौ पचास वर्षों तक राम जी निष्क्रिय रहे या वाल्मीकि जी ? ऐसा क्या हो गया कि पूरे कार्यकाल का आधा प्रतिशत भी वाल्मीकि जी ने ढंग से नहीं लिखा ? ऐसा नहीं है ! न राम जी निष्क्रिय रहे, न वाल्मीकि जी। भगवान् ने लीला भी की और ऋषियों ने वर्णन भी किया।

राम जी के प्रारंभिक जीवन का ऋषि वाल्मीकि ने आर्ष रामायण अर्थात् वाल्मीकीय रामायण में किया। फिर उनके बाद के हज़ारों वर्षों के जीवन का वर्णन आनन्द रामायण में लिखा, जिसे स्वयं राम जी ने गुप्त कथाओं से युक्त होने के कारण कीलित कर दिया, जैसे सरकार गुप्त कागजातों को दबा देती है। साथ ही यह कहा कि अनेकों जन्मों के पुण्य जब मिलते हैं तो आनन्द रामायण नाम के ग्रंथ का पता चलता है, पढ़ना तो और भी दुर्लभ है। अतएव यह ग्रंथ समाज में कम प्रसिद्ध हुआ और तपस्वी विद्वानों के पास ही रहा। इसके बाद वाल्मीकि जी ने सीता जी के रहस्यमयी लीलाओं का वर्णन अद्भुत रामायण में किया एवं श्रीराम तथा गुरु वशिष्ठ के आध्यात्मिक संवादात्मक जीवन का वर्णन योगवाशिष्ठ रामायण में लिखा।

श्रीराम जी का अवतार कोई एक बार नहीं हुआ है, और न ही किसी एक ही रामायण में सब वर्णित है। प्रत्येक कल्प (ब्रह्मा के अनुसार एक दिन और मनुष्यों के अनुसार चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष) में एक बार श्रीराम जी का अवतार होता है, जिसमें कुछ घटनाओं की समानता और कुछ की भिन्नता होती है। उदाहरणस्वरूप, इस कल्प में राम जी ने पांच दिन में समुद्र पार पुल बंधवाया था और चैत्र कृष्ण चतुर्दशी को रावण वध

किया। पिछले कल्प में राम जी ने दो घड़ी (अड़तालीस मिनट) में ही रामसेतु बनवाया था और रावण वध विजयादशमी को किया था। उससे पिछले कल्प में सीता स्वयंवर ही नहीं हुआ था, अपितु राजा दशरथ पहले ही पुत्र का विवाह प्रस्ताव लेकर जनकपुरी चले गए थे। बाद में शिव जी कहने पर नियम हेतु धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी गयी थी। उस कल्प में तो रामसेतु भी नहीं बना था, उसी दिव्य विस्तार वाले शिव धनुष पर चढ़कर समुद्र पार हो गए थे।

उससे भी पिछले कल्प में तो कैकयी ही नहीं थी। राजा दशरथ की चार पत्नियां थीं - कौशल्या, सुमित्रा, सुवेशा और सुरूपा, सबसे एक एक पुत्र थे। उससे भी पिछले कल्प में बाल्यकाल के राम लक्ष्मण को मारने के लिए रावण असुरों को भेजता था जिसके बाद राजा दशरथ ने कुछ समय उन्हें वृन्दावन में अज्ञातवास करा दिया था। एक कल्प में राम जी ने कुम्भकर्ण को मारा था, एक कल्प में कुम्भकर्ण का वध लक्ष्मण जी ने किया था। ये सब गुप्त कथाएं, पद्मपुराण, भुशुण्डि रामायण, पुराकल्प रामायण, महाभागवत, कालिकापुराण आदि में मिलेंगी। इसीलिए वाल्मीकि जी ने आनन्द रामायण के रामरक्षास्तोत्र में बुधकौशिक ऋषि का वचन लिखा है :-

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।

राम जी का दिव्य चरित्र, सैकड़ों करोड़ों प्रकार का है। जो ब्रह्म अनादि और अनन्त है, उसे कुछ श्लोक और पन्नों में भला बांध भी कैसे सकते हैं ? वाल्मीकि, वेदव्यास, काकभुशुण्डि आदि को रामकथा जानने के लिए गुरुजनों के पास जाना पड़ा, कई हज़ार वर्षों तक घोर तपस्या करनी पड़ी, तब कुछ जान पाए, किन्तु आज के लोग, जो सूर्योदय से पहले सोकर जग तक नहीं सकते, सीधे घोषणा करने लगते हैं कि ये वाला असली है, ये वाला नकली है। वाल्मीकि एवं वेदव्यास दोनों ही सनातन धर्म में देवतातुल्य पूज्य हैं और दोनों ने ही आर्ष तथा अध्यात्म रामायण में उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत इन कथाओं का वर्णन किया है। सर्वदेवावाहनप्रकरण के अनुसार पुराणों में याजक के लिए जो मन्त्र हैं, उसमें निम्न वर्णन देखें –

अहमावाहयिष्यामि वाल्मीकिं तपसां निधिम्॥
वाल्मीके त्वमिहाभ्येहिवेदोद्धरणतत्पर॥
व्यासमावाहयिष्यामि वेदव्यासं जगद्गुरुम्॥ वेदव्यास त्वमभ्येहि सर्वधर्मप्रदर्शक॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अध्याय – १०६, श्लोक – ९९ एवं १०७)

आवाहन मन्त्र का अर्थ – मैं तपस्या के भण्डार वाल्मीकि का आवाहन करता हूँ। हे वेदों के उद्धार (संरक्षण) में तत्पर वाल्मीकि ! आप यहां आएं। मैं वेदों का विस्तार करने वाले जगद्गुरु व्यास का आवाहन करता हूँ। हे सभी धर्मों को प्रकाशित करने वाले वेदव्यास ! आप यहां आएं। मैं आगे इस विषय पर शास्त्रोक्त प्रमाण प्रस्तुत करूं, इससे पूर्व वाल्मीकिकृत योगवाशिष्ठ महारामायण में एक प्रसङ्ग का अवलोकन करें।

अन्तर्धानं गता धात्री वारपञ्चकमुद्धृता। मुने पञ्चसु सर्गेषु कूर्मेणैव पयोनिधेः॥
मन्दराकर्षणावेगपर्याकुलसुरासुरम्। स्मरामि द्वादशं चेदममृताम्भोधिमन्थनम्॥
सर्वौषधिरसोपेतां बलिग्राहस्तदा दिवः। वारत्रयहिरण्याक्षो नीतवान्वसुधामधः॥
रेणुकात्मजतां गत्वा षष्ठवारमिमं हरिः। बहुसर्गान्तरेणापि चकार क्षत्रियक्षयम्॥
शतं कलियुगानां च हरेर्बुद्धदशाशतम्। शौकराजतयैवाप्तं स्मरामि मुनिनायक॥

काकभुशुण्डि जी कहते हैं – हे वशिष्ठ ! मैंने पांच बार इस पृथ्वी को अंतर्धान होते देखा है और पांच बार की सृष्टि में इसे उद्धृत होते देखा है। पांच बार की सृष्टि में मैंने कूर्मावतार के माध्यम से ऐसा होते देखा है। मुझे स्मरण आता है कि मैंने मन्दराचल के घर्षण से देवताओं एवं असुरों को सभी औषधि एवं रसों से परिपूर्ण समुद्र का मंथन, बारह बार होते देखा है, और साथ ही दैत्यराज बलि के द्वारा स्वर्ग का अधिग्रहण करते देखा है। मैंने तीन बार हिरण्याक्ष को पृथ्वी को नीचे ले जाते देखा है, मैंने छह बार भगवान् विष्णु का परशुरामावतार और अधर्मी क्षत्रियों का संहार करते देखा है। मैंने सैकड़ों बार कलियुग और हज़ारों बार भगवान् विष्णु का बुद्धावतार देखा है।

त्रिंशत्त्रिपुरविक्षोभान्द्वौ दक्षाध्वरसंक्षयौ। दशशक्रविघातांश्च चन्द्रमौलेः स्मराम्यहम्॥
बाणार्थमष्टौ संग्रामाञ्ज्वरप्रमथमन्त्रकान्। विक्षोभितसुरानीकान्स्मरामि हरिशर्वयोः॥
युगं प्रति धियां पुंसां न्यूनाधिकतया मुने। क्रियाङ्गपाठवैचित्र्ययुक्तान्वेदान्त्यराम्यहम्॥
एकार्थानि समग्राणि बहुपाठानि मेऽनघ। पुराणानि प्रवर्तन्ते प्रसृतानि युगं प्रति॥
पुनस्तानेव तानेवमन्यानपि युगे युगे। वेदादिवत्प्ररचितानितिहासान्स्मराम्यहम्॥

मैंने तीस बार शिव जी के द्वारा त्रिपुरासुर का नाश, दो बार दक्ष के यज्ञ का नाश देखा है। शिव जी द्वारा दस बार इन्द्रों का विनाश देखा है। (शिवजी ने पांच इन्द्रों का विनाश किया था, जो अगले जन्म में पाण्डव बने। इस घटना को दो बार देखने से दस इन्द्रों का विनाश

हो गया)। देवताओं को भी क्षुब्ध करने वाले, बाणासुर के निमित्त भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण का ज्वर और प्रमथ गणों से सम्बन्धित मान्त्रिक युद्ध मैंने आठ बार देखा है। अलग अलग युगों में लोगों की बुद्धि अलग अलग स्तर की होती है, अतएव हे मुने ! क्रिया, पाठ आदि की विचित्रता से वेदों को प्रकाशित किया गया है। एक ही अर्थ, किन्तु अलग अलग पाठों से भरे हुए युगों युगों में कई पुराणों का प्रवर्तन हुआ है। फिर अलग अलग युगों में उन्हीं पुराण एवं वेदों के ही समान इतिहासग्रंथों की भी रचना होती है।

इतिहासं महाश्चर्यमन्यं रामायणामिधम्। ग्रन्थलक्षप्रमाणं च ज्ञानशास्त्रं स्मराम्यहम्॥
रामवद्व्यवहर्तव्यं न रावणविलासवत्। इति यत्र धियां ज्ञानं हस्ते फलमिवार्पितम्॥
कृतं वाल्मीकिना चैतदधुना यत्करिष्यति।
अन्यच्च प्रकटं लोके स्थितं ज्ञास्यसि कालतः॥
वाल्मीकिनाम्ना जीवेन तेनैवान्येन वा कृतम्।
एतच्च द्वादशं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्॥
द्वितीयमेतस्य समं भारतं नाम नामतः। स्मरामि प्राक्तनव्यासकृतं जगति विस्मृतम्॥
व्यासाभिधेन जीवेन तेनैवान्येन वा कृतम्। एतत्तु सप्तमं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्॥
आख्यानकानि शास्त्राणि निवृत्तानि युगं प्रति।
विचित्रसंनिवेशानि संस्मरामि मुनीश्वर॥
भूयस्तान्येव तान्येव तथान्यानि युगे युगे।
साधो पदार्थजालानि प्रपश्यामि स्मरामि वै॥

एक दूसरा महान् आश्चर्यजनक इतिहासग्रंथ है, जिसे रामायण कहते हैं, उस एक लाख की (श्लोक अथवा प्रकार) सीमा वाले ज्ञानशास्त्र को मैं स्मरण करता हूँ। राम के समान आचरण करना चाहिए, रावण के समान मनमौजी नहीं, इस प्रकार से हाथ में रखे फल के समान (प्रत्यक्ष एवं सर्वांगीण) ज्ञान जिस ग्रंथ में भरा हुआ है, उसे पूर्वकल्प वाल्मीकि लिख चुके थे एवं पुनः अभी लिखेंगे। वाल्मीकि नामक जीव के द्वारा, साथ ही अन्य (अगस्त्य, व्यास आदि) के द्वारा भी लिखे जाने वाले इस रामायण को बारह बार (बारह सृष्टियों में) लिखा गया है, इतना मुझे स्मरण है, जिस बात को संसार भूल गया है। दूसरे महान् इतिहासग्रंथ का नाम महाभारत है। इसे पूर्वकाल में व्यास ने लिखा था। व्यास नामक जीव, साथ ही अन्य (जैमिनी आदि) के द्वारा भी इसे सात बार लिखा गया है, ऐसा

मुझे स्मरण है किंतु शेष जन इसे भूल चुके हैं। हे मुनीश्वर ! अलग अलग युगों में शास्त्रों के बहुत से विचित्र आख्यानक लिखे गए और समाप्त हो गए, जिनका मुझे स्मरण है। हे साधो ! मैं माया से निर्मित इस संसार में इस प्रकार अनेकों युगों के अनेकों घटनाओं को बारम्बार देखता और स्मरण करता हूँ।

राक्षसक्षतये विष्णोर्महीमवतरिष्यतः। अधुनैकादशं जन्म रामनाम्नो भविष्यति॥
नारसिंहेन वपुषा हिरण्यकशिपुं हरिः। जघान वारत्रितयं मृगेन्द्र इव वारणम्॥
वसुदेवगृहे विष्णोर्भुवो भारनिवृत्तये। अधुना षोडशं जन्म भविष्यति मुनीश्वर॥
जगन्मयी भ्रान्तिरियं न कदाचन विद्यते। विद्यते तु कदाचिच्च जलबुद्बुदवस्थिता॥
(योगवासिष्ठ, निर्वाणप्रकरण, पूर्वार्ध, सर्ग – २२, श्लोक – १२-३३)

राक्षसों के संहार के लिए विष्णु धरती पर जो अवतार लेते हैं, उसमें राम नाम का यह उनका ग्यारहवां जन्म होगा। जैसे सिंह हाथी को विदीर्ण कर देता है, वैसे ही नृसिंह अवतार में हिरण्यकशिपु को भगवान् विष्णु ने जब मारा था, उस घटना कोमैंने तीन बार देखा है। पृथ्वी के भार को हरने के लिए वसुदेव के घर में भगवान् (श्रीकृष्ण) का जो जन्म होता है, वह अब सोलहवीं बार होगा। संसार भ्रम के समान है, और कुछ नहीं। जैसे पानी में बुलबुला होता है, वैसे ही संसार को समझना चाहिए।

उपर्युक्त प्रमाण में यह ध्यान दें कि काकभुशुण्डि जी को जितना याद था, उन्होंने उतना ही बताया है, किन्तु यह बात इतनी ही नहीं है। लोमश, बकदाल्भ्य जैसे योगीश्वर इससे भी आगे की दृष्टि रखते हैं। हम यह भी समझते हैं कि प्रत्येक कल्प, मन्वन्तर अथवा युग में इस प्रकार से घटनाओं की पुनरावृत्ति कुछ समानता एवं भिन्नता के साथ होती है। वेदव्यास एवं वाल्मीकि के सन्दर्भ में भी इस रहस्य को समझकर ही विचार करना चाहिए।

अब हम ऋषि वाल्मीकि पर चर्चा करते हैं। इनके विषय में पर्याप्त विवाद है। निम्न दो प्रधान मत संसार के विभिन्न विद्वान् रखते हैं –

१) वाल्मीकि पहले डाकू थे, बाद में मरा मरा जपकर ऋषि बने।
२) डाकू वाल्मीकि अलग थे एवं रामायणकार वाल्मीकि अलग थे।

मैंने इस विषय में शास्त्रों के अध्ययन से जो जो बातें समझी हैं, उन्हें यथावत् प्रस्तुत करूँगा। कुछ विद्वान् कहते हैं कि नाभादास जी ने भक्तमाल में वाल्मीकि को रत्नाकर

नामक डाकू बताया है, उससे पूर्व कहीं उनके डाकू होने का वर्णन नहीं मिलता है। इस सन्दर्भ में वे निम्न श्लोक का प्रमाण बहुतायत से देते हैं –

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन। न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता। नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥
(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग – ९६, श्लोक – १९-२०)

सीताशपथग्रहण के प्रसङ्ग में ऋषि वाल्मीकि ने कहा – हे रामजी ! मैं प्रचेता (मित्रावरुण) का दसवां पुत्र हूँ। मैंने इससे पूर्व कभी झूठ कहा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता है। ये दोनों (कुश एवं लव) आपके ही पुत्र हैं। मैंने हज़ारों वर्षों तक तपस्या की है, यदि सीताजी का चरित्र अशुद्ध है, तो उस तपस्या का फल मुझे न मिले।

देवमण्डल में मित्रावरुण (प्रचेता) के अन्य पुत्र, जैसे अगस्त्य, वशिष्ठ आदि की ब्राह्मण संज्ञा है। अगस्त्य ने अपना दूसरा तथा वशिष्ठ ने तीसरा जन्म मित्रावरुण के अंश से ही लिया था। सायणाचार्य ने ऋग्वेद भाष्य में *प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः* लिखा है, अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त होने से प्रचेता (प्रचेतस्) कहते हैं।

नाभादास जी ब्रह्मा के अवतार माने जाते हैं। जब ब्रह्माजी ने अघासुर वध के बाद भगवान् के प्रभाव पर सन्देह करके ग्वालबालों एवं गौसमूह का अपहरण कर लिया था उसके बाद भगवान् के दिव्य सर्वव्यापी प्रताप को देखकर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने सभी अपहृत जनों को मुक्त करते हुए भगवान् से क्षमा मांगी, ये सब कथा श्रीमद्भागवत आदि में वर्णित है। सन्तजनों का मत है कि भक्तों के प्रति अपराध करने के कारण ब्रह्माजी ने ही एक अंश से नाभादास का अवतार लिया और भक्तमाल की रचना करते हुए उसमें भगवद्भक्तों का चरित्र लिखा, जिसका सभी मान्य आचार्यगण सम्मान करते हैं। श्रीकरपात्री स्वामी आदि भी भक्तमाल की कथा बड़े आदर से सुनते थे। जैसा कि मैंने परम चिरंजीवी काकभुशुण्डि जी के वचनों से सिद्ध किया था कि अनेकों कल्पों के अनेकों रामायणों के लेखन के लिए अनेकों बार वाल्मीकि आये हैं, तो उनमें से ही कुछ प्रधान उदाहरण मैं प्रस्तुत करता हूँ। मैं संक्षेप में ही सारभूत शब्दों में कथानकों का वर्णन करूँगा।

त्रेतायुगे चतुर्विंशे भृगुवंशोद्भवेन तु ॥ वाल्मीकिना तु रचितं स्वमेव चरितं शुभम् ॥
रामाख्यानं महापुण्यं श्रोतृणां विष्णुलोकदम् ॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड – ०१, अध्याय – ७४, श्लोक – ३८-३९)

चौबीसवें त्रेतायुग में भृगुवंश में उत्पन्न वाल्मीकि के द्वारा रामजी का शुभ चरित्र जो अत्यंत पुण्यदायी है, लिखा गया, जिससे सुनकर श्रोतागण विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। सर्वप्रथम हम उस कथा का वर्णन करेंगे जब भृगुवंश में वाल्मीकि ऋषि का जन्म हुआ था।

सनत्कुमार उवाच

आसीद्व्यास पुरा विप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः। रूपयौवनसम्पन्ना तस्य भार्याथ कौशिकी॥
तस्य पुत्रः समुत्पन्नो ह्यग्निशर्मेति नामतः।
स पित्रा प्रोच्यमानोऽपि वेदाभ्यासं न मन्यते॥
ततो बहुतिथे काले अनावृष्टिरजायत।
तस्यां विपद्गतः सोऽथ दक्षिणामाश्रितो दिशम्॥
ततोऽसौ सुमतिर्विप्रः सभार्यः ससुतस्तथा।
विदेशं काननं प्राप्तः कृत्वा चाश्रममाश्रितः॥

सनत्कुमार कहते हैं – हे वेदव्यास जी ! पूर्वकाल में भृगुवंश में उत्पन्न सुमति नाम के एक ब्राह्मण थे। उनकी अत्यन्त सुन्दर एवं यौवनसम्पन्ना कौशिकी नाम की पत्नी थी। उनका पुत्र जब उत्पन्न हुआ तो उसका नाम अग्निशर्मा रखा गया। अपने पिता के कहने पर भी अग्निशर्मा की रुचि शिक्षा दीक्षा, वेदाभ्यास आदि में नहीं थी। बहुत समय बीतने पर उस क्षेत्र में घोर अकाल पड़ा जिस विपत्ति से बचने के लिए सुमति नाम वाले वे ब्राह्मण, अपनी पत्नी एवं पुत्र के साथ दक्षिण दिशा में स्थित, अपने देश से दूर एक जंगल में चले गए।

आभीरैर्दस्युभिः सार्धं सङ्गोऽभूदग्निशर्मणः।
आगच्छति पथा तेन यस्तं हन्ति स पापकृत्॥
स्मृतिर्नष्टा गता वेदा गतं गोत्रं गता श्रुतिः। कस्मिंश्चिदथ काले तु तीर्थयात्राप्रसंगतः॥
सप्तर्षयः पथा तेन सुव्रताः समुपस्थिताः।
अग्निशर्माथ तान्दृष्ट्वा हन्तुकामोऽब्रवीदिदम्॥
वस्त्राणीमानि मुच्यध्वं छत्रिकोपानहौ तथा।
हन्तव्या हि मया यूयं गन्तारो यमसादने॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत्। अस्मत्पीडनजं पापं कथं ते हृदि वर्तते॥
वयं तपस्विनो भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः॥

उस जंगल में आभीर जाति के कुछ लुटेरे रहते थे। उन्हीं के साथ अग्निशर्मा की संगति हो गयी। उसके बाद वन के मार्ग में आने वाले लोकों को वह पापी मारने लगा। अपने ब्राह्मण होने का, उसके कर्तव्य का उसे विस्मरण हो गया। उसने थोड़ा बहुत जो वेद आदि पढ़ा था, वह भी भूल गया, उसे अपने गोत्र आदि का भी स्मरण न रहा। कुछ काल के बाद वहां से तीर्थयात्रा हेतु उत्तम व्रत का पालन करने वाले सप्तर्षियों का आगमन हुआ। उन्हें देखकर मारने की इच्छा से अग्निशर्मा ने कहा कि तुम्हारे पास जो भी वस्त्र, छाता, खड़ाऊं आदि है वह सब उतार कर मुझे दे दो, क्योंकि मैं तुम्हें मारकर यमलोक पहुंचाने वाला हूँ। उसके वचन को सुनकर अत्रिमुनि ने कहा कि हमें कष्ट पहुंचाने का पाप करने का विचार तुम्हारे मन में क्यों आया है, हम तो तपस्वी हैं, तीर्थयात्रा पर निकले हैं।

अग्निशर्मोवाच

ममास्ति माताथ पिता सुतो भार्या गरीयसी।
पोषयामि सदा ताँस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम्॥

अत्रिरुवाच

पित्रादीनाशु पृच्छस्व स्वकर्मोपार्जितं प्रति।
यद्युष्मदर्थं क्रियते पापं तत्कस्य कथ्यताम्॥
यदि ते कथयन्ति स्म मा मृषा प्राणिनो वधीः॥

अग्निशर्मोवाच

न कदाचिन्मया ते तु संपृष्टा ईदृशं वचः। युष्माकं वचसा मेऽद्य प्रतिबोधः प्रवर्तते॥
गत्वा पृच्छामि तान्सर्वान् कस्य भावश्च कीदृशः।
यूयमत्रैव तिष्ठध्वं यावदागमनं मम॥
इत्युक्त्वा ताञ्जगामाशु पितरं स्वमुवाच ह। धर्मस्य प्रतिघातेन प्राणिनां पीडनेन च॥
सुमहद्दृश्यते पापं कस्य तत्कथ्यतां मम॥

अग्निशर्मा ने कहा – मेरे घर में मेरी माता, पिता, पुत्र एवं सबसे बढ़कर मेरी पत्नी है। उनके पोषण के लिए ही मैं सब कुछ करता हूँ, यही विचार मेरे मन में आता है। अत्रि ने कहा – तुम जाकर अपने पिता आदि से शीघ्र यह पूछो कि अपने इस कर्म के द्वारा तुम जो कमाते हो, जिस परिवार के लिए तुम यह पाप करते हो, वह पाप किसका होगा ? कौन उसका फल भोगेगा ? यदि पहले तुम प्राणियों का वध करने वाले विषय में पिता से पूछ

चुके हो, तो मुझे उनका उत्तर बताओ, झूठ न कहना, व्यर्थ में प्राणियों को मत मारो। अग्निशर्मा ने कहा – मैंने आजतक अपने पिता से इस विषय में कुछ नहीं पूछा है। आज आपके वचन से मुझे कुछ बोध हुआ है, मैं जाकर तुरन्त पूछता हूँ, तबतक आप यहीं रहें। ऐसा कहकर वह अग्निशर्मा शीघ्र ही अपने पिता के पास गया और कहा कि धर्म के इस हनन से, प्राणियों को पीड़ा देने से जो बहुत बड़ा पाप दिखाई पड़ रहा है, वह किसका होगा, यह मुझे कहें।

पिता प्राह तथा माता नापुण्यमावयोरिह ॥
त्वं जानासि यत्कुरुषे कृतं भाव्यं पुनस्त्वया।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भार्या वचनमब्रवीत् ॥
तयाप्युक्तं न मे पापं पापमेतत्तवैव हि। तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोऽहमिति सोऽब्रवीत् ॥
तज्ज्ञात्वा हृदयं तेषां चेष्टितं चैव तत्त्वतः। नष्टोऽहमिति मन्वानः शरणं मे तपस्विनः ॥
क्षिप्त्वाथ लगुडं कृष्णं येन वै जन्तवो हताः।
प्रकीर्य केशांस्त्वरितमृषीणामग्रतः स्थितः ॥
प्रणम्य दण्डपातेन ततो वचनमब्रवीत्।
न मे माता न च पिता न भार्या न च मे सुतः ॥
सर्वैस्तैः परिमुक्तोऽहं भवतां शरणं गतः। सुष्ठूपदेशदानान्मां नरकात्रातुमर्हथ ॥

पिता और माता ने कहा – इस अधर्म में हमारी कोई भागीदारी नहीं होगी। तुम क्या करते हो, उसका क्या फल होगा, यह सब तो तुम्हीं जानो। फिर पत्नी ने भी कहा कि आपके पाप में मेरा कोई हिस्सा नहीं है। पुत्र ने भी कह दिया कि मैं तो बच्चा हूँ, मैं कुछ नहीं जानता। परिवार वालों की इस बात को सुनकर अग्निशर्मा ने सोचा कि मेरा यह जीवन तो नष्ट ही हो गया, अब वे तपस्वी ही मेरी रक्षा कर सकते हैं। ऐसा सोचकर जिस लाठी से वह लोगों को मारता था, उसे जमीन पर फेंक कर अपने केशों को बिखेर कर दीनभाव से ऋषियों के आगे गिर पड़ा और प्रणाम करके कहा – मेरे माता, पिता, पत्नी या पुत्र कोई भी मेरा साथ देने के लिये तैयार नहीं है। उन सबकी ओर से मुक्त होकर मैं आपसबों की शरण में आया हूँ। आप उचित मार्गदर्शन करके मुझे नरक में जाने से बचाईए।

एवं तं वादिनं दृष्ट्वा ऋषयोऽत्रिमथाब्रुवन्। भवतो वचनादस्य प्रतिबोधः समागतः ॥
भवताऽयमनुग्राह्यः शिष्यो भवतु ते मुने। तथेत्युक्ताथ तान्प्राह चाग्निं ध्यानं समाचर ॥

अनेन ध्यानयोगेन महामन्त्रजपेन च। अनेकदुस्तरात्युग्रपापकृज्जनघातकः॥
संस्थितो वृक्षमूले त्वं परां सिद्धिं गमिष्यसि॥
इत्युक्त्वा ते ययुः सर्वे सकामं सोऽपि तत्र वै।
तद्ध्यानस्थोऽभवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश॥

उसे ऐसा कहते देखकर अन्य ऋषियों ने अत्रि ने कहा कि आपके ही वचनों से इसके मन में विवेक का जन्म हुआ है अतः यह आपका ही शिष्य है, आप इसपर कृपा करें। फिर ऋषियों ने अग्नि का (ब्राह्मणों के इष्ट अग्नि ही हैं) ध्यान कराया और कहा कि इस ध्यान के माध्यम से और (राम आदि) महामंत्र के जप से तुमने अत्यंत जघन्य जो जो पाप किये हैं उसके अशुभ नष्ट हो जाएँगे। इसी वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या करो, तुम्हें परम सिद्धि मिल जाएगी। ऐसा कहकर ऋषिगण वहां से चले गए और वह (अग्निशर्मा) प्रायश्चित्त की इच्छा से ध्यानयोग में लीन होकर वहीं पर तेरह वर्षों तक तपस्या करता रहा।

तस्योपर्यभवत्तत्र वल्मीकोऽविचलस्य च। निवृत्तास्तु पथा तेन मुनयस्तत्र शुश्रुवुः॥
उदीरितं ध्वनिं तेन वल्मीके विस्मयान्विताः।
ततः खनित्वा वल्मीकं काष्ठीभूतोरुशंकुभिः॥
तं दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयो नयसंयुतम्। नमश्चक्रेऽथ तान्सर्वान्स विप्रो मुनिपुङ्गवान्॥
तान्प्राह प्रणतो भूत्वा तपसा दीप्ततेजसः। प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानं लब्धं मया शुभम्॥
दीनोऽहमुद्धृतः सर्वैर्मग्नोऽहं पापकर्दमे। तस्येति ते वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः॥
वल्मीकेऽस्मिन्स्थितः पुत्र यतस्त्वमेकचित्ततः।
वाल्मीकिरिति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति॥

उसके बाद अविचल भाव से बैठे उसके चारों ओर वल्मीक (दीमक) का आवरण हो गया। उधर से पुनः ऋषिगण गुजरे, जिन्होंने उस स्थान पर मंत्रजप सुना। दीमक के अंदर से यह कैसी ध्वनि है ऐसा सोचकर ऋषियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस स्थान और बाम्बी को खोदकर अग्निशर्मा को बाहर निकाला। उसने बाहर निकल कर ऋषियों को प्रणाम किया, तपस्या से उसका शरीर सूर्य के समान तेजस्वी हो गया था। उसने कहा – आप सभी ऋषियों की कृपा से मुझे शुभ ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं पाप के कीचड़ में फंसा हुआ था, फिर आपसबों ने मुझे यहां से उबारा। उसके वाक्य को सुनकर परमधार्मिक ऋषियों ने

कहा कि पुत्र, तुमने एकाग्रचित्त से यहां तपस्या की है और वल्मीक (दीमक) से ढक गए थे, इसीलिए आज से तुम्हारा नाम वाल्मीकि प्रसिद्ध होगा।

इत्युक्त्वा मुनयो जग्मुः स्वां दिशां तपसान्विताः।
गतेषु मुनिमुख्येषु वाल्मीकिस्तपतां वरः॥
कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्य महेश्वरम्॥
तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम्।
रामायणं च यत्प्राहुः कथां सुप्रथमस्थिताम्॥
ततः प्रभृति देवेशो वाल्मीकेश्वरसंज्ञकः।
ख्यातोऽवन्त्यां ततो व्यास नृणां कवित्वदायकः॥
इति ते कथितं लिङ्गं वाल्मीकेश्वरमुत्तमम्। यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमुपपद्यते ॥
(स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड – अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य, अध्याय – २४, श्लोक – ०३-३८)

ऐसा कहकर ऋषिगण तपस्या के लिए अलग अलग दिशाओं में चले गए। फिर तपस्वियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि ने कुशस्थली में जाकर महादेव जी की आराधना की और उनकी कृपा से कवित्वशक्ति प्राप्त करके मनोरम काव्य, जिसे रामायण कहते हैं, उसकी रचना की। जिस स्थान पर उन्होंने शिवलिंग की पूजा की, उसे वाल्मीकेश्वर शिवलिंग कहा जाता है, जिसके दर्शनमात्र से कवित्वशक्ति की प्राप्ति होती है। भृगुवंशी उपाख्यान के बाद कल्पान्तर भेद से एक और कथा का वर्णन करते हैं, जिसमें वाल्मीकि जी के द्वारा राम राम के स्थान पर मरा मरा जपने की बात है।

पुरा पूर्वभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधमः। धनुर्बाणधरो नित्यं मार्गे विप्रविहिंसकः॥
हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम्।
गृहीत्वा हेलया दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृतः॥
ब्राह्मणस्य च यद्द्रव्यं सुधोपममनुत्तमम्। मधुरं क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं स्मृतम्॥
शूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमः।
स जघान त्रिवर्णांश्च ब्राह्मणान्बहुलान्खलः॥

पूर्वकल्प में मृगव्याध नामक एक अधम ब्राह्मण रहता था। वह अपने हाथों में धनुष बाण को धारण करके ब्राह्मणों को मारता रहता था। ब्राह्मणों को मारकर वह उनका यज्ञोपवीत

उतार कर अपमान करता हुआ रख लेता था और इस प्रकार उसने भीषण आतंक मचाया। ब्राह्मण का धन अमृत के समान, क्षत्रिय का मीठे भोजन के समान, वैश्य का अन्न के समान और शूद्र का रुधिर के समान है, ऐसा समझता हुआ वह अधम ब्राह्मण शूद्र को छोड़कर शेष तीनों वर्णों को, उसमें भी विशेषकर ब्राह्मणों को बहुतायत से मारने लगा।

द्विजनाशात्सुरास्सर्वे भयभीतास्समन्ततः। परमेष्ठिनमागम्य कथाँश्चक्रुश्च कारणम्॥
श्रुत्वा च दुःखितो ब्रह्मा सप्तर्षीन्प्राह लोकगान्।
उद्देशं कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम॥
इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वशिष्ठादिभिरन्वितः।
तत्र गत्वा स्थितास्सर्वे मृगव्याधस्य वै वने॥
मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्बाणधरो बली। उवाच वचनं घोरं हनिष्येहं च वोद्य वै॥
मरीचाद्या विहस्याहुः किमर्थं हन्तुमुद्यतः।
कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल॥

ब्राह्मणों के इस नरसंहार से देवताओं को बड़ा भय हुआ और वे सब मिलकर ब्रह्माजी के पास गए एवं पूरी बात बताई। दुःखी भाव से ब्रह्मा ने सब सुनकर सर्वत्र विचरण करने वाले सप्तर्षियों को कहा कि आप उस व्यक्ति के पास जाएं। यह सुनकर मरीचि ने वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों के साथ उस वन के लिए प्रस्थान किया जहां मृगव्याध रहता था। उन्हें वहां देखकर धनुष बाण धारण करने वाला मृगव्याध हंसता हुआ सा घोर वचन कहने लगा कि आज ही तुम सबों को मार डालूंगा। उसकी बात सुनकर मरीचि आदि ने भी हंसते हुए कहा कि हमें भला तुम क्यों मारना चाहते हों? हे महाबली ! तुम्हारा कुल और उद्देश्य क्या है, सो कहो।

इत्युक्तस्तान्द्विजः प्राह कुलार्थं चात्मनो हिते।
हन्मि युष्मान्धनैर्युक्तान्ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥
श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर। विप्रहत्याकृतं पापं भुङ्क्षीयात्को विचारय॥
इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्या सुनिर्मलः।
गत्वा वंशजनानाह भूरि पापं मयार्जितम्॥
तत्पापकं भवद्भिश्च ग्रहणीयं धनं यथा। ते तु श्रुत्वा द्विजं प्राहुर्न वयं पापभोगिनः॥

साक्षीयं भूमिरचला साक्षी सूर्योऽयमुत्तमः।
इति श्रुत्वा मृगव्याधो मुनीनाह कृताञ्जलिः॥

ब्राह्मणों के ऐसा पूछने पर उसने कहा कि अपने कुल और स्वयं के लिये भी मैं तुम जैसे ब्राह्मणों को धन की इच्छा से मारता हूँ। ऐसा सुनकर ब्राह्मणों में कहा कि हे धनुर्धर ! तुम शीघ्र जाकर अपने परिवार वालों से पूछो कि ब्राह्मणों को मारने से उत्पन्न पाप को कौन कौन भोगेगा। ऋषियों की पवित्र दृष्टि से उसमें कुछ पवित्रता का गयी थी, सो ऐसा सुनकर उस क्रूरकर्मा ने अपने कुटुम्ब वालों से जाकर कहा कि मैं पाप से जो धन लाता हूँ, उसे जिस प्रकार तुम सब आपस में बांट लेते हो, उसी प्रकार से पाप को बांट लो। उसके वचनों को सुनकर लोगों ने कहा कि हम तुम्हारे पाप को नहीं भोगने वाले हैं, यह पृथ्वी, सूर्य आदि इस बात के साक्षी हैं। ऐसा सुनकर मृगव्याध ने ऋषियों के पास जाकर हाथ जोड़कर कहा –

यथा पापं क्षयं याति तथा माज्ञातुमर्हथ।
इत्युक्तास्तेन ते प्राहुः शृणु त्वं मन्त्रमुत्तमम्॥
राम नाम हि तज्ज्ञेयं सर्वाघौघविनाशनम्।
यावत्त्वत्पार्श्वमायामस्तावत्त्वं जप चोत्तमम्॥
इत्युक्त्वा ते गता विप्रास्तीर्थात्तीर्थान्तरं प्रति। मरामरामरेत्येवं सहस्राब्दं जजाप ह॥
जपप्रभावादभवद्वनमुत्पलसंकुलम्। तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुवि॥

जिस प्रकार से मेरा पाप नष्ट हो, आप उसे बताएं। तब ऋषियों ने कहा कि हम तुम्हें उत्तम मन्त्र बताते हैं, उसे सुनो। 'राम' नाम को सभी पापों को नाश करने वाला जानो। जब तक हमलोग लौट कर तुम्हारे पास वापस नहीं आ जाते हैं, तब तक तुम उसका ही उत्तम जप करो। ऐसा कहकर सप्तर्षि जन तीर्थयात्रा पर चले गए और उस मृगव्याध ने 'मरा-मरा-मरा', ऐसा जप एक हज़ार वर्षों तक किया। जप के प्रभाव से उस वन में चारों ओर सुंदर नीलकमल खिल गए जिससे उस स्थल का नाम संसार में उत्पलारण्य, ऐसा प्रसिद्ध हुआ।

ततः सप्तर्षयः प्राप्ता वल्मीकात्तं निराकृतम्।
दृष्ट्वा शुद्धं तदा विप्रमूचुस्ते विस्मयान्विताः॥

वल्मीकान्निस्सृतो यस्मात्तस्माद्वाल्मीकिरुत्तमम्।
तव नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ञ महामते॥
एवमुक्त्वा ययुर्लोकं स तु रामायणं मुनिः। कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रविस्तरम्॥
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड – ४, अध्याय – १०, श्लोक – ३७-५७)

इसके बाद सप्तर्षियों ने लौटकर उसे दीमक की बाम्बी के अन्दर से निकाल कर देखा कि इसके पाप समाप्त हो गए हैं, यह शुद्ध हो गया है, उसकी तपस्या से सबों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि तुम्हें वल्मीक (दीमक) से बाहर निकाला गया है इसीलिए आज से तुम्हारा उत्तम नाम वाल्मीकि होगा। हे महामते ! तुम तीनों समय की बात जानने वाले त्रिकालदर्शी बनो। ऐसा कहकर सप्तर्षिगण अपने लोक को चले गए और वाल्मीकि मुनि ने अठारह कल्पों की कथाओं का आश्रय लेकर सौ करोड़ की परिमिता वाले रामायण की रचना की। ऐसा ही एक कथाभाग और द्रष्टव्य है जहां शमीमुख ब्राह्मण के पुत्र अत्यंत रौद्रकर्मा वैशाख का वृतान्त है। यह प्रसङ्ग बहुत बड़ा है, अतएव मैं संक्षेप में ही बता रहा हूँ। जैसा कि वर्णन है –

आसीत्पूर्वं द्विजो देवि नाम्ना ख्यातः शमीमुखः।
गार्हस्थ्ये वर्तमानस्य तस्य पुत्रो व्यजायत।
वैशाख इति नाम्नाऽसौ रौद्रकर्मा व्यजायत॥

इसमें भी कुछ कुछ वैसी ही घटना घटित हुई है। यहां सप्तर्षिगण के समूह से अङ्गिरा ऋषि ने वैशाख नामक ब्राह्मण को, जो कुसंगति से डाकू बन गया था, उसे कहा कि तुम्हारे परिवार में कौन तुम्हारे पाप को ग्रहण करेगा, यह पूछकर आओ। परिवार वालों के स्पष्ट शब्दों में मना करने पर वैशाख को अपने कर्म का खेद हुआ और उसने अङ्गिरा के बताए मार्ग पर पूरी श्रद्धा से चलते हुए भगवन्नाम का एक हज़ार वर्षों तक जप किया। गुरुकृपा एवं भक्ति से उसे भूख प्यास आदि नहीं लगती थी। उसके बाद ऋषियों ने वापस आकर उसे दीमक के अंदर से निकाला। वैशाख ने अपने परिवार वालों के बारे में पूछा। ऋषियों ने कहा –

बहुवर्षाण्यतीतानि तवात्र वसतो मुने। सर्वे ते निधनं प्राप्ता ये चान्ये ते कुटुम्बिनः॥
वयं चिरात्समायाताः स्थानेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः।

स त्वं सिद्धिमनुप्राप्तो मत्त्रादस्मादसंशयम् ॥
यस्मात्त्वं मन्त्रमेकाग्रो ध्यायन्वल्मीकमाश्रितः ।
तस्माद्वाल्मीकिनामा त्वं भविष्यसि महीतले ॥
स्वच्छन्दा भारती देवी जिह्वाग्रे ते भविष्यति ।
कृत्वा रामायणं काव्यं ततो मोक्षं गमिष्यसि ॥

(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड-प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य, अध्याय – २७८, श्लोक – ५५-५८)

हे मुने ! यहां तपस्या हेतु रहते हुए तुम्हें अनेकों वर्ष बीत गए हैं। अब तक तो तुम्हारे परिवार के सभी लोग मर गए। हमलोग स्वयं ही इस स्थान पर बहुत लम्बे समय के बाद आए हैं। तुमने भी गुरुमन्त्र के प्रभाव से तपस्या में सिद्धि प्राप्त कर ली है, इसमें संशय नहीं है। तुमने वल्मीक (दीमक) की बाम्बी में रहते हुए एकाग्रचित्त से मन्त्र का ध्यान किया है, इसीलिए तुम वाल्मीकि के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करोगे। तुम्हारी जिह्वा पर इच्छानुसार सरस्वती का वास होगा, उसके बाद तुम रामायण की रचना करके मोक्ष को प्राप्त कर जाओगे।

इस प्रकार हम अलग अलग कल्पों की घटनाओं एवं ग्रंथों के प्रमाणों के आधार पर यह देखते हैं कि वाल्मीकि वास्तव में ब्राह्मण ही थे, किन्तु कुसंगति से डाकू बन गए थे। बाद में ऋषियों की कृपा एवं अपने परिश्रम से वे शुद्ध हुए और पुनः मित्रावरुण प्रचेता के माध्यम से नया शरीर भी धारण किया। हमने यह भी देखा कि रामायण की रचना अनेकों बार तथा अनेकों वाल्मीकिसंज्ञक ऋषियों के द्वारा हुई है।

अस्तु, अब रामभद्राचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड को तो अप्रामाणिक बता दिया है। यद्यपि ये कहना बहुत सरल है कि अमुक प्रामाणिक है, अमुक नहीं क्योंकि चमड़े की जिह्वा है, क्या जाता है। कुछ अज्ञानोत्साही जन तो रामचरितमानस को भी प्रमाण नहीं मानते। एक बार १९३० ई० के लगभग किसी मूढ़ ने रायबरेली के महाराज कुमार रणबहादुर सिंह को कह दिया कि रामचरितमानस अप्रामाणिक है। फिर क्या था, राजा साहब ने खजाना खोल दिया, अपार धन और परिश्रम शोध में लगाया एवं ढाई सौ से अधिक दुर्लभ गुप्त पांडुलिपियों में छिपे प्रामाणिक रामायण, संहिता, पुराण, स्मृति, तन्त्र, आदि के आधार पर रामचरितमानस की एक एक उक्ति को सत्य और शास्त्रीय सिद्ध करते हुए *नानापुराणनिगमागमसम्मत* नाम की टीका लिख दी।

इस टीका के बालकाण्ड के दर्शन पडरौना, कुशीनगर के श्री बालेन्दु पाण्डेयजी के पुस्तकालय में हुए थे, और मैं तो मन्त्रमुग्ध रह गया। आज से पैंतीस वर्ष पूर्व इसी टीका के आधार पर सीताराम चतुर्वेदी जी ने रामचरितमानस की मारुति टीका लिखी थी जो महावीर मन्दिर, पटना से प्रकाशित हुई थी। अधिक प्रमाण-प्रमाण खेलने वाले सज्जनों को दिव्यशास्त्र, मुनिशास्त्र, पौरुषशास्त्र, आप्त प्रमाण, अनुमान प्रमाण, स्वतः प्रमाण, आश्रित प्रमाण, नागर प्रमाण, वेसर प्रमाण आदि पूछा जाए तो ढंग से परिभाषा भी नहीं बता पाएंगे किन्तु घोषित करते फिरेंगे कि भैया, हम तो केवल वाल्मीकीय रामायण को प्रामाणिक मानेंगे और वो भी लंकाकाण्ड तक ही।

क्यों भला ? ग्यारह हजार वर्ष के कार्यकाल वाले रामजी का चरित्र वाल्मीकि जी ने केवल प्रारम्भिक पचास वर्षों के लंकाकाण्ड तक ही क्यों लिखा ? मात्र आधा प्रतिशत ? बस ? क्यों ? उसके बाद वाल्मीकि जी की कलम टूट गयी थी या स्याही सूख गई थी ? अथवा आगे की कथा में प्रक्षिप्त प्रसङ्ग मिलाने के लिए उन्होंने कर्मचारी रख लिए थे ? अस्तु, यदि कुतर्की जन यही चाहते हैं कि वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड का सन्दर्भ न दिया जाए, तो ठीक है। मैं सीतात्याग, धोबी का लांछन, शम्बूक वध, सब उचित एवं प्रामाणिक सिद्ध करूँगा, वो भी बिना वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड से श्लोक दिए हुए। सभी कथाओं की पुनर्स्थापना के बाद सबसे अन्त में उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता को भी उचित सम्मान दूंगा।

वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड यह बताता है कि अगस्त्य मुनि ने रामदरबार में आकर रावण और हनुमानजी के जीवन का वृत्तांत सुनाया था। वह प्रसङ्ग जिन कथाओं से विभूषित है, वह कथाएं आनन्द रामायण के सारकाण्ड के तेरहवें सर्ग में भी वर्णित हैं। हुआ यह, कि वाल्मीकि जी ने वाल्मीकीय रामायण की रचना के लिए २४००० श्लोक एवं ५०० सर्ग का प्रारूप बनाया था, जिसका वर्णन उन्होंने बालकाण्ड में ही किया है। इतने में जहां तक कथा का वर्णन किया, उसे उन्होंने लवकुश को पढ़ा दिया। लवकुश ने वो कथा रामदरबार में आकर सुनाई, इस घटना का संकेत भी बालकाण्ड में ही प्राप्त हो जाता है। अब कथा सुनाकर तो लवकुश अयोध्या में ही रह गए। इसके बाद वाल्मीकि जी ने शेष रामचरित्र पर आनन्द रामायण का लेखन प्रारम्भ किया।

आपलोग फ़िल्म या धारावाहिकों की श्रृंखला में पिछले भाग से कड़ी जोड़ने के लिए "अब-तक" या Recap देखते हैं, उसको दो मिनट दिखाकर फिर नए भाग को दिखाते

हैं। वैसे ही आनन्द रामायण में वाल्मीकि जी ने पूर्वरचित वाल्मीकीय रामायण की लगभग सारी कथाएं "Recap" के रूप में प्रथम कांड में लिख दी हैं। उस कांड का नाम उन्होंने सारकांड रखा, यानी पिछली कृति में वर्णित कथाओं का सार। इसमें उन्होंने एक दो प्रसङ्ग और लिखे, जो वाल्मीकीय रामायण में छूट गए थे, जैसे कि राजा दशरथ के साथ कैकयी का स्वर्ग जाना, युद्ध में सहयोग करना, रथ खण्डित होने पर प्राण बचाना और समयानुसार दो वरदान का वचन प्राप्त करना, आदि। वाल्मीकि जी ने कुछ कथा और संलग्न की, जैसे लक्ष्मण जी के हाथों पंचवटी में शूर्पणखा के पुत्र साम्ब का वध आदि। इसी आनन्द रामायण के जन्मकाण्ड के प्रथम से नवम सर्ग तक वाल्मीकि जी ने विस्तृत रूप से सीतात्याग से रहस्यों को खोल कर रख दिया है। जन्मकाण्ड के दूसरे एवं तीसरे सर्ग में राम जी सीताजी से कहते हैं कि,

हे सीते ! पत्नी के गर्भ ठहरने के पांचवें मास के बाद व्यक्ति को स्त्रीरमण नहीं करना चाहिए। दूसरे, गर्भकाल में तुम्हारी इच्छा भी वन में जाकर विहार करने की थी, इसीलिए मैं तुम्हारे गर्भ के आठवें मास में धोबी के लगाए लांछन का बहाना लगाकर तुम्हें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेज दूंगा, जहां तुम्हारे पिताजी राजा जनक ने पहले ही सभी दिव्य सुख सुविधा की व्यवस्था कर दी है। फिर पांच वर्ष वहां रहकर तुम मेरे पास आ जाना, इसके बाद लोगों के सामने शुद्धिशपथ करके पृथ्वी पर समाहित हो जाना और समयानुसार पुनः मुझे आकर प्राप्त होना।"

वस्तुतः सीतात्याग का पूरा प्रकल्प रामजी, सीता मैया और राजा जनक, तीनों की गुप्त योजना के अंतर्गत था। कभी आपने विचार किया कि जिस गर्भवती सीता के त्याग के कारण आज तक समाज वाले महिला आयोग और मानवाधिकार का ढोल पीट रहे हैं उसपर स्वयं सीता जी के पिता राजा जनक, या सीताजी ने भी कुछ बोला ही नहीं ! आखिर क्यों ऐसा ? एक साधारण सा पिता भी ऐसे में दामाद को कम से कम टोकता तो अवश्य, पर राजा जनक तो मौन साधे रहे। कारण मैं बताऊं ?

जनकाद्य त्वया तत्र निजपत्न्या सुमेधया। वाल्मीकेराश्रमं गत्वा स्थेयं वर्षाणि पञ्च वै॥
तथेत्यङ्गीचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया। सीताप्यङ्गीचकाराथ विहस्य तद्वचः पतेः॥
(आनन्द रामायण, जन्मकाण्ड, सर्ग – ०२, श्लोक - ४३+४४)

राम जी ने कहा - हे महाराज जनक ! आपको अपनी पत्नी सुमेधा के साथ वाल्मीकि के आश्रम में ही ये पांच वर्ष रहने चाहिए। रामजी की इस बात को राजा जनक और रानी

सुमेधा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया, साथ ही सीता जी ने भी हंसते हुए अपने पति की इस बात का समर्थन किया।

कभी सोचा आपने कि सीता जी का त्याग तो राम जी ने किया था, राजा जनक ने नहीं ! फिर भला अपनी गर्भवती पुत्री के पास वे क्यों नहीं गए ? क्या उसकी चिंता उन्हें नहीं थी ? इसका उत्तर यह है कि वाल्मीकि जी के आश्रम में सारी अनुकूल व्यवस्था राजा जनक ने श्रीराम जी की आज्ञा से सीतात्याग से पूर्व ही करा दी थी और साथ ही मंत्रियों को राज्यभार सौंप कर अपनी पत्नी के साथ सीता और लवकुश का पालन करते हुए पांच वर्ष वहां बिताए भी थे। अब क्या कोई समस्या दिख रही है आपको ?

इतना ही नहीं, जिस वेदव्यासकृत एवं शिवप्रोक्त अध्यात्म रामायण की कथाओं पर रामभद्राचार्य जी भी फूले नहीं समाते, उसमें भी उत्तरकाण्ड है और उसमें सीता वनवास भी स्पष्ट है, उसमें भी यह सीतारामजी की गुप्त योजना के रूप में ही वर्णित है।

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते।
कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम्॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके॥
(अध्यात्म रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग – ०४, श्लोक - ४१+४२)

रामजी कहते हैं, हे देवि ! मैं सब उपाय जानता हूँ, वो तुम्हें बता रहा हूँ। तुमसे सम्बन्धित लोकनिंदा को कल्पित करके मैं साधारण मनुष्यों के समान लोकापवाद से भयभीत होने का नाटक करके तुम्हें वाल्मीकि जी के आश्रम में छोड़ दूंगा, वहीं तुम दोनों पुत्रों को जन्म दोगी। (इसी प्रमाण के साथ रामभद्राचार्य जी का वक्तव्य खण्डित होता है कि लवकुश का जन्म वन में नहीं, अपितु अयोध्या में घर पर हुआ था) इतना ही नहीं, शेष कुछ और प्रमाण देख लें -

लोकापवादात्संत्रस्तः सीतां तत्याज धर्मवित्।
सा तु संप्राप्य वाल्मीकेराश्रमं न्यवसत्सुखम्॥
(नारद पुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय – ७५, श्लोक - ५२)

उन धर्मवेत्ता ने लोकापवाद के भय से सीता जी को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ दिया तथा सीता जी भी वहां सुखपूर्वक रहने लगीं।

अब ध्यान दीजिए, राम जी ने सीता को त्याग भी दिया, और रामजी लिए धर्मवेत्ता विशेषण भी आया। भला जो व्यक्ति अपनी गर्भवती निर्दोष पत्नी को जंगल में छोड़ दे, वो व्यक्ति धर्मवेत्ता कैसे हो गया ? साथ ही उसकी पत्नी सुखपूर्वक कैसे रहने लगी ? इसका अर्थ है कि कुछ तो आन्तरिक लीला हुई, जिसे साधारण बुद्धि वाले लोग नहीं देख पायेएवं वह अंदरूनी लीला क्या थी, ये मैं बता चुका हूँ। सीतात्याग का प्रसङ्ग मिलावटी नहीं है, इसके एक दो प्रमाण और देखें :-

सीतां तत्त्याज राजेन्द्रो वने लोकापवादतः।
(गर्ग संहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय – ०४, श्लोक- ६०)
राजाधिराज श्रीरामजी ने लोकापवाद के भय से वन में त्याग दिया।

कृत्वा सीतापरित्यागं रामो राजीवलोचनः। लोकापवादसंत्रस्तस्ततो राज्यं चकार सः॥
कृत्वा स्वर्णमयीं सीतां पत्नीं यज्ञप्रसिद्धये।
न स चक्रे महाभागो भार्यामन्यां कथञ्चन॥
(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय – ९९, श्लोक - १०+११)

कमलनयन रामजी ने लोकापवाद के भय से सीतात्याग करके आगे फिर राज्य करना प्रारम्भ किया। यज्ञ की पूर्ति के लिये उन्होंने सीता जी की सोने की मूर्ति बनाई किन्तु सीता जी को छोड़कर उन्होंने दूसरा विवाह न किया।

ध्यान दें, यदि सीता जी घर पर ही थीं, सीतात्याग हुआ ही नहीं, तो फिर भला सोने की मूर्ति की आवश्यकता क्यों पड़ी ? यदि कोई तर्क करे कि गर्भवती होने से असमर्थ थीं सहयोग में, इसीलिए घर पर होने के बाद भी मूर्ति बनानी पड़ी, तो उत्तर यह है कि वाल्मीकि जी मे आनन्द रामायण में ऐसे सैकड़ों यज्ञ और सैकड़ों स्वर्णमयी सीताओं का वर्णन किया है, सब में सीताजी असमर्थ थीं क्या ?

लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम्।
अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः॥
न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ।
मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कंध ०४, अध्याय – २५, श्लोक - १८+१९)

लोकापवाद के कारण निर्दोष सीता को भी दोषयुक्ता "मानते हुए" राम जी ने उनका परित्याग कर दिया। भेंट होने पर अपने पुत्र, लव और कुश को भी वे (लोकलीला के कारण) पहचान न सके, मुनि (वाल्मीकि) जी के बताने पर उन्होंने जाना। सीतात्याग का प्रसङ्ग मिलावटी बताने वाले, लवकुश का जन्म घर में कराने वाले 'जगद्गुरु' इस श्लोक पर ध्यान क्यों नहीं देते ?

इयाज वाजिमेधं च राघवः परवीरहा। काञ्चनीं जानकीं कृत्वा तया सार्द्धं महाबलः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय – २४४, श्लोक - १४)

शत्रुओं का नाश करने वाले श्रीराम जी ने सोने की सीता बना कर उनके साथ ही अश्वमेध यज्ञ किया।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड को छोड़ भी दें, तो भी बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही वाल्मीकि जी ने वाल्मीकीय रामायण में वर्णित कथाओं की सूची दी है। नहीं-नहीं, मैं प्रथम अध्याय की बात नहीं कर रहा। वह सूची तो नारद मुनि ने वाल्मीकि जी को बतायी है, उसमें उन्होंने तो जन्म, विवाह आदि भी नहीं बताया, फिर भी वाल्मीकि जी ने लिखा है न। मैं उस सूची की बात कर रहा हूँ जो दो अध्याय बाद वाल्मीकि जी ने ग्रंथ में वर्णित कथाओं के संदर्भ में दिया है -

रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम्। स्वराष्ट्ररञ्जनञ्चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग – ०३, श्लोक - ३८)

... फिर राम जी का राज्याभिषेक वर्णित है, सभी सेनाओं को यथास्थान जाने की आज्ञा दी है, राम जी ने अपने राष्ट्र को प्रसन्न रखने योग्य शासन प्रारम्भ किया है एवं उसके बाद वैदेही (सीता) के परित्याग का वर्णन है। वाल्मीकि जी ने बालकाण्ड में ही उत्तरकाण्ड आदि की कथावस्तु भी संकेत कर दी है।

अब आते हैं धोबी महाराज पर। ये व्यक्तित्व बहुत उलझा हुआ है। सीता का अपमान करने वाले महापराक्रमी रावण का राम जी ने संहार कर दिया किन्तु उन्हीं सीता जी के चरित्र पर झूठा एवं गंभीर लांछन लगाने वाले साधारण धोबी को राम जी ने एक दिन का कारावास तक नहीं दिया ? क्यों भाई ? कभी ध्यान दिया इसपर ? जब मैं चार मास पूर्व छत्तीसगढ़ प्रवास पर था तो रजक समाज के कुछ अम्बेडकरवादी लोग मेरे पास आये और एक पत्रिका दी, जिसमें लिखा था कि ब्राह्मणों ने धोबी को सीतात्याग का कारण मानकर

बहुत बदनाम किया है, इसीलिए हमलोगों को ब्राह्मणों का बहिष्कार करना चाहिए। अस्तु, हमने उन्हें यथासम्भव समझाया, किन्तु वे कहां तक समझे, ये तो रामजी ही जानें।

अस्तु, रजक का वर्णन वाल्मीकीय रामायण स्पष्ट रूप से करे या न करे, आनन्द रामायण में तो वाल्मीकि जी ने किया ही है। साथ ही पद्मपुराण, गर्गसंहिता आदि भी वर्णन मिलता है। इस संदर्भ में एक गुप्त कथा को संक्षेप में बताता हूँ, आप ध्यान दें। ऐसा नहीं है कि केवल हमें और आपको ही सन्देह होता है। महर्षि वात्स्यायन को भी जब इस संदर्भ में शंका हुई तो उन्होंने इसके समाधान के लिए भगवान् शेष से निवेदन किया, तब शेषनाग ने निम्न प्रसङ्ग बताया :-

पूर्वकाल में जब सीताजी छोटी बच्ची थीं, तो मधुर वाणी में बोलने वाले दो पक्षियों का जोड़ा उनके बगीचे में आया। सीताजी उनके पास जाकर खेलने लगीं। बातों बातों में पक्षियों ने अयोध्या के राजकुमार श्रीरामलला की सुंदरता और गुणों का वर्णन किया। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी बताया कि कैसे धनुषयज्ञ में रामजी का सीताजी से विवाह होगा, आदि आदि भविष्य की बहुत सी घटनाएं उन्होंने सीताजी को बताईं। भविष्य की बातें सुनकर सीताजी आश्चर्यचकित हो गईं और पूछा कि ये सब तुमलोग कैसे जानते हो ? पक्षियों ने उत्तर दिया -

वाल्मीकिरास्ते सुमहानृषिर्धर्मविदुत्तमः। आवां तदाश्रमस्थाने सर्वदा सुमनोहरे॥
सशिष्यान्गापयामास भावि रामायणं मुनिः। प्रत्यहं तत्पदस्मारी सर्वभूतहिते रतः॥
तदावाभ्यां श्रुतं सर्वं भावि रामायणं महत्। मुहुर्मुहुर्गीयमानमायातं परिपाठतः॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - ५७, श्लोक - १९-२१)

हे सीते ! धर्म के विद्वानों में श्रेष्ठ एक वाल्मीकि नाम के ऋषि हैं, हमलोग उन्हीं के आश्रम में रहते हैं। सभी प्राणियों के हित का कार्य करने वाले वे मुनि भविष्य में होने वाली घटनाओं के आधार पर रामायण की रचना कर रहे हैं, वे प्रतिदिन अपने शिष्यों के साथ रामायण के श्लोकों को याद करते हैं और गाते हैं। जब वे बारम्बार पढ़ते और गाते हैं तो हमने उनसे पूरी रामायण सुनी हैं, इसीलिए भविष्य में होने वाली घटनाओं को हम भी जानते हैं।

रामजी की लीला और गुणों का बखान सुनकर, उनके साथ मेरा विवाह होगा, यह जानकर सीता जी मुग्ध हो गयीं। वे बार बार सुनकर भी तृप्त नहीं होती थीं और उन्होंने बालसुलभ

चपलता दिखाते हुए मादा पक्षी को पकड़ लिया। बहुत निवेदन करने पर भी उन्होंने जब उसे मुक्त नहीं किया तो उस मादा पक्षी ने निम्न श्राप देते हुए प्राण त्याग दिए -

यथा त्वं पतिना सार्धं वियोजयसि मामितः।
तथा त्वमपि रामेण वियुक्ता भव गर्भिणी॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - ५७, श्लोक ५८)

सीते ! जैसे तुमने मेरे पति से दूर करके मुझे विरह की पीड़ा दी है, वैसे ही तुम भी गर्भावस्था में अपने पति राम से अलग हो जाओगी।

तस्यां मृतायां दुःखार्तो भर्ता तस्याः स पक्षिराट्।
परमं क्रोधमापन्नो जाह्नव्यां दुःखितोऽपतत्॥
तथा भवामि रामस्य नगरे जनपूरिते। मद्वाक्यादियमुद्विग्ना वियोगेन सुदुःखिता॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय – ५७, श्लोक - ६१+६२)

अपनी पत्नी के मरने से उसका पति पक्षीराज अत्यंत दुःख एवं क्रोध से भर गया एवं उसने गंगाजी में डूब कर अपने प्राण त्याग दिए। मरते मरते उसने भी सीताजी को श्राप दिया - लोगों से भरे हुए रामजी के उस नगर में मैं ही अगला जन्म लूंगा और मेरे वाक्यों के कारण ही यह सीता अत्यंत दुःखदायी पतिवियोग को भोगेगी।

तज्जातं रजकोक्त्यासौ निंदिता च वियोगिता।
रजकस्य च शापेन वियुक्ता सा वनं गता॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय – ५७, श्लोक – ६६)

(शेषनाग कहते हैं, हे वात्स्यायन !) वही पक्षी अगले जन्म में धोबी के रूप में आया और उसके द्वारा की गई निंदा और श्राप के कारण ही सीता जी रामवियोग से ग्रस्त होकर वन को चली गईं। अब इस प्रकार हमने पिछले जन्म का तो हिसाब देख लिया। आगे क्या हुआ, इसके लिए आपको गर्ग संहिता की शरण ग्रहण करनी पड़ेगी। एक ही स्थान पर सब नहीं मिलेगा, शास्त्र महासागर में बारम्बार अलग अलग गोते लगाईए।

त्रेतायुगे त्वयोध्यायां रामराज्ये विदेहराट्।
चाराणां शृण्वतां कश्चिद्रजको ह्यवदत्प्रियाम्॥

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामुशतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥
इति लोकाद्बहुमुखाद्वाक्यं श्रुत्वाऽथ राघवः।
सीतां तत्याज सहसा वने लोकापवादतः॥
तस्मै दण्डं दातुमिच्छां न चक्रे राघवोत्तमः। मथुरायां द्वापरान्ते रजकः स बभूव ह॥
कुवाक्यदोषशांत्यर्थं तं जघान हरिः स्वयम्।
तदपि प्रददौ मोक्षं तस्मै श्रीकरुणानिधिः॥
(गर्ग संहिता, मथुराखण्ड, अध्याय – १०, श्लोक - ०४-०८)

श्लोकों का भाव यह है कि त्रेतायुग की बात है, एक बार राजा जनक राम जी के द्वारा शासित अयोध्या निवास रहे थे। उस समय उन्हें गुप्तचरों ने आकर एक धोबी की बात बताई। धोबी ने अपनी पत्नी को कहा - अरी व्यभिचारिणी दुष्टा ! मैं स्त्री का लोभी राम नहीं हूँ जो दूसरे के घर में रहने के बाद भी तुम्हें स्वीकार कर लूंगा। ऐसा लोगों के मुख से सुनकर राम जी ने लोकापवाद के भय से सीताजी को वन में त्याग दिया। किन्तु आरोप लगाने वाले उस रजक को कुछ भी दण्ड देने की इच्छा नहीं की। (क्यों भला ? एक तो रामजी को अपनी योजना के अनुसार सीताजी को वाल्मीकि मुनि के आश्रम में भेजना ही था, दूसरे पक्षियों का श्राप भी सफल करना था, दोनों काम गुप्त थे, और आवश्यक थे, सो एक साथ हो गये)

किन्तु फिर भी सीताजी जैसे दिव्य चरित्र वाली साध्वी पर झूठा आरोप लगाने के कारण उस रजक का, अयोध्या में, रामजी के राज्य में रहते हुए भी उद्धार न हो सका। अतएव द्वापर के अंत में मथुरा पुरी में वह कंस के धोबी के रूप में पुनर्जन्म लेकर रहने लगा। सीताजी के अपमान से जन्य पाप का निवारण करने के लिए श्रीकृष्ण भगवान् ने उसका वध किया और अत्यंत कृपा करके उसे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करके अपना दिव्य धाम प्रदान किया। गर्ग संहिता के अनुसार भी राजा जनक उस समय अयोध्या में ही थे और इन सब प्रसङ्गों से अवगत थे, तभी तो श्रीराम जी ने अपनी लीला में उन्हें सम्मिलित किया और सारी व्यवस्था का प्रबंध करके सीता जी के साथ, राजा जनक और उनकी पत्नी को पांच वर्ष के लिए वाल्मीकि जी के आश्रम में रहने का निर्देश दिया। इसका प्रमाण पूर्व में ही आनन्द रामायण से दे चुका हूँ।

अब बताईये, धोबी के प्रसङ्ग से क्या आपत्ति हो रही है आपको ? मैंने बिना वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड का आश्रय लिए इसे अन्य ग्रंथों से प्रमाणित किया एवं साथ ही आगे-पीछे के जन्म और कारण के साथ इसका समन्वय भी किया। अब भी कोई आपत्ति शेष हो तो यह समझना चाहिए कि रामकथा के लायक आपके पास पुण्यबल है नहीं, कुछ दिन ज्ञान का अहंकार किनारे रखकर सत्संगति कीजिये।

यह शम्बूक के बिंदु पर चर्चा करते हैं। शम्बूक के प्रसङ्ग का प्रारंभ होता है एक ब्राह्मण के बच्चों के मरने से। ब्राह्मण अपने नवजात शिशुओं की मृत्यु से खिन्न होकर मृत बालक राम जी के दरबार में लाकर रख देता है और रामजी को उसका दोषी ठहराता है। रामजी को आकाशवाणी से यह कारण ज्ञात होता है कि शम्बूक नामक एक शूद्र वन में उल्टा टँग कर, धूम्र पीकर कठोर तपस्या कर रहा है और ऐसी तपस्या शूद्र के लिए पाप है। उसी पाप का निवारण आप नहीं कर रहे जिसके कारण आप उसके पाप में भागीदार हो गए हैं, राजा के पापयुक्त होने से ही प्रजा में यह कष्ट हो गया। ऋषियों ने बताया,

अब्राह्मणो न वै कश्चित्तपस्तपति राघव। अमृत्यवस्तदा सर्वे जायन्ते चिरजीविनः॥

××××××

भविता शूद्रयोन्यां तु तपश्चर्या कलौ युगे। स ते विषयपर्यंते राजन्नुग्रतरं तपः॥

हे रामजी ! जब ब्राह्मण को छोड़कर कोई दूसरा व्यक्ति कठोर तपस्या नहीं करता है, तब सभी प्राणी अकालमृत्यु से मुक्त होकर दीर्घायु होते हैं। (एक ब्राह्मण के परिश्रम से सबको लाभ हुआ। ऐसे ही सभी वर्ण वाले अपनी निश्चित मर्यादा के कर्म को करें तो सबको लाभ होता है, अन्यथा सबकी हानि होती है) शूद्र को तपस्या करनी ही है तो कलियुग में करे, क्योंकि कलियुग में तपस्या शूद्र में ही प्रतिष्ठित हो जाती है, किन्तु इस त्रेतायुग में शूद्र के लिए ऐसी तपस्या का नियम नहीं है।

अब आप पूछेंगे कि तपस्या करने से भी क्या पाप होता है ? हां, होता है। शूद्र के लिए कठोर तप का निषेध है। ये सब कष्ट भोगने के लिए ब्राह्मण हैं। शूद्र का कार्य अपने जाति के अन्तर्गत समाज की सेवा करना, शिल्पकार, शस्त्रकार, रत्न का कार्य, निर्माण, लकड़ी, लोहा, खनिज, वस्त्र आदि का कार्य करना है। क्यों ? विवादास्पद लग रहा है ? ठीक है, भाषा बदल देते हैं। आज की भाषा में फैशन डिजाइनिंग, पेट्रोलियम, जियोलॉजी, जेमोलॉजी, इंजीनियरिंग, सिविल इंजीनियरिंग, डिफेंस इक्विपमेंट, ऑटोमोबाइल सेक्टर,

सर्विस सेक्टर, कॉस्मेटिक्स, हॉर्टिकल्चर, आर्ट एंड क्राफ्ट, कंस्ट्रक्शन आदि है। अब भाषा ठीक है ? ब्राह्मण तो दूध, नमक, तेल का व्यापार कर ले, या शस्त्रजीवी हो जाये तो नरक जाना पड़े। श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन को कहते हैं,

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - १८, श्लोक - ४५-४६)

अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में अभिरत मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त कर लेता है। स्वकर्म में रत मनुष्य किस प्रकार सिद्धि प्राप्त करता है, उसे तुम सुनो। जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। ध्यान दें, अपने कर्म के द्वारा। उस कर्म के द्वारा नहीं, जिसे वह चुनता है। अपितु उस कर्म के द्वारा, जिसके लिए उसे निश्चित वर्ण, जाति, गोत्र, कुल एवं क्षमता के साथ युक्त करके भेजा गया है। तो शूद्र सामान्य तपस्या तो कर सकता है, किन्तु कठोर तपस्या नहीं। सामान्य तपस्या क्या है ?

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - १७, श्लोक – १४-१६)

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषका सत्कार करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्यका पालन करना और हिंसा न करना -- यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। उद्वेग न करनेवाला, सत्य, प्रिय, हितकारक भाषण तथा स्वाध्याय और अभ्यास करना -- यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है। मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन पर नियंत्रण और भावों की शुद्धि -- इस तरह यह मन-सम्बन्धी तप कहा जाता है। (ये सभी सामान्य तप हैं, जिसे अपनी वर्णमर्यादा के अनुसार सभी को करना चाहिए।)

किन्तु उल्टे टँग कर, धुवाँ पीकर कठोर तपस्या करने का नियम शूद्र के लिए नहीं है। शम्बूक के पास जाकर राम जी ने उसे तपस्या के तेज से प्रकाशित देखा। उसका मुख नीचे था और वह अग्निकुंड का धूम्रपान कर रहा था। उसके शरीर में जगह जगह पर पंचाग्नि के दाह से जलने के निशान थे। रामजी ने उसका परिचय और तपस्या का उद्देश्य पूछा।

उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वममरप्रभ। कस्यां योनौ तपोवृद्धिर्वर्तते दृढनिश्चय॥
अहं दाशरथी रामः पृच्छामि त्वां कुतूहलात्।
कोऽर्थो व्यवसितस्तुभ्यं स्वर्गलोकोऽथ वेतरः॥
किमर्थं तप्यसे वा त्वं श्रोतुमिच्छामि तापस।
ब्राह्मणो वासि भद्रं ते क्षत्रियो वाथ दुर्जयः॥
वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यमुच्यताम्।
तपः सत्यात्मकं नित्यं स्वर्गलोकपरिग्रहे॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - ३५, श्लोक - ७०-७३)

उसके पास जाकर रामजी ने इस प्रकार कहा - हे देवताओं के समान तेज वाले ! तुम धन्य हो। इस प्रकार से कठिन तपस्या करने वाले तुम कौन हो ? तुम्हारा निश्चय तो दृढ़ लग रहा है। तुम किस योनि में जन्म लेकर अपनी तपस्या को बढ़ा रहे हो ? मैं दशरथपुत्र राम हूँ, और कुतूहलवश तुमसे पूछता हूँ, कहीं तुम्हें स्वर्ग की कामना तो नहीं है, अथवा कुछ और बात है ? तुम्हारा कल्याण हो ! तुम ब्राह्मण हो, या क्षत्रिय हो, तीसरे वर्ण के वैश्य हो या शूद्र हो ? तुम्हारी इस उग्र तपस्या का उद्देश्य क्या है ? देखो, सत्य में ही तपस्या निहित रहती है, सत्य के पालन से ही स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है, अतः तुम सत्य कहो। रामजी की बात सुनकर शम्बूक ने कहा -

स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ चिरादृष्टोऽसि राघव। पुत्रभूतोऽस्मि ते चाहं पितृभूतोऽसि मेऽनघ॥
अथवा नैतदेवं हि सर्वेषां नृपतिः पिता। सत्वमर्च्योऽसि भो राजन्वयं ते विषये तपः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय - ३५, श्लोक – ७९-८०)

शम्बूक ने कहा - हे राजाओं में श्रेष्ठ राघव ! आपका स्वागत है, आपसे बहुत दिनों के बाद आपसे भेंट हुई। हे निष्पाप राम ! मैं तो आपके पुत्र के समान हूँ और आप मेरे पितातुल्य हैं। अथवा इसमें कौन सी नई बात है ! राजा तो प्रजा के लिए सदैव पितातुल्य ही है।

आप सत्वगुण के द्वारा पूजित हैं, मैं तपस्या का विषय बताता हूँ। (जो लोग कर्मणा वर्णव्यवस्था मानते हैं, जन्मना नहीं, वे आगे के उत्तर पर विशेष ध्यान देंगे। तपस्या करने का कार्य विशेषतः ब्राह्मणों का है। यदि केवल कर्म से वर्ण होता तो रामजी को पूछना पड़ता ही नहीं, न ही कोई दोष की बात होती। तपस्या करने से शम्बूक ब्राह्मण नहीं बन गया, अपितु रामजी के आदरपूर्वक पूछने पर शम्बूक ने भी कितना स्पष्ट और विनीतभाव से निम्न उत्तर दिया) -

शूद्रयोनिप्रसूतोऽहं तप उग्रं समास्थितः। देवत्वं प्रार्थये राम स्वशरीरेण सुव्रत॥
न मिथ्याहं वदे भूप देवलोकजिगीषया।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय – ३५, श्लोक - ८३-८४)

हे श्रेष्ठ व्रत का पालन करने वाले राम ! मैं शूद्रयोनि में उत्पन्न हुआ शम्बूक हूँ। मैं यहाँ उग्र तपस्या में लीन हूँ, मेरी इच्छा है कि मैं इसी शरीर से देवता बन जाऊं। हे राजन् ! मैं देवताओं के लोक की प्राप्ति की अभिलाषा रखता हूँ, मैं झूठ नहीं बोलता। है ककुस्थवंशी राम ! आप मुझे शम्बूक नामक शूद्र जानें।

अहा ! कितना सुंदर सम्वाद है !! क्या आपको इसमें कहीं शोषण, वञ्चना अथवा अत्याचार दिख रहा है ? यहां लोग मरने के बाद स्वर्ग नहीं जा पाते, ये शम्बूक भाई साहब इसी शरीर से देवता बनने चले थे। ये इनके वर्णधर्म के विरुद्ध था इसीलिए इन्हें अतिक्रमण का पाप लगता। पितातुल्य रामजी ये कैसे देख सकते थे ?

शूद्रस्त्रिरात्रं कुरुते विषये यस्य भूपतेः। तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः॥
तपः कुर्वीत शूद्रस्तु चैकद्विदिवसान्तरम्। यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठास्तेन कामानुपाश्नुते॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड – ०३, अध्याय – ३२०, श्लोक - ११-१२)

जिसके राज्य में शूद्र तीन दिन से अधिक कठोर तपस्या कर लेता है उस राजा के राज्य में अकाल, आतंकवाद और महामारियों का प्रकोप हो जाता है। इसीलिए हे ब्राह्मणों ! शूद्र को बस एक या दो दिन का, या इससे भी कम, यथाशक्ति का व्रत करना चाहिए, इसी से उसकी सारी मनोकामना पूरी हो जाती है।

तपसा शोभते विप्रो राजन्यः पालनादिभिः।
आतिथ्येन तथा वैश्यः शूद्रो दास्येन शोभते॥
(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय - १४७)

ब्राह्मण की शोभा तपस्या से है। प्रजा का अच्छे प्रकार से पालन करने से राजाओं (क्षत्रिय) की शोभा होती है। आतिथ्य (सामाजिक प्रकल्पों) से वैश्य की शोभा है और दास्यकर्म से शूद्र की शोभा है।

यहां ध्यान दें, दास्यकर्म का अर्थ अफ्रीका और अमेरिका वाली दासप्रथा नहीं है। यहां दास का स्वभाव पुत्र जैसा और स्वामी का स्वभाव पिता जैसा रखने की मर्यादा है। महाभारत में द्रौपदी जी सत्यभामा को बताती हैं कि मै महल के सारे सेवकों को भोजन करा लेने के बाद स्वयं भोजन करती थी। आनन्द रामायण में सीता जी ने उद्घोषणा की है, समाज की कोई भी सौभाग्यवती स्त्री बिना श्रृंगार और गहनों के नहीं रहेगी। यदि दरिद्रता है तो राजकोष से इच्छानुसार धन ले जाये। हमारे यहां दास के परिवार, सम्मान और स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना स्वामी के अनिवार्य कर्तव्य में था। यदि मैं कहूँ कि तुम दासकर्म करते हो तो बुरा लगेगा ? चलिये भाषा बदल देते हैं। आप नौकरीपेशा हैं, या सर्विसमैन हैं। अब ठीक है न ? अब तो बुरा नहीं लगेगा। तो राम जी ने शम्बूक का मस्तक अपनी तलवार से काट दिया। इसके बाद क्या ? राम जी के ऐसा करते ही ब्राह्मण के मृत बालक जीवित हो गए, राम जी के ऊपर पुष्पों की वर्षा होने लगी और शम्बूक के विषय में देवताओं ने यह कहा -

त्वत्कृतेन हि शूद्रोऽयं सशरीरोऽभ्यगाद्दिवम्।
देवानां भाषितं श्रुत्वा राघवः सुसमाहितः॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय – ३५, श्लोक - ९०)

हे रामजी ! आपके इस कृत्य से यह शूद्र सशरीर ही दिव्यलोक को जा रहा है। देवताओं के ऐसे वचन सुनकर रामजी अत्यंत प्रसन्न हो गए।

यही तो रामजी की लीला की दिव्यता है। शम्बूक को दो लाभ हुए, एक तो बिना आगे परिश्रम किये स्वर्ग मिल गया, जो उसकी इच्छा थी, वो भी उसी शरीर में पुनर्जीवित होकर। दूसरा, शूद्र होकर जो उग्र तपस्या करने का पाप लगता, उसका जो दण्ड बनता,

सो अधिकृत राजा के द्वारा दण्डित होकर प्रारब्धशुद्धि भी हो गयी। पितातुल्य राम पुत्रभाव रखने वाले शम्बूक के प्रति इससे श्रेष्ठ उपकार भला और क्या कर सकते थे ? इधर ब्राह्मण के मृत बालक भी जीवित हो गए। किसी को कोई शिकायत नहीँ, कष्ट नहीं, असन्तोष नहीं।

अब इस प्रसङ्ग की सम्पूर्णता को जाने बिना, एक ग्रंथ या एक पन्ना लेकर बैठ जाने से भला कहाँ से सत्य सामने आएगा ? उसके लिए तो पागलों की तरह शास्त्र में गोते लगाने पड़ेंगे। ये सब ज्ञान गूगल में थोड़े ही मिलेगा। रामजी की कृपा से ही के सब रहस्य समझ में आते हैं, दुर्भाग्य से वो कृपा होती बहुत कम लोगों के पास ... यहाँ शूद्र एवं दासकर्म के संदर्भ में प्रसङ्गानुगत भाव से एक लघु विवेचन समझें -

राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने में कुशल धूर्तों के लिए देश एवं समाज में विद्वेष के बीज बोने का कृत्य कोई नया विषय नहीं है। शूद्रवर्ण को यह कहकर शेष जनों के प्रति घृणा से भरा जा रहा है कि उन्हें शास्त्र ने 'दास' कहा है। दास प्रथा के समय उनके ऊपर अत्याचार होता था। वैसे ध्यान से देखें तो गत एक हज़ार वर्षों में, जहां देश के निवासियों का अधिकांश समय अपने धर्म, धन, सम्मान और प्राण की रक्षा के लिए युद्ध करते हुए बीता है, विधर्मियों के अत्याचारों का सामना सभी वर्ग के लोगों ने किया है। किन्तु रक्षकों को ही बड़ी धूर्तता से विधर्मियों ने इतिहास लेखन के नाम पर शोषक घोषित कर दिया, जिसका सीधा लाभ धर्मपरिवर्तन कराने वाली मिशनरियों को हुआ।

विदेशों में यहूदी, इस्लाम एवं ईसाईयत के मौलिक नियम और 'कायदे', एवं उससे भी पहले हेलेनिज़्म (यूनान), फेरॉन (मिस्र) और रोमन पैगन के समय भी गुलामी, स्लेवरी का बहुत प्रचलन था। कहीं किसी विशेष सामाजिक वर्ग, तो कहीं कहीं मात्र चमड़ी के रंग के आधार पर ही लोगों को गुलाम बना दिया जाता था, यह गुलामी कई पीढ़ियों तक चलती थी। जब धूर्तों ने भारत के इतिहास का विकृत लेखन प्रारम्भ किया तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि भारत में ऐसा कोई प्रकरण क्यों नहीं मिलता ? क्यों यहां पर कोई वर्ग दूसरे के धन आदि का अपहरण नहीं करता ? जैसे विदेशों में सर्वोच्च स्तर पर बैठे लोग सदैव अपने को सुख से आवृत्त रखने का प्रयास करते हैं, यहां पर ब्राह्मण के लिए सबसे अधिक कठोर नियम, दण्ड विधान, त्याग और संतोष की बात क्यों है ? इसीलिए उन्होंने गुलामी एवं स्लेवरी का अनुवाद "दासप्रथा" के रूप में कर दिया। अब हमारे यहां हालांकि, शूद्रवर्ण का शास्त्रीय पदनाम "दास" ही है, किन्तु उसका सन्दर्भ "गुलाम" या "स्लेव" से कदापि

नहीं है। हमारे यहां आधुनिक काल में सूरदास, तुलसीदास, रैदास, हरिदास, मतिदास, पुरंदरदास आदि अनेकों सर्वमान्य सन्त हुए हैं, जिनमें ब्राह्मण से शूद्र तक सभी सम्मिलित हैं। यहाँ तक कि श्रीराम जी के काल में भी आचार्य कृष्णदास, आचार्य रामदास आदि का वर्णन आनन्द रामायण में आता है।

भारत में दास प्रथा जैसी कोई चीज थी ही नहीं। यहां दास का अर्थ बस सेवक होता था, और सेवक का तात्पर्य वह नहीं है, जो गुलाम या स्लेव का होता है। शास्त्रों में दास, दासी आदि शब्द बहुतायत से आये हैं, किन्तु वहां जो तात्पर्य है, जो व्यवहार की नियमावली है, उसका उल्लेख मैं करूँगा। विदेशी मान्यता एवं पंथों में जो गुलामी या स्लेवरी की बात है, वह अत्यंत ही बीभत्स, क्रूर, अमानवीय एवं निन्दनीय है। उसे अधिक विस्तार से पढ़ने के लिए, समझने के लिए आपको विशेष शोध की आवश्यकता नहीं पड़ने वाली, क्योंकि आज तक इसका दंश देखने को मिलता है।

हां, आप उसके भावनात्मक अनुभव को प्राप्त करने के लिए कुछ हॉलीवुड फिल्में, जैसे कि 12 Years a slave (2013), Django Unchained (2012), Glory (1989), और सबसे बढ़कर Slavery by another name (2012) आदि देख सकते हैं। रोमन, अरबी, यूनानी एवं मिस्री गुलामी के भयावह दृश्य आपको झलक Exodus: Gods and Kings (2014), Gladiator (2000) जैसी फिल्में दिखा देंगी।

विदेशों में जिस गुलामी और स्लेवरी की बात आती है, वहां अधिकांश मामलों में गुलामों को जंजीरों में बांधकर रखा जाता था। उनसे अमानवीय व्यवहार किया जाता था। उनके आवास, भोजन आदि अत्यंत निम्नस्तरीय होते थे और वेतन की बात दूर, कई बार तो पर्याप्त वस्त्र एवं भोजन भी नहीं दिया जाता था। उनके पत्नी, बच्चे आदि के साथ क्रूर शोषण और बलात्कार होते थे एवं एक ही व्यक्ति और उसकी पत्नी एवं बच्चों को कई बार अलग अलग बेचा जाता था, जहां वे जीवन में फिर कभी नहीं मिल पाते थे।

स्त्रियों को निर्वस्त्र करके उनकी नीलामी की जाती थी, और आज भी इसका व्यापक प्रयोग होता है। इस्लामी, ईसाई एवं यूनानी आक्रांताओं ने भारत को भी ऐसे अनगिनत घाव दिए हैं। विदेशों में गुलामी एवं स्लेवरी के जो प्रारूप थे या हैं, उनके उद्धरण तो आपको कुरान, हदीस आदि में पर्याप्त स्थानों पर दिख जाएंगे किन्तु मैं कुछ आधुनिक लेखकों के सारभूत उद्धरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

Slaves were punished by whipping, shackling, beating, mutilation, branding, and/or imprisonment. Punishment was most often meted out in response to disobedience or perceived infractions, but masters or overseers sometimes abused slaves to assert dominance.
(Reference – Moore, p. 114)

गुलामों को कोड़े मारकर, जंजीरों में बांधकर, पीटते हुए, उनके अंगों को काटकर, गरम लोहे से दागकर या कैद करके दण्डित किया जाता था। ये दण्ड सामान्य बातों के लिए, जैसे कि बताए गए काम में देरी या हुक्म की नाफ़रमानी करने के लिए दिए जाते थे, किन्तु कई गुलामों के मालिक, बस अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए भी ऐसा करते थे।

Owners of slaves could legally use them as sexual objects. Therefore, slavery in the United States encompassed wide-ranging rape and sexual abuse.

(Reference – Moon, Dannell (2004). "Slavery". In Smith, Merril D. (ed.). Encyclopedia of Rape. Greenwood. p. 234)

गुलामों के मालिक उन्हें अपनी यौन तृप्ति के लिए "कानूनी तौर पर" इस्तेमाल कर सकते थे। अमेरिका में गुलामी के पैमाने यौन शोषण एवं बलात्कारों तक फैले हुए थे।

Many slaves fought back against sexual attacks, and some died resisting them; others were left with psychological and physical scars.
(Reference – Marable, p 74)

बहुत से गुलाम अपने ऊपर यौन अत्याचार होने पर उसका विरोध करते थे। कई गुलाम तो विरोध करने के ही कारण मारे जाते थे, अन्य लोगों को मानसिक या शारीरिक जख्मों के साथ जीना पड़ता था।

Although Southern mores regarded white women as dependent and submissive, black women were often consigned to a life of sexual exploitation.

(Reference – Moon, Dannell (2004). "Slavery". In Smith, Merril D. (ed.). Encyclopedia of Rape. Greenwood. p. 234)

वैसे दक्षिणी प्रान्तों के रिवाजों में गोरे रंग की स्त्रियों को सहायता के योग्य एवं सभ्य, विनम्र समझा जाता था किंतु काले रंग की स्त्रियों का जीवन यौन शोषण के लिए है, ऐसा मानते थे।

Angela Davis contends that the systematic rape of female slaves is analogous to the supposed medieval concept of droit du seigneur, believing that the rapes were a deliberate effort by slaveholders to extinguish resistance in women and reduce them to the status of animals.
(Reference – Marable 73)

एंजेला डेविस (गुलामी के विरुद्ध कार्य करने वाली एक अमेरिकी राजनेत्री, और लेखिका) ने दावा किया कि महिला गुलामों के साथ बलात्कार की परिपाटी मध्यकाल के Droit du seigneur (Droit de cuissage) के समकक्ष है, जिसके तहत यह माना जाता था कि गुलामों के साथ बलात्कार करने से उनके अंदर विरोध एवं विद्रोह की भावना समाप्त हो जाती है एवं उनका स्तर गिरकर जानवरों के जैसा हो जाता है। (इसका व्यापक प्रचलन इस्लामी गुलामों के विरुद्ध देखा जाता है। आज भी तहर्रुश गेमिया के नाम से यह किया जा रहा है)

Droit du seigneur (Droit de cuissage) वह कानून था, जिसके अनुसार राजा या उसके अधिकारियों को यह कानूनी अधिकार मिला हुआ था कि किसी भी गुलाम या सामान्य व्यक्ति की शादी होने पर उसकी दुल्हन के साथ पहली रात राजा या उसके अधिकारी ही बिताएंगे और आगे भी इच्छा होने पर वे ऐसा कर सकते हैं। ये दुष्कर्म अंग्रेजों ने भारत के भी कई भागों में किया था।

The women he hoisted up by the thumbs, whipp'd and slashed her with knives before the other slaves till she died.

(Reference – Lasgrayt, Deborah. Ar'n't I a Woman? : Female Slaves in the Plantation South 1999)

(बलात्कार का विरोध करने वाली गुलामों को) अंगूठे से बांधकर टांग दिया जाता था, उसपर कोड़े बरसाए जाते थे, और दूसरे गुलामों के सामने ही उसपर तब तक चाकुओं से वार किया जाता था, जब तक वह मर नहीं जाती थी।

Alligator hunters would sit crying black babies who were too young to walk at the water's edge. With rope around their necks and waists, the babies would splash and cry until a crocodile snapped on one of them. The hunters would kill the alligator only after the baby was in its jaws, trading one child's life for one alligator's skin. They made postcards, pictures and trinkets to commemorate the practice.

(Reference – Miami New Times article)

मगरमच्छ का शिकार करने वाले लोग, रोते हुए काले (गुलामों के) बच्चों को नदी के किनारे बैठा देते थे। वे बच्चे इतने छोटे होते थे कि चल भी नहीं सकते थे। उन बच्चों के कमर और गर्दन रस्सियों से बंधे होते थे और वे रोते हुए नदी के पानी में तब तक छटपटाते थे, जब तक कोई मगरमच्छ उनपर झपट्टा न मारे। शिकारी भी मगरमच्छ को तभी मारते थे, जब मगरमच्छ उस बच्चे को अपने जबड़े में खींच लेते थे, और इस प्रकार मगरमच्छ की चमड़ी का सौदा एक बच्चे की जान से होता था। इस घटना-विशेष की स्मृति ताज़ा करने के लिए वे इसके सम्मान में स्मरणोत्सव मनाते थे और इसके चित्र और पोस्टकार्ड छपवाते थे।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से आपको एक आंशिक झलक मिल गई होगी कि विदेशों में गुलामी या स्लेवरी का क्या भयावह रूप था। अब उन्हीं अत्याचारियों ने जब भारत ने इसका अनुवाद दास प्रथा के रूप में कर दिया, तो साथ ही यह भ्रम फैला दिया कि यही सब भारत में भी होता था, जहां दास का अर्थ शूद्र है। यह नितांत ही असत्य एवं भ्रामक था। हमारे यहां कभी ऐसी क्रूरता का समर्थन समाज या शास्त्र नहीं करते। काले गोरे के रंगभेद के आधार पर गुलामी आदि की बात तो बिल्कुल नहीं है। रंगभेद का एकमात्र प्रख्यात उदाहरण आचार्य चाणक्य के साथ देखने को मिलता है, जहां धनानन्द ने काला ब्राह्मण होने से चाणक्य का अपमान किया था। वहां भी गुलामी की नहीं, अपमान की बात थी और वह भी शूद्र नहीं, ब्राह्मण के ही साथ। इसी गलती को निमित्त बनाकर

आचार्य चाणक्य ने बाद में तो पूरा नन्दवंश ही उखाड़ फेंका था। आज भी विदेशों में Freeman की उपाधि लगाकर लोग घूमते हैं, जो यह दिखाता है कि कैसे उनके पूर्वज गुलाम थे। उदाहरण के लिए मॉर्गन फ्रीमैन का ही नाम देख लें। कुछ लोग भारत में न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति के आधार पर कहते हैं कि स्त्रियों का जीवन गुलामी के लिए है, ऐसी बात है। यह भी एक वामपंथी भ्रम ही है। उन श्लोकों में पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने आदि की बात है। वहां स्त्री की रक्षा करने की बात है, और *रक्षा का अर्थ जंजीरों में बांधकर कोड़े बरसाना नहीं होता* । आईये, हम सनातन शास्त्रों में दास-दासियों के विषय में दिए गए निर्देशों में से कुछ उदाहरण देखते हैं।

दास शब्द का सामान्य अर्थ सेवक, परिचारक, किंकर और एकदम सरल शब्दों में नौकर आदि है, किन्तु इसका अर्थ बन्धक गुलाम नहीं होता है। आप नौकरी करते हैं न, चाहे सरकारी (राजकीय) या प्राइवेट (व्यक्तिगत), यही दास्यकर्म है। दास का अर्थ वही है, जो आपकी सरकारी या प्राइवेट नौकरी का है। लोग बड़े गर्व से कहते हैं आजकल कि मेरा बेटा नौकरीपेशा है, या मेरा दामाद सर्विस करता है, और यहां तक ठीक है, यदि हम कहें कि दास्यकर्म करता है, तो गलत ? क्यों ? क्योंकि अंग्रेजों ने दास शब्द को, दास प्रथा को अपने यहां की क्रूर गुलामी और स्लेवरी से जोड़ कर दिखा दिया।

यूपीएससी को भी लोकसेवा आयोग कहते हैं। सेवक का अर्थ दास ही है। हनुमान जी भगवान् श्रीराम के दास हैं, गुलाम नहीं - दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य। कामशास्त्र में प्रेमी या पति को अपनी प्रेमिका या पत्नी का दास बताया गया है, वैसे ही पत्नी भी पति की दासी है। हमारे यहां इसीलिए रैदास (रविदास), तुलसीदास आदि भी हुए, ये गुलाम या स्लेव नहीं थे। दास शब्द किसी शोषण या अत्याचार का प्रतीक नहीं, विनम्रता, सेवाभाव, अहंकारहीनता का प्रतीक था। आज भी लोग समाज'सेवा' करते हैं न। हां, यह अवश्य है कि कहीं कहीं वचन है कि कोई व्यक्ति दासकर्म न करे, किन्तु वहां भाव है कि उसे अपनी आजीविका के लिये किसी अन्य के दिए गए वेतन पर आश्रित न रहना पड़े, अपितु वह स्वरोजगार करे। बड़े बूढे कहते भी थे – "अधम चाकरी" ... मिताक्षरा में वचन है,

कर्मापि द्विविधं ज्ञेयमशुभं शुभमेव च। अशुभं दासकर्मोक्तं शुभं कर्मकृतां स्मृतम् ॥

कर्म के भी दो प्रकार हैं, एक शुभ एवं दूसरा अशुभ। दासकर्म को अशुभ तथा स्वकृत को शुभ कहते हैं।

शूद्रवर्ण, जिनके लिए दास शब्द का उल्लेख है, उन्हें व्यक्तिगत दास्यकर्म (नौकरी) के लिए कम, और स्वकर्म का अधिक अवसर दिया गया था। जितने भी समाज के आधारभूत कर्म हैं, वे सभी एक एक जाति के लिए सहज ही आरक्षित थे। जैसे सोने चांदी का सारा काम सुनार, लोहे का लुहार, पीतल कांसे का ठठेरा, तेल का तेली, कपड़े बुनने का बुनकर, कपड़े सिलने का दर्ज़ी, कपड़े रंगने का रंगरेज, कपड़े धोने का धोबी, मिट्टी का सारा काम कुम्हार, सौंदर्य प्रसाधन की सैरंध्री - नाई आदि, पानी भरने और वितरण का कहार, भिश्ती, आदि ... सबके कर्तव्य निश्चित थे। हां, इसके बाद यदि आजीविका में कोई समस्या आये, तब उसके लिए नौकरी करने यानी दास बनने की बात थी। वहां भी उसे पर्याप्त अवकाश, वेतन आदि की सुविधा रहती थी, जैसे आज की नौकरी में है।

शब्दकल्पद्रुम में दास शब्द की परिभाषा में यह भी कहते हैं – दास्यते दीयते भूतिमूल्यादिकं यस्मै सः (दासः) जिसे भूतिमूल्य आदि दिया जाए, उसे दास कहते हैं। भूति का अर्थ सम्पत्ति भी है और सत्ता भी है। सत्ता का अर्थ शब्दकल्पद्रुम में साधुता एवं अच्छा व्यवहार भी बताया गया है। भूति का अर्थ उत्तरोत्तरवृद्धि भी है। अर्थात् दासों को उनके अच्छे कर्म का वेतन, धन, मूल्य आवश्यक वेतनवृद्धि, क्रमशः बढ़ते हुए वेतनमान के साथ मिलता था। दास का अर्थ किंकर भी होता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का किंकर है।

विप्रस्य किङ्करा भूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप।
सर्वेषां किङ्कराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड, अध्याय ३४, श्लोक – ५९)

ब्राह्मण का किंकर राजा है। राजा का किंकर वैश्य है। वैश्य का किंकर शूद्र है और शूद्र सबका, विशेषकर ब्राह्मण का किंकर है। किंकर का अर्थ गुलाम नहीं होता, आदेशपालक होता है। "मैं क्या करूँ ?" अथवा "मेरे लिए क्या आज्ञा है ?" ऐसे प्रश्न करने वाला किंकर है। हनुमानजी महाराज को प्रभु श्रीराम का किंकर बताया गया है - पातु श्रीरामकिङ्करः। रघुवंशम् में कुम्भोदर सिंह ने राजा दिलीप को स्वयं का परिचय शिव जी के किंकर के रूप में दिया है – अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः। राजा ब्राह्मण से पूछता है कि मैं क्या करूँ ? मैं कैसे राज्य चलाऊँ कि धर्मानुसार सब प्रजा सुखी रहे, इसीलिए वह ब्राह्मण का किंकर है। वैश्य, राजा से पूछता है कि मैं क्या करूँ ? राज्य के नियमों के अनुसार अर्थव्यवस्था के अनुकूल कौन सी व्यापार नीति अपनाऊं ? , इसीलिए वह राजा

का किंकर है। शूद्र, चूंकि उत्पादक (Primary Production Sector) वर्ग है, और वैश्य वितरणकर्ता (Secondary or Tertiary Sector) है, अतएव शूद्र वैश्य से पूछता है कि मैं क्या करूं ? क्या बनाऊं, किस वस्तु का, किस गुणवत्ता अथवा कितनी मात्रा में उत्पादन करूँ ? इसीलिए वह वैश्य का किंकर है। विशेषकर ब्राह्मण का किंकर इसीलिए है, क्योंकि ब्राह्मण के सदुपदेश से उसे कर्तव्य की शिक्षा मिलेगी तो वह शेष दायित्वों का वहन सहजता से कर लेगा। किंकर को ही दास भी कहते हैं, दास को ही भृत्य भी कहते हैं।

भृत्य अथवा दास का काम शुश्रूषा बताया गया है। शुश्रूषा के कई अर्थ हैं, जैसे कि – सुनने की इच्छा, सेवा, उपासना आदि। स्वामी के दिये गए निर्देशों को सुनने की इच्छा रखना, उसकी सेवा करना आदि दास के कर्तव्य हैं। अब यदि दास पर अत्याचार होगा तो वह भला क्यों अपने स्वामी के आदेश सुनने की इच्छा रखेगा ? सेवा का भाव भी तभी उत्पन्न हो सकता है, जब स्वामी उसके प्रति सद्व्यवहार करे। भृत्यकर्म को ही दास्यकर्म भी कहते हैं। भृत्यों के भी कई भेद हैं। उत्तम, मध्यम एवं अधम भृत्यों के सन्दर्भ में शास्त्रों का वचन है कि जैसे सोने की परख उसके वजन, घर्षण, छेदन एवं ताप आदि परीक्षणों से होती है, वैसे ही सामाजिक प्रशंसा, अच्छा आचरण, कुल और कार्यकुशलता से भृत्य की परीक्षा ली जाती है।

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः। नियोक्तव्या यथार्थेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥
भृत्यपरीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि यो गुणः।
तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥
यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, तुलाघर्षणच्छेदनतापनेन।
तथा चतुर्भिर्भृतकः परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥
(गरुड़ पुराण, आचारकाण्ड, बार्हस्पत्यनीति, अध्याय – ११२, श्लोक – ०१-०३)

शास्त्रों में दास के कई भेद हैं, जिनमें क्रीतदास (ख़रीदा हुआ व्यक्ति) भी है। इसका एक उदाहरण हम राजा हरिश्चंद्र और वीरबाहु चांडाल के प्रकरण में देखते हैं। किन्तु क्रीतदास को भी पूरी सुविधा और वेतन आदि मिलते थे। (हरिश्चंद्र के साथ अत्याचार इसीलिए हुआ क्योंकि उनकी सत्यनिष्ठा की धार्मिक परीक्षा हो रही थी, और वह चांडाल, ब्राह्मण आदि माया के थे) ऐसे ही एक दास का प्रकार वह है जो ऋण न चुकाने की स्थिति में दास बन गया हो, ऐसे में वह व्यक्ति ऋण के समतुल्य परिश्रम करके, अथवा किसी और व्यक्ति के

द्वारा ऋण चुका देने पर स्वतः मुक्त हो जाता था। इसमें कोई पीढ़ी दर पीढ़ी की गुलामी की बात नहीं थी। पिता के मरने पर नियमतः उसका लिया गया ऋण चुकाने के लिए उस व्यक्ति की पत्नी या पुत्र बाध्य नहीं हैं। हां, यदि अपने पिता को पारलौकिक कष्ट से बचाने के लिए पुत्र या पत्नी उस ऋण को चुका दें, तो यह उनकी अपनी अलग सत्यनिष्ठा है।

दास्यते भृतिरस्मै दासति ददात्यङ्गं स्वामिने उपचाराय वा दासः।
(वाचस्पत्यम्)

वाचस्पत्यम् का वचन है कि जिसे 'भृति' दी जाए, और जो (भृति लेने के बदले) अपने अंग (शरीर) को स्वामी के उपचार (सेवा) के लिए समर्पित करे, उसे दास कहते हैं। अमरकोश में भृति का अर्थ वेतन, एवं मेदिनीकोश में भृति का अर्थ भरण बताया गया है। अर्थात् जो व्यक्ति भरण पोषण के बदले अथवा वेतन लेकर स्वामी की सेवा करे, वह दास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कैसे विदेशों के गुलाम या स्लेव, और हमारे यहां के दास-दासी आदि में व्यापक अंतर है, एवं क्यों सेल्वरी या गुलामी को हम दासप्रथा नहीं कह सकते। जहां विदेशों में गुलामों को पीट पीट कर मारने की बात सामान्य है, वहीं वाचस्पत्यम् आगे स्मृतिवाक्य से कहता है,

यश्चैषां स्वामिनं कश्चिन्मोचयेत् प्राणसंशयात्।
दासत्वात् स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत चेति॥

जो (दास) अपने स्वामी को प्राणसंकट से बचाता है, वह दासत्व से मुक्त होकर पुत्र के समान हो जाता है। (यहां तक कि उसका अपने स्वामी की सम्पत्ति में भी अधिकार हो जाता था) किन्तु विदेशों में पुत्र बनना तो दूर, यदि मालिक के सम्बन्धी भी कोई अपराध करें और उसका आरोप गुलाम पर आ जाये, तब बिना किसी जांच के गुलाम को मृत्युदंड तक दे दिया जाता था –

A female slave was sent on an errand, and was gone longer than her master wished. She was ordered to be flogged, and was tied up and nearly beaten to death. While the overseer was whipping her, in the presence of her master, she said that she had been prevented returning sooner by sickness on the way.

Her enraged master ordered her to be whipped again for daring to speak, and the lash was again applied, until she expired under the operation. Nor was her life alone sacrificed. An unborn infant died with her, which had been the cause of her delay on her master's errand.

(Proceedings of the New-England Anti-Slavery Convention, held in Boston on the 27th, 28th and 29th of May, 1834. Boston.)

New-England Anti-Slavery Convention, जो मई, १८३४ की २७-२९ तारीख तक बॉस्टन में चला था, उसमें गुलामों की स्थिति पर अनेक घटनाओं के उदाहरण देते हुए कहा गया था – एक स्त्री गुलाम को किसी कार्य से भेजा गया था किंतु उसने आने में कुछ देर कर दी। मालिक को यह देरी पसन्द नहीं थी, इसीलिए उसे (बाकी गुलामों को आदेश देकर) कोड़े मारे गए, और बांध कर लगभग अधमरा होने तक पीटा गया। जब गुलामों का प्रभारी उसे पीट रहा था, तब उस महिला ने कहा कि रास्ते में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया था इसीलिए उसे देरी हो गयी। (चूंकि महिला गुलाम गर्भवती थी, तो शायद गर्भावस्थाजन्य शारीरिक थकान, भार, तनाव आदि से वह शीघ्रता में न आ सकी) उसकी बात सुनने से मालिक का गुस्सा और बढ़ गया, उसने मालिक से "जुबान लड़ाने" के कारण उसे और अधिक कोड़े लगाए और अंततः वह उस पिटाई के कारण मर गयी। केवल उसने ही अपने प्राण नहीं दिए, अपितु उसके पेट में पल रहा अजन्मा बच्चा भी मर गया, क्योंकि उस बच्चे के कारण ही महिला गुलाम को आने में देर हो गयी थी।

Another case occurred, where a black boy was whipped for stealing a piece of leather, and because he persisted in denying it, he was whipped till he died. After he was dead, his master's son acknowledged that he took the piece of leather.

(बॉस्टन के १८३४ वाले उसी अधिवेशन में यह बात भी बताई गई कि) एक काले गुलाम लड़के को कोड़े मारे जा रहे थे। उसपर चमड़े के एक टुकड़े को चुराने का आरोप लगाया गया था, और चूंकि उस बच्चे ने इस आरोप का खण्डन किया और कहा कि उसने चोरी

नहीं की है, तो मालिक ने उसे तब तक कोड़े मारे, जब तक वह बच्चा मर नहीं गया। उस बच्चे के मर जाने के बाद, मालिक के बेटे ने यह बताई कि वास्तव में उसने (मालिक के बेटे ने) ही चमड़ा लिया था।

A slave, who was a husband and father, was made to strip his wife and daughter, and whip them.

(New-England Anti-Slavery Society (1835). Second annual report of the board of managers of the New-England Anti-Slavery Society)

संस्था के १८३५ में हुए दूसरे वार्षिक सम्मेलन में पुनः ऐसी ही चर्चाओं में एक उदाहरण दिया गया – "एक गुलाम, जो एक पिता और पति भी था, उसे विवश किया गया कि वह अपनी पत्नी और बेटी को निर्वस्त्र करके उनपर कोड़े बरसाये।"

During his term of bondage, the indentured servant received no monetary payment. His hours and conditions of work were set absolutely by the will of his master who punished the servant at his own discretion. Flight from the master's service was punishable by beating, or by doubling or tripling the term of indenture. The bond-servants were frequently beaten, branded, chained to their work, and tortured.

अपने गुलामी के सत्र में गुलामों को कोई वेतन नहीं दिया जाता था। उनके काम करने का समय और परिस्थितियों का निर्णय मालिक की इच्छा पर होता था, जो उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार ही दण्डित करता था। यदि गुलाम मालिक की गुलामी छोड़कर भाग जाता था, तो उसे पकड़ कर पीटा जाता था, अथवा उसके गुलामी के सत्र को बढ़ाकर दो या तीन गुणा कर दिया जाता था। गुलामों को काम के दौरान अक्सर बांध कर रखा जाता था, पीटा जाता था, गर्म लोहे से दागा और प्रताड़ित किया जाता था।

Washington Telegraph ने २९ अगस्त, १८३५ के अपने अंक में प्रथम पृष्ठ पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें एक गुलामों के मालिक के विचार दिए गए थे, जिसने कहा था –

We .... deny that slavery is sinful or inexpedient. We deny that it is wrong in the abstract. We assert that it is the natural condition of man; that there ever has been, and there ever will be slavery.

(Washington Telegraph. August 29, 1835)

"हम इस बात से इंकार करते हैं कि गुलामी/स्लेवरी करवाने में कोई पाप या अनैतिकता की बात है। गुलामी करवाना भावनात्मक रूप से गलत है, हम इस बात से भी इंकार करते हैं। हम इस बात के लिए आश्वस्त करते हैं कि गुलामी, लोगों की एक प्राकृतिक स्थिति है, ये हमेशा से थी और हमेशा रहेगी।"

आप समझ सकते हैं कि म्लेच्छों की मानसिकता किस स्तर की थी, कि उन्हें गुलामों के प्रति इतने अत्याचार करने के बाद भी "यह पाप है", इसकी तक समझ नहीं थी। इसी मानसिकता के कारण उन्होंने भारत में कई आक्रमण किये, कभी अरबी, कभी तुर्क, कभी मुगल, कभी पुर्तगाली, कभी अंग्रेज तो कभी यूनानियों के रूप में ... वे गुलामी को प्राकृतिक मानते हैं और पूरे संसार को अपना गुलाम बनाने को अपना अधिकार समझते हैं। एक उदाहरण और देखें –

Joe's mother was ordered to dress him in his best Sunday clothes and send him to the house, where he was sold, like the hogs, at so much per pound. When her son started for Petersburgh, ... she pleaded piteously that her boy not be taken from her; but master quieted her by telling that he was going to town with the wagon, and would be back in the morning.

Morning came, but little Joe did not return to his mother. Morning after morning passed, and the mother went down to the grave without ever seeing her child again. One day she was whipped for grieving for her lost boy.... Burwell never liked to see his slaves wear a sorrowful face, and those who offended in this way were always punished. Alas! the sunny face of the slave is not always an indication of sunshine in the heart.

(Reference – Keckley, Behind the Scenesor, Thirty years a slave, and Four Years in the White House, 1868, p. 12)

'जो' की माँ को यह आदेश मिला कि वह उसे (जो को) अच्छे से अच्छे कपड़ों में तैयार करके भेज दे, जहाँ उसे (जो को) बेचा गया। सूवरों की भांति, जो को बेचा गया, अधिक से अधिक दाम देने वाले को। जब बेटे (जो) को पीटर्सबर्ग के लिए रवाना किया गया, तो जो की माँ ने कातर होकर प्रार्थना की, कि उसके बेटे को उससे न छीना जाय, लेकिन मालिक ने उसे यह कहकर चुप करा दिया कि 'जो' केवल गाड़ी के साथ शहर तक जा रहा है, अगली सुबह तक लौट आएगा।

सुबह हुई, किन्तु छोटा 'जो' नहीं लौटा। ऐसी कई सुबहें आयीं किन्तु 'जो' नहीं आया, और उसकी माँ अपनी मृत्यु तक उसे न देख सकी। एक दिन अपने खोए बच्चे का शोक मनाने के कारण 'जो' की माँ को कोड़े भी मारे गए थे, क्योंकि बॉर्वेल (मालिक) को अपने गुलामों के उदास चेहरे देखना पसन्द नहीं था। जो गुलाम उदास रहते थे, उन्हें मालिक का "अपमान" करने के कारण कोड़े मारे जाते थे। गुलाम के चेहरे की खुशी का मतलब यह नहीं, कि उसका दिल भी खुश है।

१७१२ ई० में South Carolina Code बनाया गया था, जो उत्तरी अमेरिका में गुलामी के कायदों के आधार पर लिखा गया था और उसे बाद में जॉर्जिया और फ्लोरिडा आदि में भी लागू किया गया था। उसके नियमों में से एक का उदाहरण देखें –

The 1712 South Carolina slave code included the following provisions –

No slave could work for pay; plant corn, peas or rice; keep hogs, cattle, or horses; own or operate a boat; buy or sell, or wear clothes finer than "Negro cloth".

कोई भी गुलाम वेतन नहीं ले सकता था। अपने लिए खेती नहीं कर सकता था, अपने लिए सूअर, गाय, घोड़े आदि नहीं पाल सकता था, अपनी नाव नहीं रख या चला सकता था, अपनी इच्छा से किसी वस्तु की खरीद बिक्री नहीं कर सकता था अथवा उनके लिए निर्धारित कपड़ों से बेहतर कपड़े नहीं पहन सकता था। हालांकि यह कानून बाद में संशोधित किया गया था और नए नियमों में कुछ बिंदु इस प्रकार के थे –

The South Carolina slave code was revised in 1739, with the following amendments –

No slave could be taught to write, work on Sunday, or work more than 15 hours per day in summer and 14 hours in winter. A fine of $100 and six months in prison were imposed for teaching a slave to read and write; the death penalty was imposed for circulating incendiary literature.

किसी भी गुलाम को पढ़ाना लिखाना (शिक्षा देना) प्रतिबंधित था। उससे गर्मियों में पन्द्रह एवं सर्दियों में चौदह घण्टों से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। (संशोधन के बाद यह स्थिति थी, उससे पहले की कल्पना आप कर सकते हैं) गुलामों को शिक्षा देने वाले व्यक्ति को सौ डॉलर का जुर्माना एवं छः मास की कैद का दण्ड मिलता था। उन्हें भड़काऊ शिक्षा देने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था।

Children, especially young girls, were often subjected to sexual abuse by their masters, their masters' children, and relatives.

(Reference – Painter, Nell Irvin, "Soul Murder and Slavery: Toward A Fully Loaded Cost Accounting," U.S. History as Women's History, 1995, p 127)

बच्चे, विशेषकर छोटी लड़कियों का यौन शोषण उनके मालिक, मालिक के बेटों या उनके रिश्तेदारों के द्वारा अक्सर किया जाता था। गुलामों को अक्सर गुलामी के तस्कर खरीदते और बेचते थे। यह सब विदेशों में आज भी व्यापकता से होता है। किन्तु चूंकि भारत में गुलामी या स्लेवरी नहीं थी, यहां केवल दास थे, तो सनातनी शास्त्र दासों के विषय में क्या निर्देश करते हैं ?

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते।

ऐसा स्मृतिकार याज्ञवल्क्य का वचन है। जिसे बलपूर्वक दास बना लिया गया हो, तस्करों के द्वारा बेच दिया गया हो, उसे दासत्व से मुक्त कर देना चाहिए। अर्थात् यदि आप अपने घर के लिये या व्यापार के लिए किसी को नौकरी पर रखते हैं तो उसे बलपूर्वक या मानव-तस्करों के द्वारा खरीद बेच कर दास नहीं बनाया हुआ होना चाहिए।

बालधात्रीमदासीञ्च दासीमिव भुनक्ति यः। परिचारकपत्नीं वा प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्॥

जो छोटे उम्र की दासी, (अथवा छोटे बच्चे की देखभाल करने वाली दासी), जो दासत्व से मुक्त है, ऐसी स्त्री, अथवा अपने दास की पत्नी का (यौन) उपभोग करता है, उसे पूर्व साहस का दण्ड देना चाहिए। (कई बार घर की बुरी स्थिति के कारण छोटी बच्चियां भी नौकरानी का काम करने लगती हैं) ऐसा स्मृतिकार कात्यायन का वचन है।

तेन लोभादिवशादसौ न मुक्तस्तदा राज्ञा मोचयितव्य इत्याह नारदः।
चौरापहृतविक्रीता ये च दासीकृता बलात्।
राज्ञा मोचयितव्यास्ते दास्यन्तेषु हि नेष्यते॥

यदि लोग लोभवश बलपूर्वक बनाये हुए अथवा तस्करी से लाये गए दासों को मुक्त न करें तो राजा अपने हस्तक्षेप से उन्हें मुक्त कराए, क्योंकि ऐसे लोग दासत्व के योग्य नहीं होते हैं, ऐसा स्मृतिकार नारद का वचन है। वाग्व्यवहारादर्श, याज्ञवल्क्यस्मृति एवं अग्निपुराण आदि का शासकों के प्रति आदेश है कि –

अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च।
गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत् पणिकं दमम्॥

जिन स्त्रियों को बंधक (जेल आदि में) बनाया गया हो, जो स्त्रियां दासी हों, जो स्त्रियां (प्रमुखतः वेश्याएं) किसी और के उपभोग लिए पहले से नियुक्त हों, (अथवा जिनका विवाह आदि किसी और के साथ निश्चित हो), उनका उपभोग करने वाले व्यक्ति को पचास पण का दण्ड राजा दे। (यहां पर किसी जाति, वर्ण ये चमड़ी के रंग की बात नहीं है, सबों के लिए यह नियम है। किंतु विदेशों की स्लेवरी में ऐसा नहीं था)

Free or white women could charge their perpetrators with rape, but slave women had no legal recourse; their bodies legally belonged to their owners.

(Reference – Block, Sharon. "Lines of Color", 137.)

स्वतन्त्र या गोरी स्त्रियां अपने अत्याचारियों पर बलात्कार का कानूनी आरोप लगा सकती थीं, किन्तु काली और गुलाम स्त्रियों के पास ऐसा कोई कानूनी अधिकार नहीं था, क्योंकि उनके शरीर पर उनके मालिकों के संवैधानिक अधिकार थे।

अंग्रेज, अरबी, रोमन, पुर्तगाली, अमरीकी आदि के यहां तो यह बात थी ही, ऐसे लोग जहां जहां गए, वहां वहां इस पाप को फैलाते गए और जब भारत में वे अधिक सफल न हुए तो काले गोरे के आधार पर आर्य, द्रविड़, दलित, सवर्ण का द्वेषबीजारोपण कर दिया। स्वयं शिक्षा पर प्रतिबंध लगाने वाले लोगों ने शूद्रों को भ्रमित किया कि शूद्रों को ब्राह्मण शिक्षा देने से रोकते थे। इस बात के अधिक विवेचन के लिए "शूद्र कौन थे – अवलोकन एवं समीक्षा" में डॉ त्रिभुवन सिंह के द्वारा दिये गए ऐतिहासिक दस्तावेज के प्रमाणों से आप यह जान सकते हैं कि कैसे अंग्रजों के आने से पहले तक भारतीय गुरुकुलों में शूद्र छात्रों की संख्या ब्राह्मण छात्रों से *कई गुणा अधिक* थी।

आज भी जहां जहां सनातन धर्म का बाहुल्य नहीं है, दूर के देशों की बात रहने भी दें तो कल तक के भारतीय अंश, पाकिस्तान और बांग्लादेश में ही देखें कि प्रतिदिन सैकड़ों हिन्दू लड़कियों को अगवा करके उनपर बलात्कार किये जाते हैं। उनकी धूर्तता देखिये, उनके ही कानूनों से –

१) यदि कोई मुसलमान किसी गैर मुसलमान यानी काफिर लड़की से बलात्कार करता है, तो उसे *बलात्कार माना ही नहीं जाएगा,* क्योंकि काफिरों की स्त्री, सम्पत्ति के उपभोग का जन्मसिद्ध अधिकार मुसलमान का होता है।

२) यदि लड़की चार मुसलमान गवाह अपने समर्थन में खड़ी न कर सके तो उसपर किया गया *बलात्कार सिद्ध नहीं होगा,* भले ही उस बलात्कार के साक्षी सैकड़ों गैर मुसलमान लोग क्यों न हों।

३) यदि किसी को चार मुसलमान खड़े होकर कहें कि उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, तो उस व्यक्ति को *मुसलमान मान लिया जाएगा।*

४) एक बार इस प्रकार से मुसलमान सिद्ध हो जाने पर यदि वह व्यक्ति इससे इंकार करता है तो उसपर कुफ्र का आरोप लगाकर *मृत्युदण्ड दिया जाएगा।*

अब देखिए, पहले तो हिन्दू लड़की पर बलात्कार हुआ, ऐसा कोई केस बनेगा ही नहीं। यदि बन भी गया तो यदि वह लड़की इसके प्रमाण में चार मुसलमान गवाह नहीं ला सकी तो केस निरस्त हो जाएगा, वैसे भी ऐसे मामलों में एक मुसलमान दूसरे मुसलमान के विरुद्ध गवाही नहीं देता। फिर बलात्कारी और उसका परिवार मिलकर लड़की को, भले ही वह अगवा की गई हो, मुसलमान घोषित कर देता है, और इसके बाद यदि वह लड़की

इससे इंकार करती है, तो उसे मार दिया जाता है। इन्हीं विचारधारा के इस्लाम और ईसाईयत के साथ हाथ मिलाकर वामपंथी षड्यंत्रकारी संस्थाएं, पैसा और हथियार के दम पर शूद्रों को ब्राह्मणों के विरुद्ध अफवाहों का आश्रय लेकर भड़काती हैं और देश को खण्डित कर रही हैं। इन्होंने अपने यहां की स्लेवरी और गुलामी को हमारे यहां की दासप्रथा बताकर उस बात का आरोप हमारे धर्म पर लगा दिया जो हमने कभी न किया और न करने की सोची, उल्टे हमारे यहां दण्डनीय बताया गया है। हमारे शास्त्र कहते हैं –

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः॥

.....

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति॥
(ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपतिखण्ड, अध्याय – ०३)

विद्या देने वाला, आजीविका या अन्न देने वाला, भय के समय रक्षा करने वाला, जन्म देने वाला और कन्यादान करने वाला, इन्हें वेदों के अनुसार लोगों का पिता कहा गया है। ऐसे ही भृत्य (दास), शिष्य, जिसका हमने पालन किया है, जो हमारे वीर्य से उत्पन्न हुआ हो, अथवा हमारी शरण में आया हो, इनमें से जो वीर्य से उत्पन्न हुआ हो, उसे धन में उत्तराधिकारी पुत्र कहा गया है और शेष चारों को धर्मपुत्र कहा गया है।

इसमें धर्मपुत्र के साथ भी (धन के उत्तराधिकार को छोड़कर) अपने बेटे जैसा ही व्यवहार होगा। (ध्यान रहे, धर्मपुत्र में भृत्य अर्थात् दास भी आता है और यदि उसने स्वामी की प्राणरक्षा की हो तो फिर धन में भी भाग लेने का अधिकारी हो जाता है) जहां जहां शास्त्रों में राजा के लिए अपने दासों के प्रति कर्तव्य की बात आई है, वहां वहां राजा का अर्थ सामान्य स्वामी से भी लिया जा सकता है, क्योंकि नियम वही रहते हैं। स्वयं महारानी द्रौपदी का महारानी सत्यभामा के प्रति निम्न वचन देखें –

शतं दासीसहस्राणि कौन्तेयस्य महात्मनः।
कम्बुकेयूरधारिण्यो निष्ककण्ठ्यः स्वलङ्कृताः॥
महार्हमाल्याभरणाः सुवर्णाश्चन्दनोक्षिताः। मणीन्हेम च विभ्रत्यो नृत्यगीतविशारदाः॥
तासां नाम च रूपञ्च भोजनाच्छादनानि च। सर्वासामेव वेदाहं कर्म चैव कृताकृतम्॥
(महाभारत, वनपर्व, अध्याय – २३४, श्लोक – ४८-५०)

महात्मा कुन्तीपुत्र (युधिष्ठिर) की एक लाख दासियाँ थीं, जो अपने शंख के बने हुए बाजूबंद एवं कंठ में सोने के हार धारण करके अलंकृत रहती थीं। बहुत सी बहुमूल्य मालाओं को धारण करने वाली, सुंदर वेश भूषा से युक्त, चंदन आदि से अलंकृत, सोने और मणियों से चमकती हुई, नृत्य-गीत आदि में कुशल थीं। मैं (द्रौपदी) उन सभी दासियों के नाम, रूप, भोजन, आवास आदि की व्यवस्था को जानते हुए उनके द्वारा कौन सा कार्य किया गया है, और कौन सा नहीं, इसका ध्यान रखती थी।

बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः। अदत्त्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः॥
(महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय – ६२, श्लोक – ३८)

जो लोग बालकों को, वृद्धों को एवं दासों को बिना (भोजन) दिए ही, स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे नरक में जाते हैं। (क्या आप विदेशी स्लेवरी या गुलामी में इस उदारता की कल्पना कर सकते हैं ?) शास्त्रों में यदि अपना पुत्र भी शास्त्रोक्त संस्कार से हीन हो, तो वह दास ही है, ऐसा उल्लेख है।

चूडाद्या यदि संस्कारा निजगोत्रेण संस्थिताः।
दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथा दास उच्यते॥
(कालिका पुराण, और्वनीति, अध्याय – ८८, श्लोक – ४०)

हे महाराज (सगर !) अपने (पिता) के गोत्र से जिसका मुंडन आदि संस्कार सम्पादित हुआ है, वही पुत्र/तनय कहाता है, अन्यथा दास कहाता है।

शूद्रः पैजवनो नाम सहस्राणां शतं ददौ। ऐन्द्राग्नेन विधानेन दक्षिणामिति नः श्रुतम्॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय – ५९, श्लोक – ४०-४२)

पैजवन नामक शूद्र ने ऐन्द्राग्नेय विधान से यज्ञ करके एक लाख दक्षिणा दी थी, ऐसा हमने सुना है। यहां ध्यातव्य है कि यह विधान पाकयज्ञ का है, जिसमें वेदमन्त्रों का, स्वाहाकार, आदि का प्रयोग नहीं होता है। *ब्रह्मयज्ञादन्ये पञ्चमहायज्ञान्तर्गता वैश्वदेव - होमबलिकर्मनित्यश्राद्धातिथिभोजनात्मकाश्चत्वारः पाकयज्ञाः*।
ब्रह्मयज्ञ के अतिरिक्त जो पञ्चमहायज्ञ में वैश्वदेव बलिकर्म, होम, नित्यश्राद्ध, अतिथिभोजन आदि चार हैं, वे पाकयज्ञ कहाते हैं। इसमें द्विजाति के लिए समन्त्रक एवं शूद्र के लिए अमन्त्रक विधान है। यह पैजवन नाम का शूद्र, परम् विष्णुभक्त था एवं इसने गालव ऋषि से धर्ममार्ग का ज्ञान प्राप्त किया था।

गुलाम और स्लेव के साथ विदेशों में जो व्यवहार के नियम बनाये गए थे, उनके उदाहरण तो आपने पढ़ ही लिए, अब सनातनी शास्त्र दासों के प्रति जो व्यवहार का निर्देश करते हैं, उसका उदाहरण देखें –

दासं शपेन्न वै क्रुद्धः सर्वबन्धूनमत्सरी। भीताश्वासनकृत्साधुः स्वर्गस्तस्याव्ययं फलम्॥
(भविष्य पुराण, उत्तरपर्व, अध्याय – २०५, श्लोक – १३२)

क्रोधित होकर दासों को श्राप न दे, किसी के प्रति ईर्ष्या का भाव न रखे। डरे हुए व्यक्ति को सांत्वना देने से अक्षय स्वर्गसुख को देने वाले फल की प्राप्ति होती है। (श्राप का अर्थ केवल चमत्कारी दण्ड नहीं होता है, शब्दकोषों में श्राप का अर्थ क्रोध, आक्रोश आदि भी बताया गया है।)

जब लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद श्रीराम जी की आज्ञा से हनुमानजी अशोक वाटिका में जाकर सीताजी को यह शुभ समाचार देते हैं, तब उन्होंने विचार किया कि क्यों न साथ ही, सीताजी पर अत्याचार करने वाली इन राक्षसियों को भी दो चार हाथ लगा ही दिया जाय !! तब सीताजी ने उन्हें ऐसा करने से रोकते हुए कहा,

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया। विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम॥
भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च। मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते॥
प्राप्तव्यं तु दशा योगान्मयैतदिति निश्चितम्। दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला॥
आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन्। हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम॥
(वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग – ११६, श्लोक – ३९-४२)

सीताजी कहती हैं – हे वानरश्रेष्ठ ! राजा के ऊपर आश्रित रहने वाली, दूसरों की आज्ञा का पालन करने वाली इन दासियों पर भला कौन क्रोध करेगा ? मेरे साथ जो हुआ, पूर्व में मैंने जो दुश्चरित्र (स्वर्णमृग का लोभ, एवं निरपराध लक्ष्मण के प्रति द्वेष) किया, मैंने तो अपने कर्म का ही फल भोगा है। उसके ही कारण मुझे यह दशा प्राप्त हुई है, ऐसा निश्चित है। इसीलिए मैं रावण की इन दासियों को क्षमा करती हूँ। रावण की आज्ञा से ही ये मुझे डांटती रहती थीं, अब रावण के मरने पर, हे वानरोत्तम ! तुम इन्हें मत मारो।

शत्रु की दासियों के भी प्रति ऐसी उदारता सनातनी मर्यादा ही सिखा सकती है। आनन्द रामायण के अनुसार सीताजी ने अपने राज्यकाल में भी, सार्वजनिक रूप से यह उद्घोषणा

करवा दी थी कि "कोई भी स्त्री, चाहे किसी भी वर्ग से हो, दरिद्रता के कारण श्रृंगारहीना न रहे। जिसके पास आभूषण न हों, वह राजकोष से ले जाये। अन्य देशों के राजा भी इस नियम का पालन अवश्य करें"।

भारतीय समाज में दास-दासियों को अपने परिवार के सदस्य की तरह रखा जाता था, आज भी बहुत से धर्मनिष्ठ घरों के लोग अपने नौकरों के साथ परिवार जैसा ही व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि दास के मरने पर स्वामी को, और स्वामी के मरने पर दास को भी परिवार वालों की ही भांति सूतक लगता है। पहले पुत्री के विवाह के बाद भी (आधुनिक शब्द में दहेज आदि के रूप में) दास दासियाँ भेंट की जाती थीं, उनपर भी स्वामिनी के मरने पर परिवार वालों के ही समान अशौच एवं शुद्धि आदि लागू होते थे।

मृतसूते तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम्।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम्/यौतुकम्॥
(देवलस्मृति) (ऐसा ही मत विष्णुधर्मोत्तरपुराण का भी है)

महारानी चित्रांगदा के वचन का उदाहरण देते हुए महर्षि और्व उपदेश देते हैं –

अपुत्रस्य नृपः पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः। अमातुर्जननी राजा ह्यतातस्य पिता नृपः॥
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुः पार्थिवः पतिः।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणां सखा॥
(कालिका पुराण, अध्याय – ५१, श्लोक – ३०-३१)

जिसका कोई स्वामी नहीं है, उसका स्वामी राजा होता है। जिसका भरण पोषण करने वाला कोई नहीं होता, उसका भरण पोषण राजा करता है। जिसका कोई सेवक नहीं होता, उसकी सेवा राजा करता है, एवं मनुष्यों का मित्र राजा ही होता है। (तात्पर्य है कि राजा को स्वामित्व, भरण पोषण, सेवा और मित्रता, हर प्रकार से प्रजा का पालन करना चाहिए) जिसका कोई पुत्र नहीं, उसका पुत्र राजा होता है, जिसके पास कोई धन नहीं, उसका धन राजा होता है, जिसकी कोई माता नहीं, राजा उसकी माता है एवं जिनके पिता नहीं हैं, राजा ही उनका पिता होता है। (तात्पर्य यह है कि पुत्र बनकर, आर्थिक बल बनकर, माता और पिता के समान कर्तव्य निभाते हुए एक राजा अपनी प्रजा का पालन करे) क्या विदेशी राजतंत्र अथवा स्लेवरी, गुलामी में ऐसी बात की कल्पना भी की जा सकती है ?

अनुरूपाणि कर्माणि भृत्येभ्यो यः प्रयच्छति। स भृत्यगुणसंपन्नं राजा फलमुपाश्नुते॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय – ११९, श्लोक – ०४)

जो अपने भृत्यों को उनके (क्षमता के) अनुरूप कार्यों में लगाता है, वह राजा भृत्य के गुण से सम्पन्न फल को प्राप्त करता है। स्वयं राजा दशरथ के दिवंगत होने पर भगवान् श्रीराम भरतलाल जी को आश्वासन देते हुए कहते हैं –

भृत्यानां भरणात् सम्यक् प्रजानां परिपालनात्।
अर्थादानाच्च धर्मेण पिता नस्त्रिदिवं गतः॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग – १०५, श्लोक – ३३)

(पाठभेद में अर्थदानाच्च भी मिलता है)

भृत्यों के भली प्रकार भरण पोषण से, प्रजा का अच्छे से पालन करने से और सार्थक दान आदि से अर्जित धर्म के कारण हमलोगों के पिता स्वर्ग गए हैं। किन कर्मों से व्यक्ति स्वयं स्वर्ग जाता है, इसका एक उदाहरण देखें –

परपीडामकुर्वन्तो भृत्यानां भरणादिकम्।
कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः कनकोज्ज्वलैः॥
(ब्रह्मपुराण, अध्याय २१६, श्लोक – ५९)

दूसरों को कष्ट न पहुंचाते हुए, अपने भृत्यों का भरण पोषण करते हुए, व्यक्ति स्वर्ण के समान देदीप्यमान विमानों के माध्यम से स्वर्गलोक को जाता है। ऐसा नहीं है कि सनातनी शास्त्र केवल यह कहते हैं कि पुरुषों को ही अपने दासों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए, अपितु यही नियम स्त्रियों के लिए भी है। ब्रह्माजी कहते हैं –

एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी। पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च॥
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे। प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्॥
(भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय – १४, श्लोक – ३१-३२)

इस प्रकार पति की आराधना करके, उनके कार्यों में आलस्य न करते हुए, पूजनीय व्यक्तियों (या देवताओं का) पूजन करते हुए, भृत्यों का भरण पोषण करते हुए, अपने गुणों का संग्रह और शील (चरित्र, सदाचरण) के समान रक्षा करते हुए, वह (स्त्री) यहां भी सुखी रहती है और मरने के बाद भी दिव्य सुख को प्राप्त करती है।

विदेशों में बड़े बड़े राजा भी गुलामों के साथ जिस क्रूर कार्य को करने में, "यह पाप है", ऐसी सामान्य मानवीय बुद्धि तक नहीं रखते थे, उनसे श्रेष्ठ बुद्धि तो हमारे यहां सनातन धर्म की मर्यादा के अनुसार रहने वाले चाण्डालों की होती थी। भारत के चाण्डाल भी, विदेशी क्रूरकर्मा राजाओं की तुलना में अधिक सभ्य थे।

अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता। तत्रास्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः॥
तस्या नगर्याः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः।
सद्वृत्योत्पादितधनो भृत्यानां भरणे रतः॥
(ब्रह्मपुराण, अध्याय – २२८, श्लोक – ०८-०९)

अवन्ती नामक प्रसिद्ध नगरी, जहां शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् विष्णु का वास है, उस नगरी के किनारे संगीत में कुशल एक चाण्डाल रहता था, जो अच्छे कर्मों के द्वारा धन कमाता था एवं अपने भृत्यों का भरण पोषण करता था। धर्मशास्त्रों के उपदेष्टा ऋषिगण भी इस मर्यादा का पालन करते थे। आचार्य मेधातिथि कहते हैं –

बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च॥ अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते॥
(स्कन्दपुराण, माहेश्वर-कौमारिकाखण्ड, अध्याय ०६, श्लोक – १२६)

अपने सगे सम्बन्धी, शुभचिंतक, भृत्य (दास या सेवक) एवं स्त्रियों पर किसी अपराध का संदेह हो (बिना प्रमाण के ही, केवल आशंका हो) तो उनपर क्रोध करने में देरी करने वाला व्यक्ति प्रशंसनीय है। निंदनीय कर्मों में, जिन्हें करने से पाप की प्राप्ति होती है, उनके वर्णन का एक उदाहरण देखें –

भृत्यानाञ्च परित्यागः साधुबन्धुधुतपस्विनाम्॥
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणाञ्च ताडनम्॥
यो भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान्॥
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाश्नाति बुभुक्षितान्॥
(स्कन्दपुराण माहेश्वर-कौमारिकाखण्ड, अध्याय – ४१, श्लोक ४७ एवं ६७)

अपने भृत्यों के परित्याग से पाप लगता है, साधु, कुटुम्बी, तपस्वी, गाय, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र आदि को मारने से पाप लगता है। जो व्यक्ति अपनी पत्नी, पुत्र, मित्र, अन्य बालक, वृद्ध, दुर्बल, मरणासन्न, भृत्य (दास या सेवक), अतिथि एवं कुटुम्बी आदि भूखे

व्यक्तियों को छोड़कर स्वयं भोजन करता है (उसे भी पाप लगता है) क्या आप सोच सकते हैं कि जहां छोटे गुलाम बच्चों को पीट पीट कर मार डाला जाता था, जहां उन्हें काम का वेतन भी नहीं मिलता था, बच्चियों पर बलात्कार होते थे और शिकायत करने पर उन्हें मृत्यु मिलती थी, वहां ऐसी उदारता सम्भव है ? नहीं, यह उदारता तो केवल भारत में ही संभव है। ऐसे ही महाभारत में जिस पुण्य के बल पर व्यक्ति बड़े बड़े संकटों को भी पार कर जाता है, उनके वर्णन का एक उदाहरण देखें –

ये क्रोधं सन्नियच्छन्ति क्रुद्धान्संशमयन्ति च।
न च रुष्यन्ति भृत्यानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय – ११०, श्लोक – २१)

जो व्यक्ति अपने क्रोध को नियंत्रित रखता है और दूसरे के क्रोध को भी शांत करता है, जो अपने भृत्यों (दासों एवं सेवकों) पर क्रोधित नहीं होता, वह व्यक्ति बड़े बड़े संकटों को भी पार कर जाता है। यह बात अवश्य है, कि स्वामी एवं दास के मध्य एक सन्तुलित मर्यादा होनी चाहिए। स्वामी के किये दास पर क्रोध करना, उसे पीटना आदि अधर्म है, इस बात का अनुचित लाभ न उठाया जा सके, इसलिए व्यवहार की और भी मर्यादा बताई गई है।

सम्प्रहासश्च भृत्येषु न कर्तव्यो नराधिपैः। लघुत्वं चैव प्राप्नोति आज्ञा चास्य निवर्तते॥
भृत्यानां सम्प्रहासेन पार्थिवः परिभूयते।
अयाच्यानि च याचन्ति अवक्तव्यं ब्रुवन्ति च॥
पूर्वमप्यर्पितैर्लोभैः परितोषं न यान्ति ते। तस्माद्भृत्येषु नृपतिः सम्प्रहासं विवर्जयेत्॥
(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय – २१५, श्लोक – २१-२३)

अपने सेवकों से राजा (सामान्य सन्दर्भ में कोई भी स्वामी) हंसी मजाक न करे। इससे उसका महत्व घटता है और उनकी आज्ञा भी टाली जाने लगती है। जब राजा अपने भृत्यों के साथ हंसी ठिठोली करने लगता है, तब वे लोग अनुचित वस्तुओं की मांग करने लगते हैं, अनुचित वचन बोलने लगते हैं। पहले के लोभ के कारण उन्हें संतोष नहीं होता, इसीलिए राजा अपने दासों से हास परिहास न करे।

हां, इसका अर्थ नहीं है कि हंसी करने मना किया है तो राजा अत्याचार करने लगेगा। उसका भी निषेध है। साथ ही राजा को सदैव अपने राजकोष की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहने की बात नीति कहती है।

धर्महेतोः सुखार्थाय भृत्यानां भरणाय च। आपदर्थञ्च संरक्ष्यः कोषः कोषवता सदा॥
(वाचस्पत्यम् में ग्रंथान्तर)

धर्मपालन के लिए, सुखप्राप्ति के लिए, अपने भृत्यों के भरण पोषण के लिए एवं आपत्तिकाल में काम आने के लिए कोषपति, अपने खजाने की रक्षा करे। हमारे यहां तो दासों के साथ जो नियमभेद हैं सो तो समझ ही रहे हैं, किन्तु विदेश में तो दास थे नहीं, वहां तो स्लेव और गुलाम आदि थे। उन्हें वेतन भी नहीं मिलता था, जबकि दास शब्द की परिभाषा ही उसे वेतन और उसमें समयानुसार वृद्धि का अधिकार देती है। गुलामों साथ ऐसा आदर्श व्यवहार होता नहीं है, किन्तु भारत में दासों के लिए जो नियम मैंने अभी तक बताए, उनका पालन राक्षसों के यहां भी होता था। जहां म्लेच्छ देश में बड़े बड़े लोगों के गुलाम भी अत्यंत दीन हीन अवस्था में रहते थे, वहीं भारत में या सनातन मर्यादा के राक्षसों तक में दास दासियों को पर्याप्त आभूषण आदि दिए जाते थे। एक उदाहरण देखें, जो रावण सीताजी से कह रहा है –

पञ्चदास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः। सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि॥
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग – ४७, श्लोक – ३१)

हे सीते ! यदि तुम मेरी (रावण की) पत्नी बन जाती हो तो सभी प्रकार के आभूषणों से सजी हुई पांच हज़ार दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। विदेशों में गुलामों के साथ जैसी क्रूरता होती थी, उससे कई गुणा अच्छा व्यवहार हमारे यहां के राक्षस अपने दास दासियों से करते थे। यज्ञ में, विवाह में, उत्सव आदि में जब दास दासियों को दान दिया जाता था तो वे सुंदर सुंदर वस्त्र, मणि, आभूषण, सोने चांदी से सुशोभित रहती थीं, उनकी जीवनशैली का स्तर श्रेष्ठ था। बलराम जी के विवाह का, अथवा राजाओं के यज्ञादि के कुछ उदाहरण देखें –

विचित्रतरवर्णादिनानाभूषणभूषिताः। दास्यः शतसहस्रञ्च दासाश्च सुमनोरमाः॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड,अध्याय – २९, श्लोक – ०६)
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च। रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनाञ्चापि लक्षकम्॥
(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय – १०६, श्लोक – ०५)

सनातनी व्यवस्था में रहने वाले ऋषि हों, राजा हों, व्यापारी हों, चाण्डाल, राक्षस या वेश्या हों, सभी अपने दासों के साथ पुत्रवत् ही व्यवहार करते थे। शेष का उदाहरण तो दे चुका हूँ, एक वेश्या का उदाहरण भी देखें। मोहिनी नाम की वेश्या ने वृद्धावस्था में अपने

कल्याण के लिए पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित्त करने के उद्देश्य से सोचा कि सब धन सामग्री आदि ब्राह्मणों को दान करके वन में जाकर तपस्या करूँ।

श्रोत्रियेभ्यो ददाम्येतज्ज्ञाननेनेति व्यचिन्तयत्।
विचिन्त्येति समाहूता मोहिन्या नगरद्विजाः॥
नागतास्ते महीपाल ज्ञात्वा घोरं प्रतिग्रहम्।
यदा तदा द्विभागं च चक्रे तत्तु धनं स्वकम्॥
एको भागस्तु दासीनां दत्तोन्यश्च विदेशिनाम्।
स्वयं तु निर्धना राजन्नभवत्सा तु मोहिनी॥
तथा समागतं मृत्युं विज्ञायान्तिकमन्तिके।
मुक्त्वा दास्यो धनं नीत्वा यथेष्टगतयोऽभवत्॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय – २२०, श्लोक – ३१-३४)

मैं वेदज्ञानसम्पन्न ब्राह्मणों को धन का दान कर दूंगी, ऐसा विवेकपूर्ण निर्णय लेकर मोहिनी ने नगर के ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया। किन्तु, वेश्या के धन का दान लेने से घोर प्रतिग्रह दोष लगेगा, यह सोचकर कोई भी ब्राह्मण नहीं आया। तब मोहिनी ने अपने धन के दो विभाजन किये, जिसमें एक भाग अपनी दासियों को दे दिया, और दूसरा भाग अन्य विदेशियों को दे दिया। (ब्राह्मण मना कर चुके, क्षत्रिय दान लेते नहीं, वैश्यों को आवश्यकता नहीं, सो सारा धन दासियों को और विदेशियों को दे दिया) इस प्रकार से वह मोहिनी बिल्कुल ही निर्धन हो गयी। अपनी मृत्यु को निकट जानकर, अंतकाल में उसने अपनी दासियों को सेवामुक्त कर दिया, वे दासियाँ भी धन लेकर इच्छानुसार चली गईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि "दास" शब्द संस्कृत का है, भारतीय समाज में, सनातनी शास्त्रों में इसका वर्णन मिलता है। इसका पर्याय भृत्य, सेवक, किंकर आदि शब्दों से भी प्राप्त होता है। इस शब्द की क्या परिभाषा है, दास और स्वामी का क्या सम्बन्ध होना चाहिए, क्या मर्यादा है, इनका उल्लेख भी सनातनी शास्त्रों में ही प्राप्त हो सकता है, अन्यत्र नहीं। फिर विदेशियों के स्लेवरी या गुलामी की तुलना या उसका अनुवाद हम भारत में दासप्रथा शब्द से कैसे कर सकते हैं ? वह क्रूरता, वह अमानवीय अत्याचार तो हमारे देश की संस्कृति का अंश ही नहीं है। हम तो यह सोच भी नहीं सकते कि केवल काम से लौटते समय देरी होने मात्र से हम किसी गर्भवती स्त्री को पीट पीट कर मार दें ! इसीलिए हमारे यहां स्लेवरी या गुलामी के पर्याय के रूप में कोई शब्द ही नहीं बना।

दास, किंकर और भृत्य आदि शब्द की परिभाषा एवं व्यवहार नियमावली देखने से यह भेद स्पष्ट होता है। जिन लोगों ने ऐसी क्रूरता की, और जो आज भी कई प्रारूपों में इसे कर रहे हैं, उन देशों में उद्भूत एवं समर्थित, लाल झंडे, हरे झंडे एवं क्रॉस वाले लोग हमारे देश में आकर स्वयं के किये गए अत्याचारों के आरोप हमपर लगाएं, हमारे ही लोगों को हमारे विरुद्ध भड़काएं तो हम कब तक चुप रह सकते हैं ? हां, यह सत्य है कि मुगलों और अंग्रेजों के कार्यकाल में कुछ उच्चस्तरीय लोगों ने भेदभावपूर्ण अत्याचार किया है, किन्तु यह उनकी निजी दुष्टता थी, जिसका समर्थन शास्त्र या शिष्ट समाज नहीं करता है। यही कारण है कि सनातनी शास्त्रों में अथवा अंग्रेजों के ही लिखे गये विकृत इतिहास में भी आपको यह उद्धरण कहीं नहीं मिलेगा कि किसी राजा या ब्राह्मण ने किसी शूद्र की गर्भवती स्त्री को पीट पीट कर मार डाला। व्यक्तिगत रूप से पापी एवं धर्मात्मा लोग तो अब सभी वर्णों में हो गए हैं, किन्तु शास्त्रीय निर्देशों के अनुसार चलने वाला ही वास्तव में भारत के सत्य को प्रकाशित करता है, जिसमें दास तो हैं, किन्तु गुलाम या स्लेव नहीं। यह सब सामान्य काल के शास्त्रीय नियम हैं, फिर रामराज्य की तो बात ही क्या है। शम्बूक के लिये उग्र तपस्या का निषेध तथा दासकर्म का विधान भी इसी मर्यादा के अनुसार समझना चाहिए, जिसका अतिक्रमण करने का उसे दण्ड मिला, साथ ही कृपालु रामजी ने फिर भी उसे दिव्य लोक की प्राप्ति करायी। वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड प्रामाणिक है या नहीं, इसपर मैंने सीतात्याग, धोबी प्रसङ्ग, शम्बूक वध, इन सबको उत्तरकाण्ड से बाहर के मान्य ग्रंथों के विस्तृत प्रमाण बताकर और समझाकर सिद्ध किया कि ये सब कल्पना या प्रक्षिप्त नहीं है। कथा तो सही है, साथ ही वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड, सर्ग तीन की विषयसूची से सीताजी के त्याग का संकेत भी दे दिया। कालिदास के रघुवंशम्, भवभूति के उत्तररामचरितम् आदि की तो मैंने चर्चा की ही नहीं। लेख बहुत लंबा न हो जाये, इसीलिए सीधे लक्ष्यवेध वाले प्रमाण ही दिए। हालांकि श्रीकरपात्री स्वामी जी उत्तरकाण्ड वाली कुतर्कबुद्धि का रामायण मीमांसा में खंडन कर ही चुके हैं, फिर भी मै अतिरिक्त प्रमाण के रूप में कहता हूँ कि बृहद्धर्म्मोपपुराण के पूर्वखण्ड में वर्णित ब्रह्म-वाल्मीकि संवाद के अंतर्गत अष्टादशतत्वरूप महामंत्रात्मक रामायण कवच के अंत में ब्रह्माजी कहते हैं "रामायणं कुरु सप्तकाण्डम्", अर्थात् हे वाल्मीकि ! अब तुम सात कांड वाली रामायण रचना में तत्पर हो जाओ। स्वयं वाल्मीकि जी की भी लेखनी के अनुसार वाल्मीकिरामायण का २४००० श्लोकों ,५०० सर्ग और उत्तरकाण्ड सहित ६ और काण्ड में रचना का बालकाण्ड में स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग – ०४, श्लो - ०२)

बृहद्धर्म्मोपपुराण के रामायण कीर्तन प्रसङ्ग में दुर्गादेवी अपनी सखियों को बताती हैं कि किस अवसर पर रामायण के किस कांड का पाठ करना चाहिए। उसमें सभी कांडों की महत्ता बताने के बाद उत्तरकाण्ड के विषय में निम्न श्लोक है :-

यः पठेत् शृणुयाद्वापि काण्डमभ्युदयोत्तरम्।
आनन्दकार्ये यात्रायां स जयी परतोऽत्र च॥

अर्थात्, जो व्यक्ति आनन्दजनक कार्य अथवा यात्राकाल में उत्तरकांड का पाठ करता है या श्रवण करता है, वह इस लोक एवं परलोक में जय प्राप्त करता है। स्वयं आदिकवि वाल्मीकि जी श्रीकृष्णद्वैपायनवेदव्यास जी को महाभारत लिखने हेतु काव्यबीजशास्त्र का उपदेश करने के समय बताते हैं :-

पञ्चविंशतिसाहस्री संहिता सप्तकाण्डिका। सर्गैः प्रबन्धबहुला सरस्वत्या अनुग्रहात्॥

अर्थात्, मैंने सरस्वती की कृपा से पच्चीस हजार श्लोकों में रामायण संहिता की रचना की है जिसमें कई सर्ग और सात काण्ड हैं। यहाँ यह शंका नहीं होनी चाहिए कि यहां पच्चीस हजार श्लोक क्यों कहा ? वर्तमान में हम जो वाल्मीकीय रामायण देख रहे हैं, वह लगभग पच्चीस हज़ार पांच सौ श्लोकों का ही मिलता है। उसमें जितना लव कुश को पढ़ाया गया था, वह भाग चौबीस हज़ार श्लोकों का है। शेष पांच सौ के लगभग श्लोक वेदव्यासरचित हैं, जिसका प्रमाण आगे दूंगा। बृहद्धर्म्मोपपुराण में रामायण कवच का वर्णन है जिसे प्रत्येक द्विजाति रामायण पाठक को पाठ से पूर्व पढ़ना चाहिए, ऐसा निर्देश है। इस प्रकार से कथाओं की निरंतर मिलने वाली प्रासंगिकता, उनके समर्थन में अन्य ग्रंथों के स्पष्ट वाक्य, प्रस्तुत श्लोकों से वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड सर्वथा वास्तविक, प्रामाणिक एवं निर्दोष है।

। इति शम्।

द्वितीय भाग

श्रीराम जी को जानने के लिए श्रद्धा एवं विश्वास चाहिए, उसके बिना यह सम्भव नहीं है।

याभ्यां विना न पश्यन्ति, सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम्।

किन्तु कुछ लोग, जो स्वयं को बहुत अधिक विचारशील समझते हैं, वे इसमें अनावश्यक तर्क लगाते हैं, जबकि राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। साथ ही वह तर्क भी जिन शास्त्रीय प्रमाणों से खंडित होता है, उसे ये लोग मानते भी नहीं हैं।

पिछले लेख में विषय यही था कि श्रीरामभद्राचार्य जी कह रहे थे कि सीतात्याग नहीं हुआ, शम्बूक वध नहीं हुआ, धोबी प्रसङ्ग गलत है, वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, आदि आदि। अस्तु, हमने उपर्युक्त समस्त प्रसङ्गों को पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, गर्ग संहिता, नारद पुराण, श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्दपुराण, बृहद्धर्म पुराण आदि अनेक ग्रंथों से प्रमाणित करते हुए सही भी सिद्ध किया एवं निर्दोष भी। साथ ही अंत में उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता भी सिद्ध की।

किन्तु चित्रकूट वाले बाबाजी के पक्षधरों के कुतर्क की हद तब हो गयी, जब इतने इतने मान्य ग्रन्थों के पर्याप्त प्रमाण देने के बाद भी ये हठधर्मिता वाले लोग इन सभी ग्रंथों को ही मिलावटी और प्रक्षिप्त बताने लगे। और तो और, जब हमने बालकाण्ड से प्रमाण दिया तो बालकाण्ड को भी गलत कहने लगे, ताकि मेरा लेख गलत सिद्ध हो। सैकड़ों ग्रंथ-प्रमाणों को प्रक्षिप्त कहना पड़ेगा तो कहेंगे, लेकिन श्रीभागवतानंद गुरु की हार होनी चाहिए। ये वही बात हुई कि अपना पति मरे तो मरे, सौतन विधवा होनी चाहिए। मतलब ये मान बैठे हैं कि ये जो जानते हैं वही और उतना ही सही है, बाकी सारे ग्रंथ यदि उनके विरोध में हैं, तो वे ग्रंथ ही गलत हैं, ये नहीं। विडम्बना है कि ऐसे लोग अपने ग्रंथों को गलत भी कहते हैं और स्वयं को प्रबुद्ध सनातनी विद्वान् भी।

मेरा लेख तीन दिन के अंदर करीब दस हज़ार लोगों तक गया, जिनमें अनेकों मान्य मंदिर एवं मठों के अधिपति भी थे, श्रेष्ठ कथावाचक और विद्वान् भी थे किंतु अधिकांश ने मेरा खुला समर्थन नहीं किया, केवल यह कह कर, कि बात तो आपकी सही है, किन्तु श्रीरामभद्राचार्य का नाम सीधे लेकर आपने धर्मसंकट में डाल दिया इसीलिए हम इस विषय में मौन रहेंगे। हमें समझ में नहीं आता कि जब रामभद्राचार्य जी सार्वजनिक मंचों

से शास्त्रीय प्रमाणों का उपहास सा करते हुए जब उन्हें प्रक्षिप्त बताते हैं तो हम खुले होकर, उनका नाम लेकर क्यों उनका खण्डन न करें ? हमने कोई अपशब्द तो नहीं कहा, बस उनके द्वारा दिये गए गलत वक्तव्य को गलत कहा। साथ ही, वे क्यों गलत हैं, इसका पूरा पूरा प्रमाण परम्परागत शास्त्रों के एक एक प्रासङ्गिक श्लोक को समझाकर कहा।

एक व्यक्ति ने यह भी कहा कि आपके लेख को तो हम खण्डन के योग्य भी नहीं मानते, यह इतना स्तरहीन है। बन्धु हमने कौन सा अपने घर से जोड़कर लिखा था ? जितने ग्रंथ से प्रमाण लिखे, सब समाज में हज़ारों वर्षों से हैं, मान्य हैं। विरोध करने के लिए उनको गलत सिद्ध करना पड़ता, सो कह दिया कि स्तरहीन है, खण्डन नहीं करेंगे। खाने को अन्न नहीं, तो कह दिया आज एकादशी है। रामभद्राचार्य जी से मेरा कोई व्यक्तिगत खेत-मकान का विवाद तो है नहीं। कोई मठ-मन्दिर, शिष्य-सम्पत्ति का झगड़ा भी नहीं है जो मैं उनसे शत्रुता करूँगा। मेरा विषय केवल शास्त्ररक्षा है और उसके लिए मुझे किसी की अनुमति नहीं चाहिए।

बीच में किन्हीं सज्जन का लेख भी मिला जो कह रहे थे कि Frederika Richardson ने इतना ही लिखा, Ralph T.H. Griffith ने ये टिप्पणी की, अमुक अंग्रेज ने 6 कांड तक का अनुवाद किया, उसके पास उत्तरकाण्ड होता तो क्यों नहीं करता ? अमुक जर्मन ने ऐसा किया, अमुक अभिनव कवि ने केवल यही प्रसङ्ग तक लिखा, अमुक कम्ब रामायण में ये कथा है, रंगनाथ रामायण में ये नहीं है, आदि आदि।

ये लोग दोनों बातें कहते हैं,
१) अंग्रेजों ने आकर मिलावट कर दी, ग्रंथ में प्रक्षिप्त अंश डलवा दिए, इसीलिए हम ग्रंथों की अमुक अमुक बात नहीं मानेंगे, अंग्रेजों के षड्यंत्र का सामना करेंगे।
२) अमुक अंग्रेज ने अमुक ईस्वी में यही तक अनुवाद किया, यहीं तक लिखा इसीलिए हम उसे ही प्रामाणिक मानेंगे, तुम्हारी बात को नहीं।

बड़ी विचित्रता है बन्धु। अंग्रेजों की कौन सी बात मानें ? उन्हें मिलावटकर्ता मानें या फिर उन्हें प्रामाणिक मानें ? ये कल के म्लेच्छ, जिन्हें आज भी ढंग से स्नान, भोजन और शौचाचार का ज्ञान नहीं, इनसे हम वेदस्वरूप रामायण की प्रामाणिकता मांगेंगे ? रही बात अभिनव रामायणों के काल की, तो उसपर आगे चर्चा करेंगे ही। आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व गोविन्दराज जी की टीका, जो वाल्मीकीय रामायण के सातों कांडों पर है, वह तो अंग्रेजों से बहुत पहले की है। अब कहेंगे कि १९३० से पहले उत्तरकाण्ड नहीं छपा था।

भाई, ये बात भिन्न है। पहले सब हस्तलिखित होता था। आवश्यक नहीं है, कि सबके पास सब कांड होते थे। जैसे जैसे प्रेस का आविष्कार हुआ, लोगों के पास यंत्र आये, और जैसे जैसे प्राचीन पांडुलिपियाँ मिलती गयीं, उन्हें प्रकाशित करवाते गए। उदाहरण के लिए पहले चौखम्बा वालों ने शिवपुराण की बारह में से केवल सात संहिताएं ही छापी थीं, शेष का पाठ नहीं मिला था। अब बङ्ग प्रतियां मिली हैं तो अब दस संहिता तक छापी है। ऐसे ही कितने कितने ग्रंथों के पांडुलिपि आज भी अप्रकाशित पड़े हैं, जैसे जैसे मिलते गए, छापते गए।

फिर ये लोग यह भी कहते हैं कि गोविन्दराज जी ने युद्धकाण्ड (लंकाकाण्ड) के अंत में अपना परिचय दे दिया है तो इसीलिए भी ग्रंथ वहीं पूर्ण हुआ। यह सब मात्र कुतर्कपूर्ण बातें हैं। कैसे ? अपनी बात को पुष्ट करने के लिये एक उपाय बताता हूँ। गोविन्दराज जी की टीका बालकाण्ड पर तो आप मानते हैं न ! आपको संदेह तो उत्तरकाण्ड की टीका पर है, कि बाद में छपी सो शायद किसी ने बाद में लिख दिया होगा। किंतु बालकाण्ड तो सबसे पहले छपा, उसको तो सही मानेंगे ? तो मैं बालकाण्ड से ही प्रमाण देता हूँ।

वही दोनों श्लोक, जिनमें सीतात्याग का संकेत और उत्तरकाण्ड का भी संकेत है। ये प्रमाण पहले भी भाग ०१ में दिया है, किन्तु वहां धूर्तों ने कहा कि इसे भी बाद में किसी ने बालकाण्ड में जोड़ दिया। मतलब कि सर्वत्र जहां, इनकी बात का विरोध मिले, सब बाद में किसी ने जोड़ दिया। इसीलिए यहां गोविन्दराज जी की चौदह सौ वर्ष प्राचीन टीका के साथ पुनः ये श्लोक दे रहा हूँ। मैं जिस प्रति का प्रयोग कर रहा हूँ, वह कुंभकोणम् के माधव विलास बुकडिपो के द्वारा निर्णय सागर प्रेस, कलकत्ता से एक सौ नौ वर्ष पूर्व, १९११ ई० में प्रकाशित हुई थी।

रामाभिषेकाभ्युदयम् सर्वसैन्यविसर्जनम्। स्वराष्ट्ररंजनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग – ०३, श्लोक - ३८)

यह श्लोक वाल्मीकि जी के द्वारा रामायण लेखन के अंतर्गत दिये गए विषयों की सूची का है, जिसका अर्थ है, रामजी का राज्याभिषेक वर्णित है, फिर सेनाओं को यथास्थान भेज दिया, प्रजा के हित को ध्यान में रखकर राज्य करने लगे और फिर सीता का परित्याग किया, ऐसा वर्णन है। इस श्लोक की टीका में गोविन्दराज जी लिखते हैं -

सीताभूप्रवेशप्रभृत्युत्तरकाण्डकथामाह - अनागतं चेति। वाल्मीकिनामाभगवान् ऋषिः

रामस्य वसुधातले। अनागतं भावियत्किंचिच्चरितमस्तिब्राह्मणपुत्रजीवनाश्वमेधादिकं तदुत्तरे उत्तरकाण्डे।

इसका अर्थ क्या हुआ ? इसके बाद सीता का भूमि प्रवेशादि उत्तरकाण्ड की कथा लिखेंगे, जो अभी घटित नहीं हुई है। भगवान् वाल्मीकि नामक ऋषि, राम जी के धरती पर रहते हुए, जो कार्य अब तक नहीं किया हैं, उसका वर्णन करेंगे क्योंकि वे भविष्य की बातें जानते हैं। उन बातों में ब्राह्मणपुत्र को जीवनदान, अश्वमेध यज्ञ आदि का प्रसङ्ग भी है।

यहां ध्यान दें कि सीतात्याग के कारण ही सीता का भूमिप्रवेश सम्भव था। अश्वमेध के यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा साथ में बैठाने का वर्णन पिछले लेख में सप्रमाण कर चुका हूँ, जो सीताजी की भौतिक अनुपस्थिति से ही सम्भव था। ब्राह्मणपुत्र को जीवनदान देने के प्रसङ्ग में ही शम्बूक वध छिपा हुआ है। उसका भी पूरा विवेचन और उसकी निष्पक्षता का वर्णन पिछले भाग में कर चुका हूँ। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि मेरा प्रस्तुत किया गया वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड का वह श्लोक जो सीतात्याग का संकेत करता है, प्रक्षिप्त नहीं है। अब उत्तरकाण्ड की बात करते हैं।

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग – ०४, श्लोक - ०२)

इस श्लोक का अर्थ है, ऋषि (वाल्मीकि) ने चौबीस हज़ार श्लोकों को कहा, जिसमें पांच सौ सर्ग (अध्याय) और उत्तरकाण्ड के सहित छः काण्ड और हैं। इस श्लोक के भाष्य में गोविन्दराज जी सबसे पहले तो यही लिखते हैं -प्रक्षेपभ्रंशसम्भावनापरिहाराय इस श्लोक के भाष्य का उद्देश्य है कि लोगों के मन में जो प्रक्षिप्त होने का भ्रम व्याप्त हो जाता है, उसका निराकरण हो। फिर आगे लिखते हैं -षट्काण्डानि उत्तरम् च षड्भ्यः उत्तरं सप्तमकाण्डं च कृतवान्। अर्थात्, छः कांडों के बाद उत्तर काण्ड को लिखा, अथवा, छः कांडों के बाद भी लिखा, यानी आगे के काण्ड को लिखा, इसप्रकार कुल सात कांडों की रचना की। इतना ही नहीं, गोविन्दराज जी ने इस श्लोक पर बहुत लंबा भाष्य किया है, जिसमें एक एक काण्ड की सर्ग संख्या और श्लोक संख्या बताई है। सबका वर्णन यहां नहीं कर रहा हूँ, चूंकि विवाद केवल उत्तरकाण्ड पर है, तो केवल उसका ही वर्णन कर रहा हूँ -

दशोत्तरशतं सर्गा उत्तरेकाण्ड ईरिताः। अर्थात्, उत्तरकाण्ड में एक सौ दस सर्ग (अध्याय) बताए गए हैं।

हालांकि प्रचलित प्रतियों में एक सौ ग्यारह अध्याय हैं, उत्तरकाण्ड में। तो यहां एक अध्याय बढ़ कैसे गया ? इसका उत्तर भी मैं आगे दूंगा, धैर्य से पढ़ते रहें, स्मरण रखकर समझते रहें। अब उत्तरकाण्ड की श्लोक संख्या बताते हुए गोविन्दराज जी लिखते हैं, श्लोकाः स्युरुत्तरेकाण्डेबलरागाः प्रभाषिताः *(३२३४)* उत्तरकाण्ड में ३२३४ श्लोक वर्णित हैं। यदि गोविन्दराज जी के युद्धकाण्ड के बाद अपना परिचय देने मात्र से ग्रंथ की पूर्णता सिद्ध होती तो उन्होंने बालकाण्ड के श्लोकों पर ऐसे भाष्य क्यों लिखे ? हालांकि वर्तमान प्रतियों में उत्तरकाण्ड के श्लोकों का निम्न मान मिलता है, श्रीमदुत्तरकाण्डेत्रिसहस्राणिद्विशतंसप्तसपत्तिश्चग्रन्थाः *(३२७७)* फिर ये कुछ श्लोक बढ़े कैसे ? अब निर्णयसागर प्रेस वाले कोई धर्माधिकारी तो थे नहीं, उन्होंने नीचे अलग से टिप्पणी में लिख दिया (जो गोविन्दराज भाष्य का मूल अंश नहीं है) कि जितने श्लोक बढ़े, वो प्रक्षिप्त होंगे, वाल्मीकि प्रणीत नहीं। किन्तु ऐसी बात भी नहीं है। मैं गोविन्दराज जी की गणना को बिना काटे हुए शास्त्र प्रमाणों से ही बढ़े हुए श्लोकों को प्रामाणिक सिद्ध करूँगा, बस धैर्य से पढ़ते रहें।

एक कुतर्क और देते हैं लोग कि वाल्मीकि रामायण को सुनने पढ़ने की फलश्रुति लंकाकाण्ड में ही दी हुई है। इसीलिए ग्रंथ वहीं पूर्ण हो गया। ऐसे में तो वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के पहले अध्याय के अंतिम श्लोक में ही फलश्रुति दे दी गयी है तो क्या हम वहीं ग्रंथ पूर्ण मान लें ? शास्त्रों में, इतिहास पुराणों में, तंत्रों में भी केवल ग्रंथ की पूर्णता पर ही फलश्रुति नहीं होती, अध्याय, पर्व, उपाख्यान, व्रतकथा, स्तुति आदि किसी भी महत्वपूर्ण अंश की पूर्ति पर फलश्रुति मिल जाएगी। आप श्रीमद्भागवत, शिवपुराण, पद्मपुराण कोई भी मान्य ग्रंथ आदि देख सकते हैं। फलश्रुति तो वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के अंतिम अध्याय में भी है और पूरे रामायण की ही है। उस अध्याय के निम्न तीन प्रमाण देखें एवं विचार करें -

एतावदेतदाख्यानं सोत्तरं ब्रह्मपूजितम्।
रामायणमिति ख्यातं मुख्यं वाल्मीकिना कृतम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग – १११, श्लोक - ०१)

यहां तक का ब्रह्मपूजित उपाख्यान उत्तरकाण्ड के साथ रामायण के नाम से विख्यात है, जो वाल्मीकि जी के द्वारा रचा गया है। यहां "मुख्य" शब्द है। इसका तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि के लिखे आर्ष, आनन्द, अद्भुत एवं योगवाशिष्ठ रामायणों में यह आर्ष रामायण ही वाल्मीकि रामायण के रूप में प्रसिद्ध है, इसीलिए इसे मुख्य कहा।

(स्मरण रहे, बालकाण्ड में ही वाल्मीकि जी ने बालकाण्ड में ही "तथोत्तरम्" कहकर इसका वर्णन किया, तथा,

रामाभिषेकाभ्युदयम् सर्वसैन्यविसर्जनम्। स्वराष्ट्ररंजनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम्॥

इस श्लोक के माध्यम से उत्तरकाण्ड में वर्णित कथाओं का संकेत किया और अब सबसे अंतिम अध्याय का पहला श्लोक उन्हीं वाक्यों की समापन-पूर्णता कर रहा है।)

आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्॥

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग – १११, श्लोक - १५)

यह आर्ष आदिकाव्य पूर्वकाल में वाल्मीकि के द्वारा लिखा गया था।

गायत्र्याश्च स्वरूपं तद्रामायणमनुत्तमम्॥

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग – १११, श्लोक - १५)

यह अति उत्तम रामायण गायत्री का ही स्वरूप है।

विद्वानों ने चौबीस श्लोकों की गायत्री रामायण का भी वर्णन किया है, जो उत्तरकाण्ड सहित वाल्मीकि रामायण के निश्चित संख्याओं के अंतराल वाले श्लोकों के संग्रह से युक्त है, जिसमें प्रत्येक श्लोक का पहला अक्षर, त्रिपदा गायत्री मंत्र का क्रमानुसार वर्ण है। लेख बड़ा न हो जाये, साथ ही अनधिकृत के समक्ष गायत्री का प्रकाशन न हो, इसीलिए उसका वर्णन यहां नहीं कर रहा हूँ।

अब रहा प्रश्न इस बात का, कि यदि उत्तरकाण्ड के अंतिम अध्याय में फलश्रुति देनी ही थी तो फिर युद्धकाण्ड के अंत में क्यों लिखा ? समाधान यह है, जैसा मैंने बताया कि फलश्रुति ग्रंथ के अंत में ही नहीं, किसी प्रसङ्ग, स्तुति या अंश की समाप्ति पर भी होती है, ऐसे अनेकानेक प्रमाणों से ग्रंथ भरे पड़े हैं, किन्तु युद्धकाण्ड के अंत में फलश्रुति देने का एक विशेष कारण है। रामायण की कथा वाल्मीकि जी उसी समय लिख रहे थे जब श्रीराम जी समकालिक एवं समानांतर रूप से लीलालीन थे। राम जी की लीलाएं एवं वाल्मीकि जी का लेखन साथ ही अलग अलग स्थान पर चल रहा था। वाल्मीकि जी ने इसे दो भागों

में बांटा, आगत एवं अनागत। जो घटनाएं घटित हो चुकी थीं, वे आगत श्रेणी में हुईं, तथा जो घटनाएं भविष्य में घटित होने वाली थीं, वे अनागत हुईं। ब्रह्मदेव के आशीर्वाद से वाल्मीकि जी भविष्य की घटनाओं को भी प्रत्यक्ष के समान जानते थे, इसीलिए उन्होंने उनका संकेत बालकाण्ड में किया और लेखन उत्तरकाण्ड में किया। युद्धकाण्ड के समय तक की घटना जब घटित हुई तब वाल्मीकि जी की लेखनी इसी प्रसङ्ग तक पहुंची थी, इसीलिए उन्होंने वहां फलश्रुति लिखी और अनागत घटना का वर्णन आगे प्रारम्भ किया। गोविन्दराज जी के भाष्य में "अनागतं च" शब्द से मेरे इस समाधान की पुष्टि होती है।

अब हम आते हैं, इस बात पर कि गोविन्दराज जी के बताए गए सर्गमान एवं श्लोकमान की संख्या में आज कुछ वृद्धि क्यों दिखती है ? इसका समाधान यह है कि गोविन्दराज जी ने केवल वही श्लोक और अध्याय जोड़े, जो वाल्मीकि जी ने लिखे। वेदव्यास जी के रचित सर्ग एवं श्लोकों को नहीं जोड़ा। अब आप कहेंगे कि ये कौन सा नया प्रपञ्च है ? प्रपञ्च नहीं है। वस्तुतः वाल्मीकि जी के पास वेदव्यास जी का जाना, उनसे सात कांडों वाली रामायण का वर्णन और काव्यशास्त्र प्राप्त करने का वर्णन मैं बृहद्धर्म पुराण के संदर्भ के साथ लेख के पूर्वभाग में कर चुका हूँ। उसी क्रम में आनन्द रामायण का वचन है कि वेदव्यास जी ने वाल्मीकि रामायण का पहले और अंतिम के अध्यायों का लेखन किया है। इसीलिए गोविन्दराज जी ने उत्तरकाण्ड के ११० सर्ग बताए किन्तु हमें मिलते हैं, १११ सर्ग। वह इसीलिए कि गोविन्दराज जी ने केवल वाल्मीकि रचित सर्ग जोड़े और समाज को वेदव्यास रचित मंगलाचरण और फलश्रुति वाला प्रथम एवं अंतिम अध्याय भी मिला। इसका प्रमाण ऐसे देता हूँ -

नारदाद्वेदवाक्यैश्च यथा वाल्मीकिना श्रुतम्। तावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा॥
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम्। शतकोटिमितायां स्वकवितायां मनोरमम्॥
(आनन्द रामायण, मनोहरकाण्ड, सर्ग - ०१, श्लोक - ४-६)

नारद जी के वेदसम्मत वाक्यों को (वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के अनुसार) वाल्मीकि जी ने जैसा सुना, उसी के आधार पर अर्थ करते हुए, वाल्मीकि जी ने अपनी मनोरम कविता के माध्यम से रामचरित के पापनाशक सौ श्लोकों को, सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत कर दिया।

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम्। रामायणं महाकाव्यं जगृहुर्मुनयश्च ते॥
(आनन्द रामायण, यात्राकाण्ड, सर्ग ०२, श्लोक - ०१)

उस विशाल रामायण को सुनने के लिए अनेक देवता, ऋषि आदि आये। उनमें मैं इस भाग को लूंगा, इस भाग को लूंगा, ऐसा विवाद देखकर शिवजी ने हस्तक्षेप किया और सभी लोकों एवं पृथ्वी पर सभी मानवीय एवं दिव्य द्वीपों में बांट दिया। उसमें दो विभाजन अद्भुत रहे।

१) नारद जी को चार श्लोक मिले, जिन्हें उन्होंने चतुःश्लोकी भागवत के रूप में वेदव्यास जी को दिया और वेदव्यास जी उसके आधार पर बाद में श्रीमद्भागवत की रचना की।
२) एक अक्षर "श्री" बच गया तो शिव जी ने उसे सार्वजनिक कर दिया और कहा कि ये शब्द किसी भी देवता, पूज्य या मन्त्र के साथ लगाया जा सकता है।
अस्तु, आगे क्या हुआ ?

रामायणान्यनेकानि पृथगग्रे मुनीश्वराः। भागाद्भारतखण्डान्तर्गतात्कुम्भोद्भवादयः॥
करिष्यन्त्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वती।
वाल्मीकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः।
सारकाण्डं पुरा देवि यदुक्तं च मया तव।
वाल्मीकीयाच्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया॥
(आनन्द रामायण, यात्राकाण्ड, सर्ग - ०२, श्लोक - ६९-७१)

ऋषियों ने उस महान् रामायण के विभिन्न भागों को ग्रहण कर लिया। उस विभाजन में जो भाग भारतवर्ष के अंतर्गत आया, उसको आधार बनाकर अगस्त्य आदि ने अपने अपने रामायण की रचना की। (शिव जी कहते हैं,) हे पार्वती ! इतना ही नहीं, उस कथा के आधार पर सैकड़ों ऋषियों ने अपने अपने शब्दों में रामकथा का वर्णन किया। चूंकि ये सभी वाल्मीकि जी के रामायण से ही निकले हैं, इसीलिए बुद्धिमान् व्यक्तियों को इन्हें वाल्मीकि रामायण से अलग नहीं समझना चाहिए। मैंने (इस आनन्द रामायण के प्रारम्भ में) जो सारकाण्ड तुम्हें सुनाया है, वह वाल्मीकि रामायण के सार के रूप में ही ग्रहण करके बताया है। अब आगे क्या हुआ, यह देखें। इसी में आपको यह प्रमाण मिलेगा कि कैसे वेदव्यास जी आरम्भ और अंतिम के श्लोक लिखे -

ततो रामायणं व्यासो विध्वस्तं मुनिभिः पुनः।
कृत्वैकत्र शेषभूतं सप्तकाण्डमितं शुभम्॥
चतुर्विंशति साहस्रं रक्षिष्यति मुनिस्तदा।

आदावन्ते ततत्तस्य श्लोकास्तत्र कियन्ति हि ॥
चतुर्विंशति साहस्रं व्यासस्य रचिता अपि। भविष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥
(आनन्द रामायण, यात्राकाण्ड, सर्ग - ०२, श्लोक – ६६-६८)

अब चूंकि मुनियों ने रामायण को खण्डित करके आपस में बांट लिया था तो उसका सबसे पहले लिखा हुआ मूलभाग मिश्रित हो गया। कुछ कथाभाग एक ऋषि के पास चला गया तो कुछ दूसरे के पास। शिव जी कहते हैं कि हे देवि ! आगे वेदव्यास जी सात कांडों एवं चौबीस हज़ार श्लोकों वाले मूलभाग की रक्षा करेंगे। इसीलिए प्रारम्भ और अंत में उनके भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे। (वाल्मीकि के रचित) चौबीस हज़ार श्लोकों के अतिरिक्त भी मंगलाचरण आदि में वेदव्यास जी के रचित कुछ श्लोक दिखेंगे। यही कारण है कि गोविन्दराज जी की वाल्मिकीय गणना के में ११० अध्याय का उत्तरकाण्ड है, और उसमें उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार वेदव्यास जी के द्वारा रचित फलश्रुति का अंतिम सर्ग जोड़ दिया जाए, तो वर्तमान उत्तरकाण्ड के १११ सर्ग पूरे मिल जाते हैं। कोई भी सर्ग या प्रसङ्ग, या काण्ड प्रक्षिप्तांश नहीं है।

लेख के पूर्वभाग में उत्तरकाण्ड के समर्थन में और भी कई प्रमाण हमने दिए हैं, उनका भी चिंतन आवश्यक है। अब सीतात्याग के विषय पर आते हैं, यहां हम केवल सीतात्याग की बात करेंगे, साथ ही लवकुश का जन्म अयोध्या के राजमहल में नहीं हुआ, अपितु वन में वाल्मीकि जी के आश्रम में हुआ, ऐसा प्रमाण भी बीच बीच में मिलेगा, श्रद्धालु पाठक ध्यान रखेंगे। रजक (धोबी) के प्रसङ्ग पर पुनः विस्तृत चर्चा नहीं करूंगा, क्योंकि पूर्वभाग में उसके पिछले अगले जन्म तक का विवरण, कारण सब बता चुका हूँ। गर्भकाल में सीताजी ने वनविहार और ऋषिपत्नियों से पुनः मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। उस बात पर श्रीराम जी कहते हैं -

धन्यासि जानकी प्रातर्गमिष्यसि तपोधना।
प्रेक्ष्यतास्तु कृतार्था त्वमागमिष्यसि मेंऽतिकम् ॥
इति रामवचः श्रुत्वा परमां प्रीतिमाप सा। प्रातर्मम भवत्यद्धा तापसीनां समीक्षणम् ॥
अथ तन्निशि रामेण चाराः कीर्तिं निजां श्रुताम्।
प्रेक्षितुं प्रेषितास्ते तु निशीथे ह्यगमनञ्छनैः ॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - ५५, श्लोक - १७-१९)

हे सीते ! तुम धन्य हो। हे तपस्या के तेज से युक्त जानकी ! तुम प्रातः ही जाओगी। वहां ऋषिपत्नियों को देखकर तुम पुनः वापस आ जाना। ऐसा सुनकर सीताजी यह सोचकर, कि कल प्रातः मैं ऋषिपत्नियों को देखूंगी, अत्यन्त प्रसन्न हो गईं। उसी रात्रि को राम जी ने अपने गुप्तचरों को प्रजा के मन में अपने प्रति भावना जानने को भेजा। (इसके बाद किसी कल्प की कथा में रामजी ने स्वयं भी रजक का लांछन सुना और किसी कल्प में गुप्तचरों ने बताया)।

लांछन सुनकर रामजी ने राज्यधर्म बचाने और सीताजी के वनविहार की इच्छा को पूरा करने हेतु एक ही योजना बनाई, और मैं अध्यात्म रामायण एवं आनन्द रामायण के प्रमाणों से (जो पिछले भाग में दिए गए हैं) यह सिद्ध कर चुका हूँ, कि इसकी पूरी सूचना राजा जनक, उनकी पत्नी, महर्षि वाल्मीकि एवं सीताजी को थी, साथ ही राजा जनक से कहकर रामजी ने वाल्मीकि आश्रम में पूरी व्यवस्था करा दी थी। राजा जनक स्वयं वहां पांच वर्ष सीताजी के साथ रहे थे। प्रमाण पुनः समझने के लिए भाग एक का अवलोकन करें। आगे अन्य प्रमाण देखें -

रघुनाथो महाबुद्धिस्त्यजते मां कथं महान्। यो मदर्थे पयोराशिं बद्धवान्वानरैर्युतः॥
स कथं मां महावीरो निष्पापां रजकोक्तितः।
त्यजिष्यति ममैवात्र दैवं तु प्रतिकूलितम्॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - ५९, श्लोक - २३-२४)

(राम जी द्वारा परित्याग होने पर) सीताजी विलाप करने लगीं - महान् बुद्धि वाले श्रीरामजी ने मुझे क्यों छोड़ दिया ? मेरे लिए तो वे समुद्र पर पुल बनाकर वानरों के साथ पहुंच गए थे। केवल एक रजक के कहने से उन्होंने मुझे निष्पाप जानकर भी कैसे छोड़ दिया ? अवश्य ही मेरा भाग्य ही मेरे विरुद्ध हो गया है।

यहां आप उस प्रसङ्ग का स्मरण करें, जहां मैंने लेख के पिछले भाग में सप्रमाण एवं सश्लोक यह बताया था कि कैसे पक्षियों ने सीताजी को बाल्यकाल में यह श्राप दिया रहा कि गर्भावस्था में तुम पतिवियोग भोगोगी। सीताजी उसी श्रापजन्य दुर्भाग्य का संकेत कर रही हैं। अन्य और भी प्रमाण देखें -

तत्रावसद्धि वैदेही पतिव्रतपरायणा। वाल्मीकेः परिचर्यां च कुर्वंती फलभक्षिका।
जपन्ती रामरामेति मनसा वचसा स्वयम्। निनाय दिवसांस्तत्र जानकी पतिदेवता॥

काले सासूत पुत्रौ द्वौ मनोहरवपुर्धरौ। रामचन्द्रप्रतिनिधी ह्यश्विनाविव जानकी॥
तच्छ्रुत्वा तु मुनिर्हृष्टो जानक्याः पुत्रसम्भवम्।
चकार जातकर्मादि संस्कारान्मन्त्रवित्तमः॥
कुशैर्लवैश्च वाल्मीकिर्मुनिः कर्माणि चाचरत्।
तन्नाम्ना पुत्रयोराख्या कुशो लव इति स्फुटा॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ५९, श्लोक – ७१-७५)

वहां (वन में) रहते हुए पतिव्रता जानकी जी फल खाकर एवं वाल्मीकि मुनि की सेवा करते हुए रहने लगीं। मन और वाणी से वे सदैव देवरूपी पति श्रीराम नाम का जप करती रहती थीं और इसी प्रकार कुछ दिन बीते। उचित काल आने पर उन्होंने श्रीरामलला जैसे ही सुंदर रूप वाले दो पुत्रों को जन्म दिया, जो अश्विनीकुमारों के समान भ्रातृत्व रखने वाले थे। सीताजी को पुत्र हुआ है, यह जानकर वाल्मीकि अत्यंत प्रसन्न हुए एवं उन मन्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ ऋषि ने, उन दोनों बालकों के जातकर्म संस्कार सम्पादित किये। उनके संस्कार में मुनि ने कुश एवं लव का प्रयोग किया था इसीलिए उनका नाम भी ऐसा ही रखा। आगे अन्य प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ -

लोकापवादभीत्या च रामः शत्रुनिवारकः। दर्शयन्मानुषं धर्ममन्तर्वत्नीं नृपात्मजाम्॥
वाल्मीकेराश्रमे पुण्ये गंगातीरे महावने। विससर्ज महातेजा गर्भिणीं मुनिसंसदि॥
सा भर्तुः परतंत्रा हि उवास मुनिवेश्मनि। अर्चिता मुनिपत्नीभिर्वाल्मीकमुनि रक्षिता॥
तत्रैवासूत यमलौ नाम्ना कुशलवौ सुतौ। तौ च तत्रैव मुनिना संस्कृतौ च ववर्धतुः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २४४, श्लोक - ३-६)

लोकापवाद की आशंका से शत्रुओं का विनाश करने वाले श्रीराम जी ने मनुष्यों के समान आचरण करते हुए, राजपुत्री सीताजी को त्याग दिया। गंगा जी के किनारे घोर वन में स्थित वाल्मीकि ऋषि के अत्यंत पवित्र आश्रम में उन्होंने गर्भवती सीता जी को पहुंचा दिया। सीताजी वहीं पर वाल्मीकि जी के द्वारा रक्षित एवं मुनिपत्नियों के द्वारा सेवित होकर रहने लगीं। वहीं पर उन्होंने लव और कुश नामक जुड़वा पुत्रों को जन्म दिया, जो मुनि वाल्मीकि के द्वारा संस्कारित होकर बढ़ने लगे। इसके अतिरिक्त सर्वमान्य श्रीमद्भागवत महापुराण से प्रमाण देखें। श्रीमद्भागवत पर श्रीधर स्वामी की, श्री वल्लभाचार्य जी की, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती की, श्री मधुसूदन सरस्वती जी एवं अन्य सैकड़ों विद्वानों की टीकाएँ हैं।

उनमें से किसी ने इस श्लोकों को मिलावटी नहीं कहा, अपितु भाष्य करके इसका समर्थन ही किया है।

कदाचिल्लोकजिज्ञासुः गूढो रात्र्यामलक्षितः।
चरन् वाचोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित्॥
नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रैणो हि बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥
इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम्॥
अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ०९, अध्याय - ११, श्लोक - ८-११)

प्रजा के मन की बात जानने के लिए एक बार वेष बदल कर श्रीराम जी रात्रि में घूम रहे थे। उन्होंने किसी को अपनी पत्नी के प्रति निम्न बातों को कहते सुना - अरी व्यभिचारिणी ! मैं दूसरे के घर में रहकर आने वाली तुझ दुष्टा को स्वीकार नहीं करूंगा। जो नारी के दास हैं, वही भयभीत हों। मैं राम नहीं हूँ कि सीता के समान तुम्हें स्वीकार कर लूं। ऐसा बहुत लोगों के मुख से सुनकर इस समस्या को गंभीर समझकर पति के मन में उत्पन्न भय के कारण सीताजी परित्यक्ता होकर प्रचेता के पुत्र (वाल्मीकि) के आश्रम को चली गईं। वहीं वन में रहते हुए उचित काल में उन्होंने कुश और लव के नाम से विख्यात दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका समस्त संस्कार वाल्मीकि मुनि ने ही किया।

यहां ध्यान देने की बात है कि सीताजी ने यदि घर में पुत्रों को जन्म दिया होता तो वशिष्ठ आदि ने संस्कार कराया होता किन्तु समस्त प्रमाण तो वन में प्रसव के ही समर्थन करते हैं। घर में रहने वाली सीताजी की यज्ञ हेतु स्वर्णमयी प्रतिमा भी न बनती, कुश और लव का संस्कार वशिष्ठ जी कराते, साथ ही कुश और लव को वाल्मीकि जी रामायण भी न पढ़ा पाते, न ही अश्वमेध के अश्व के लिए युद्ध होता।

कुल मिलाकर सीतात्याग को काल्पनिक कहने के लिए आपको पद्मपुराण,, गर्गसंहिता, स्कन्दपुराण, नारदपुराण, श्रीमद्देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड, सबको गलत कहना होगा, जो अपनी

अदूरदर्शिता और अज्ञानबुद्धि का परिचय देने के समान ही होगा। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि इतने सारे रामायणों में इतने कथाभेद, भिन्नता क्यों है ? पूर्वभाग के लेख में ही मैं स्पष्ट कर चुका हूँ कि प्रत्येक कल्प (ब्रह्मा के अनुसार एक दिन, मनुष्यों का अनुसार चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष) में एक बार श्रीराम अवतार होता है, और सदैव घटनाओं का क्रम एकदम समान नहीं होता।

इस बात को ऐसे समझिए। आप PubG या कोई ओपन पोर्टल गेम खेलते हैं ? उसमें बारंबार आपका एवं सहयोगियों के व्यक्तित्व, किरदार वही रहता है, किन्तु घटनाओं के क्रम में भेद हो जाता है। ये ब्रह्माण्ड भगवान् का लीलास्थल है और यहां भी यही खेल चलता है।

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च।
अवतारः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित्क्वचित्॥
कृतोऽस्ति राघवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः।
रामायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि॥
अनेकान्यंतरेणैव कीर्तितानि सविस्तारात्। शतकोटिमिता तेषां सर्वेषां गणना कृता॥
तस्मात्वया न संदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन्।
यन्मया कथितं ते हि तत्तथ्यं विद्धि नान्यथा॥
भागाद्भरतखण्डान्तर्गताद्रामायणात्पुरा। नारदादिपुराणेषु व्यासेनात्र कृतानि हि॥
तेषु मत्कथितं चेदं सम्यग्विस्तारितं द्विज।
तव जातो यथा शिष्य सन्देहोऽत्र कथान्तरात्॥
भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित्। नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः॥
दृष्ट्वा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु पण्डितैः।
त्यक्तव्याः स्वीयसंदेहाः सत्यं ज्ञेयं मयेरितम्॥
(आनन्द रामायण, पूर्णकाण्ड, सर्ग - ०७, श्लोक - २९-३६)

(आचार्य श्रीरामदास कहते हैं) - श्रीराघव जी का अवतार करोड़ों बार हुआ है और बारम्बार प्रत्येक कल्प में होता है। उनमें कहीं कहीं, कुछ कुछ भेद भी है क्योंकि सभी अवतरणों में राम जी ने एक ही प्रकार की लीला नहीं की है और न एक ही प्रकार से रामायणों में वाल्मीकि जी ने लिखा है। (यहां रामायण शब्द में बहुवचन से वाल्मीकिकृत अनेकों

रामायणों का संकेत है) अनेकों रामायणों में विस्तार से उनकी लीलाओं का वर्णन किया गया है। सबों के द्वारा की गई गणना में उनकी गणना सौ करोड़ पाई गई है। इसीलिए हे बुद्धिमान् शिष्य ! मैंने जो विचित्र कथाएं सुनाई हैं, उन्हें तुम सर्वथा सत्य जानो। उनके सन्दर्भ में तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिए।

पहले रामायण विभाजन के अंतर्गत भारतवर्ष को जो रामायण भाग मिला था, उसी का आश्रय लेकर नारद पुराण आदि में भी वेदव्यास आदि के द्वारा वर्णन किया गया है और मैंने भी विस्तार से उनका वर्णन किया है। (इसके बाद का अर्थ ध्यान से पढ़ें) हे शिष्य ! कथाओं में भेद होने से तुम्हारे मन में जो सन्देह हो गया, ऐसा ही सन्देह यदि भविष्य में किसी और व्यक्ति को कभी हो तो उस व्यक्ति को नारद पुराण आदि देखना चाहिए। पंडितों को चाहिए कि मेरे द्वारा कही गए कथाओं को अन्य पुराणों में भी देखकर अपने सन्देह का निवारण करें।

मैं अपने लेखों में विभिन्न पुराणों से प्रमाण देकर इसी शास्त्रीय आदेश का पालन कर रहा हूँ और अपनी हठधर्मिता के कारण उन्हें प्रक्षिप्त बताने वाले लोग शास्त्र की अवहेलना कर रहे हैं। एक शंका हो सकती है कि समाज में आनन्द रामायण के विषय में जनसामान्य अधिक क्यों नहीं जानता है ? इसका उत्तर आनन्द रामायण में ही मिलता है। आनन्द रामायण में रामजी के जीवन के अद्भुत रहस्य छिपे हुए हैं। इसीलिए वह अति दिव्य है। जब वाल्मीकि जी ने आनन्द रामायण को सार्वजनिक किया तो उसके पाठ से सामान्य लोग भी दिव्य तेज से युक्त होने लगे, इससे समाज में अव्यवस्था फैलने लगी एवं श्रीरामजी चिंतित हुए। उन्होंने गुरु वशिष्ठ को बुलाकर इसका कारण पूछा, तो गुरुदेव ने निम्न बात कही -

यदि पृच्छसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम्। शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम्॥
वाल्मीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन। आनन्दरामचरितं नवकाण्डसमन्वितम्॥
(आनन्द रामायण , राज्यकाण्ड, उत्तरार्द्ध, सर्ग - २३, श्लोक - ३९-४०)

हे राम जी ! आप यदि मुझसे पूछते हैं तो मैं बताता हूँ, आप सुनें। इसका एक ही कारण है। आपका पवित्र चरित्र वाल्मीकि जी ने सौ करोड़ श्लोकसंख्या में लिखा है, उसके मध्य में नौ काण्ड वाला यह आनन्दरामायण है, (जिसका ऐसा प्रताप है)। वशिष्ठ जी के द्वारा कारण स्पष्ट किये जाने और रामजी ने उसे सार्वजनिक रूप से दुर्लभ बनाते हुए निम्न विधान बनाया -

सप्तजन्मार्जितं पुण्यं ममार्चनसमुद्भवम्। यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथारुचिः॥
(आनन्द रामायण , राज्यकाण्ड, उत्तरार्द्ध, सर्ग - २३, श्लोक - ६२)

श्रीराम जी ने कहा - जो व्यक्ति सात जन्मों तक निरंतर मेरी आराधना करेगा, उस महान् पुण्य के कारण ही उसे आनन्द रामायण की कथाओं के प्रति रुचि होगी। (यही कारण है कि सामान्य लोग आनन्द रामायण का नाम भी नहीं जानते, और यदि उन्हें बताओ तो पुण्यात्मा न होने से उन्हें रुचि नहीं होती) आगे इसका माहात्म्य बताते हुए कहते हैं -

रामायणे शिवेनोक्तमानन्दाख्यमिदं शुभम्।
रामायणं क्वचित्कुत्र कांश्चद्वेत्स्यति मानवः॥
न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यन्ति द्वापरे कलौ।
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यन्ति ते नराः॥
तद्रामवचनाद्भूम्यां बभूव पूर्ववत्तदा। नाभूत्कस्य कदा मेधाऽनन्दरामायणं प्रति॥
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान्। आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः॥
(आनन्द रामायण, राज्यकाण्ड, उत्तरार्द्ध, सर्ग - २३, श्लोक - ६५-६८)

यह शिव जी के द्वारा कहा गया आनन्द नामक रामायण है। इस रामायण के विषय में कहीं कहीं, कोई कोई मनुष्य ही जान पायेगा। द्वापर और कलियुग में तो विशेषकर पृथ्वीवासी मनुष्य इसे नहीं जानेंगे। जिनके पास सात जन्मों का रामार्चनजन्य पुण्यबल होगा, केवल वही मनुष्य इसे जान पाएंगे। रामजी के ऐसा विधान बनाने पर आनन्द रामायण सामान्यजन के लिए दुर्लभ हो गया और पृथ्वी की सारी व्यवस्था पूर्ववत् हो गयी। उनकी बुद्धि आनन्द रामायण के प्रति नहीं रही। अतएव उस समय के बाद से हज़ारों मनुष्यों में से कोई कोई, केवल सप्तजन्म के पुण्यबल से युक्त मनुष्य ही आनन्द रामायण को जानने और पढ़ने लगे। (स्वामी करपात्री जी ने रामायण मीमांसा में आनन्द रामायण का विशेष उल्लेख किया है)

अब एक और कुतर्क पर चर्चा करते हैं। लोग कहते हैं कि रंगनाथ रामायण, तोरवे रामायण, कम्ब रामायण, तुलसीदास जी की रामचरितमानस आदि में उत्तरकाण्ड के ये सब प्रसङ्ग नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि ये काण्ड उनके बाद किसी ने जोड़ा। ये कुतर्क बड़ा विचित्र और मूर्खतापूर्ण है। भले ही तुलसीदास ने वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड की कथा रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में नहीं लिखी, किन्तु यदि उत्तरकाण्ड जैसा कुछ रहा ही

नहीं, तो ये शब्द उनके पास कैसे आया ? मतलब उन्होंने अंतिम काण्ड को उत्तरकाण्ड ही क्यों लिखा ? कुछ और क्यों नहीं ? उनसे हज़ार वर्ष पहले के गोविन्दराज जी अपने वाल्मीकीय रामायण पर भाष्य करते हुए क्यों अनेकों स्थान पर उत्तरकाण्ड की कथा, अध्याय, श्लोक संख्या आदि का वर्णन करते हैं ? और उन्होंने तो भाष्य भी लिखा ही है उत्तरकाण्ड पर। क्यों नानाविध अन्य आनन्द, अध्यात्म आदि रामायण एवं पुराणों में ये कथाएं विस्तार से मिलती हैं ?

वाल्मीकि जी ने पुष्पवाटिका प्रसङ्ग और तुलसीदास जी ने वाल्मीकीय रामायण का अयोमुखी प्रसङ्ग भी नहीं लिखा है, तो क्या इससे हम वो प्रसङ्ग भी नकली मान लेंगे ? सहस्रों वर्ष प्राचीन अध्यात्म रामायण में उत्तरकाण्ड भी है और उसमें ये कथाएं भी हैं, और अध्यात्म रामायण पर तो रामभद्राचार्य जी भी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। फिर वाल्मीकि जी से उन्हें क्या समस्या है ? वैसे भी वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड से सीतात्याग और उत्तरकाण्ड का संकेत मैं सिद्ध कर चुका हूँ और गोविन्दराज जी के भाष्य से उसे पुष्ट भी कर चुका हूँ।

किसने क्या नहीं लिखा, यह महत्वपूर्ण नहीं है। अपितु किसने क्या क्या लिखा, यह महत्वपूर्ण है। रघुवंशम्, उत्तररामचरितम्, भामिनीविलास, प्रतिमानाटकम्, भट्टिकाव्यम् आदि में श्रीरामजी के अनेक ऐसे चरित्र स्पष्ट रूप से वर्णित हैं, जिन्हें कुतर्की समुदाय प्रक्षिप्त बता रहा है। ये सभी महाकाव्य रंगनाथ, तोरवे और कम्ब रामायण आदि से हज़ार-दो हज़ार वर्ष पूर्व लिखे गए थे। इनमें सीतात्याग आदि का स्पष्ट वर्णन है। आप स्वयं ही अपने जीवन का वर्णन दस लोगों को सुनाएं। जब वे लोग उसी प्रसङ्ग को आगे सौ लोगों को सुनाएंगे तो कुछ बातें एक में छूटी हुई पाई जाएगी जिसे दूसरे ने बताई होगी। इसीलिए कहता हूँ, किसने क्या नहीं लिखा, इसपर ध्यान देने के स्थान पर किसने क्या क्या लिखा है, इसे देखें।

तो इस प्रकार लेख के पिछले भाग एवं इस भाग के प्रमाणों एवं व्याख्याओं के समन्वय के आधार पर हमने उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता समझी, सीतात्याग का कुछ रहस्य जाना, धोबी के लांछन का पूरा कारण समझा, वह कौन था, उसका आगे क्या हुआ, उसने ऐसा क्यों किया, आदि सब जाना। इसके साथ ही यह जान लिया कि कुश एवं लव का जन्म वन में ही हुआ था। अब शम्बूक पर एक छोटी चर्चा और करता हूँ। शम्बूक के विषय में श्रीराम जी की निष्पक्षता, शम्बूक वध का वास्तविक कारण, उनका उद्देश्य, उसका

परिणाम, तपस्या के अधिकारित्व, भारत में शूद्र अथवा दासप्रथा के शास्त्रीय स्वरूप आदि पर पिछले लेख भाग में चर्चा कर चुके हैं। बीच में किसी विपक्षी ने प्रश्न किया था कि शबरी भी वनवासिनी थी, तो तपस्या के कारण राम जी ने उसे क्यों नहीं मारा ?

इसका कारण यह है, कि शबरी उग्र तपस्या नहीं कर रही थी। वह भक्तियोग एवं सेवाभाव का आश्रय लेकर आराधना कर रही थी। भक्ति और सेवाभाव पर चारों वर्णों के अधिकार सिद्ध हैं। साथ ही, शबरी की साधना का उद्देश्य कुछ था ही नहीं। वह तो किसी भी उद्देश्य से परे थीं। बस राम आ जाएं, इतनी ही अभिलाषा थी उसकी। इसके विपरीत शम्बूक की तपस्या उग्र थी। वह माथा नीचे करके अग्नि से धूम्रपान करता था, पंचाग्नि से शरीर को जला लिया था। और इच्छा क्या थी ? इच्छा थी कि इसी शरीर से देवता बन जाऊं। यह इच्छा उतनी भी बुरी नहीं थी, किन्तु वह कौन सा देवता बनना चाहता था, देवता बनकर करता क्या ? इसका उत्तर निम्न प्रमाण से मिलेगा -

अथ शूद्रतपश्चर्यानिहतं विप्रपुत्रकम्। उज्जीवयामास विभुर्हत्वा तं शूद्रतापसम्॥
जङ्घनामाऽसुरः पूर्वं गिरिजावरदानतः। बभूव शूद्रः कल्पायुः स लोकक्षयकाम्यया।
तपश्चचार दुर्बुद्धिरिच्छन्माहेश्वरं पदम्॥
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय - ०९, श्लोक - १९-२०)

फिर राम जी ने तपस्या में रत शूद्र को, जिसके कारण ब्राह्मणपुत्र मर जा रहे थे, उसे मारा और ब्राह्मणपुत्र को जीवित किया। यह शम्बूक पिछले जन्म में जंघासुर नाम का राक्षस था, जो पार्वती देवी के वरदान से युक्त था। यह अगले जन्म में एक कल्प (चार अरब, बत्तीस करोड़ मानवीय वर्ष) की आयु वाला शूद्र बना और फिर उस दुर्बुद्धि ने घोर तपस्या प्रारम्भ की। वह तपस्या करके साक्षात् शिव जी का पद पाकर संसार को नष्ट करना चाहता था। (शैवी शक्ति से संहार करती है)

देखिए, जो रुद्रपद प्राप्त करके संसार को नष्ट करना चाहे, जिसकी तपस्या शुरू करने से ही ब्राह्मण के पुत्र मरने लगे, उसे मारकर भगवान् ने क्या गलत किया ? और हाँ, भगवान् ने उसे फिर दिव्यशरीर से युक्त करके स्वर्ग भी भेजा। मारने से पूर्व जो भगवान् का उससे वार्तालाप हुआ है, वह प्रसङ्ग तो रोमांचित करने वाला है। भाग एक में पूरा वर्णन किया है, उसे आवश्यक होने पर पुनः पढ़ लें। अब थोड़ा सीतात्याग के प्रसङ्गों की ओर ध्यान पुनः देते हैं -

आज्ञयैव हि हरेस्तु मायया मोहितास्तु दितिजा व्यनिन्दयन्।
राघवं निशिचराहृतां पुनर्जानकीं जगृह इत्यनेकशः॥
ब्रह्मवाक्यमृतमेव कारयन् पातयंस्तमसि चान्ध आसुरान्।
नित्यमेव सहितोऽपि सीतया सोऽज्ञसाक्षिकमभूद्वियुक्तवत्॥
तेन चान्धतम ईयुरासुरा यज्ञमाह्वयदसौ च मैथिलीम्।
तत्र भूमिशपथच्छलान्नृणां दृष्टिमार्गमपहाय सा स्थिता॥
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय - ०९, श्लोक - ३१-३३)

भगवान् (श्रीराम) की आज्ञा से उनकी माया (सीता) ने ही आसुरी स्वभाव वाले लोगों को अपनी निंदा करने के लिए मोहित किया। फिर अनेकों लोगों ने यह कहना प्रारम्भ किया कि राक्षस से द्वारा हरण की गई जानकी को रामजी ने पुनः स्वीकार कर लिया। ऐसे आसुरी स्वभाव वाले लोगों को नरक में भेजते हुए राम जी ने एक लीला की। वैसे तो वे नित्यरूप से सीता जी से अभिन्न हैं, किन्तु फिर भी अनजान व्यक्ति की भांति उन्होंने अलग रहने का उपक्रम किया। जब उन आसुरी व्यक्तियों ने अंधकार से युक्त होकर आक्षेप किया था, तो रामजी ने सीता को यज्ञभूमि में बुलाया। सीताजी ने उन अज्ञानियों को मोहित करते हुए भूमिप्रवेश का शपथ लिया और जनसामान्य की दृष्टि से ओझल हो गईं।

कुछ लोग का कुतर्क यह भी है कि श्रीराम जी को बालकाण्ड आदि में महापुरुष बताया गया है और सीधे उत्तरकाण्ड में भगवान् के जैसा चित्रित किया गया है, इसीलिए उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है। यह कुतर्क तो और भी जघन्य है। हमारे यहां श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, आदि अनेकों पौराणिक ग्रंथों में, अगस्त्य संहिता, ऋष्यशृङ्ग संहिता आदि तांत्रिक ग्रंथों में साथ ही रामतापनीयोपनिषत्, रामरहस्योपनिषत् आदि वैदिक ग्रंथों में सर्वत्र, श्रीराम जी परब्रह्म के रूप में ही चिह्नित किये गए हैं। स्वयं श्रीरामानंद स्वामी जी ने श्रीरामार्चनपद्धति लिखी है, जिनके सम्प्रदाय में रामभद्राचार्य जी आते हैं।

अथ ब्रह्मा हरिं स्तुत्वा जगादेदं वचो विभुम्।
त्वदाज्ञया मया दत्तं स्थानं दशरथस्य हि॥
मातृणां चापि तल्लोकस्त्वयुताब्दादितोऽग्रतः।
अनर्हायास्त्वयाऽज्ञप्ता कैकेय्या अपि सद्गतिः।
सूत्वा तु भरतं नैषा गच्छेत निरयानिति॥

तथापि सा यदावेशाच्चकार त्वय्यशोभनम्।
निकृतिर्नाम सा क्षिप्ता मया तमसि शाश्वते॥
कैकयी तु चलान् लोकान् प्राप्ता नैवाचलान् क्वचित्।
पश्चाद्भक्तिमती यस्मात्त्वयि सा युक्तमेव तत्॥
मन्थरा तु तमस्यन्धे पातिता दुष्टचारिणी।
सीतार्थं येऽप्यनिन्दंस्त्वां तेऽपि याता महत्तमः॥
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय - ०९, श्लोक - ९३-९७)

(दिव्यलोक के प्रति महाप्रयाण के समय) ब्रह्मा ने श्रीहरि (रामजी) की स्तुति करके उन लोकस्वामी को कहा - हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से मैंने राजा दशरथ को आपके दिव्य लोक में स्थान दिया है। साथ ही माताओं को भी दस हज़ार वर्ष पूर्व ही उस लोक में स्थान दिया जा चुका है। आपने कैकेयी के अपराध को व्यक्तिगत रूप से क्षमा कर दिया था और उन्हें भी दिव्य लोक देने का आदेश दिया था, और साथ ही भरत जैसे पुत्र रत्न को जन्म देकर ये नरक जाने के योग्य भी नहीं है।

किन्तु, फिर भी उसने आवेश में आकर आपके प्रति जो अनुचित व्यवहार किया था, उसके कारण उसे मैंने (कुछ समय के लिए) निकृति नामक नरक में भेजा था। उसे भी बाद में अचल लोक (साकेत आदि दिव्य धाम) नहीं मिले थे, अपितु चललोक (न्यूनतम स्वर्गलोक या अधिकतम ब्रह्मलोक) ही मिले। (कुछ समय बाद) भक्तिभाव से युक्त कैकेयी आपको ही प्राप्त कर जाएगी। दुष्ट आचरण करने वाली मंथरा को भी उसके कृत्य के कारण अंधकारमय नरक में वास मिला है और सीता जी के कारण जिन्होंने "आपकी निंदा की है" वे भी घनघोर नरक को गए हैं।

जिन पाठकों ने 'महाभारततात्पर्यनिर्णय' ग्रंथ का नाम नहीं सुना है, उन्हें इसका सामान्य परिचय दे देता हूँ, ताकि इसकी प्रामाणिकता ज्ञात हो सके। सनातन धर्म में वर्तमान में छः सम्प्रदाय (शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंदाचार्य) वाले ही जगद्गुरु लगा रहे हैं। इनमें मध्वाचार्य जी द्वैतमत के प्रसारक हैं, तथा केवलाद्वैत शांकर मत के चार पीठों के सापेक्ष इन्होंने द्वैतमत के आठ पीठ स्थापित किये। इन्हें वायु का, एवं मतांतर से वायुनन्दन हनुमानजी का भी अवतार मानते हैं। ये आज भी जीवित हैं और सूक्ष्म रूप से बद्रीनाथ में वेदव्यासजी से वेदान्त पढ़ रहे हैं। शेष

जगद्गुरु आचार्यों में शंकराचार्य जी शिवावतार, रामानुजाचार्य जी शेषावतार, वल्लभाचार्य जी अग्नि के अवतार, निम्बार्काचार्य जी सुदर्शन चक्र के अवतार एवं रामानंदाचार्य जी स्वयं रामावतार के रूप में वर्णित हैं। वर्तमान में गोलोकवासी हुए पेजावर मठ के पूर्वाधिपति स्वामी श्री विश्वेशतीर्थ जी इसी सम्प्रदाय के आचार्य थे। उन्हीं मध्वाचार्य (पूर्णप्रज्ञानंदतीर्थ) जी ने सहस्रवर्ष पूर्व महाभारत-तात्पर्य-निर्णय नामक महान् ग्रंथ लिखा जिसकी "हस्तलिखित प्रति" आज भी उत्तरादि मठ के "श्रीजयतीर्थ संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकालय" में देखी जा सकती है। महाभारत तात्पर्य निर्णय लिखने का उद्देश्य यही था कि भविष्य में कुछ स्वयं भ्रमित लोग, समाज को भ्रमित न करें।

इत्यशेषपुराणेभ्यः पञ्चरात्रेभ्य एव च। भारताच्चैव वेदेभ्यो महारामायणादपि॥
परस्परविरोधस्य हानान्निर्णीय तत्त्वतः। युक्त्या बुद्धिबलाच्चैव विष्णोरेव प्रसादतः॥
बहुकल्पानुसारेण मयेयं सत्कथोदिता। नैकग्रन्थाश्रयात्तस्मान्नाशङ्क्यात्र विरुद्धता॥
क्वचिन्मोहायासुराणां व्यत्यासः प्रतिलोमता।
उक्ता ग्रन्थेषु तस्माद्धि निर्णयोऽयं कृतो मया॥
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय - ०९, श्लोक - १२२-१२५)

इस प्रकार से सभी पुराण, पांचरात्र, महाभारत, वेद, महारामायण (योगवाशिष्ठ अथवा शतकोटि रामायण) में जो कुछ परस्पर विरोधाभास दिखता है, उसके तत्व का निर्णय करने के लिए, भगवान् विष्णु की कृपा से प्राप्त बुद्धिबल से सम्पन्न होकर मैं अनेकों कल्पों की कथाओं के आधार पर इस सत्कथा को कह रहा हूँ। इसमें (रामकथा में) किसी एक ही ग्रंथ का आश्रय नहीं लिया गया है, इसीलिए विरुद्ध बातों की शंका नहीं करनी चाहिए। कुछ मोहग्रस्त असुरों के कारण इस संदर्भ में भ्रम, अव्यवस्था और शंका उत्पन्न की जाती है, जो उन ग्रंथों में वर्णित है, इसीलिए मैं इस ग्रंथ में उसका निर्णय कर रहा हूँ।

उपर्युक्त वचनों में यह स्पष्ट है कि श्रीमज्जगद्गुरु आद्यमध्वाचार्य जी भविष्य में होने वाले इन कुतर्कपूर्ण विवादों के प्रति आशंकित थे इसीलिए उन्होंने पहले ही निर्णय ग्रंथ लिख दिया था। हमें यह समझ नहीं आता है कि जिन्होंने अपने जन्म से ही स्वयं के सर्वज्ञ होने का भ्रम पाल लिया, जीवन भर चापलूसों से घिरे रहे, प्रत्यक्ष एवं प्रकाशित सूर्य की भांति शास्त्र प्रमाणों की उपेक्षा केवल इसीलिए करते रहे ताकि उनके दम्भ का पोषण हो सके, ऐसे लोग शब्दब्रह्म की निंदा के फलस्वरूप न जाने कितने कल्पों तक घोर नरक में कष्ट

प्राप्त करेंगे ? शास्त्र को समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि आप अपना मस्तिष्क खाली रखकर उसे पढ़ें। लोग पहले से धारणा बना लेते हैं और उन धारणाओं को शास्त्रों में खोजते हैं और जब उन्हें अपने मन के अनुकूल वाक्य नहीं मिलते हैं तो प्रतिकूल वाक्यों को प्रक्षिप्त कह देते हैं, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए।

स्वयं को सभी विषयों से अनभिज्ञ समझकर ग्रंथ पढ़ना चाहिए और उसमें जो बातें वर्णित हो उसे स्वीकार करना चाहिए। हां, यदि किसी प्रसंग विशेष में शंका हो ही जाए तो अन्य ग्रंथों से उसका समाधान प्राप्त कर लेना चाहिए, यही एक बुद्धिमान् व्यक्ति का कर्तव्य है। उस व्यक्ति को मैं बुद्धिमान् कभी नहीं मान सकता जो अपने धारणा की पुष्टि करने के लिए सभी प्राप्त प्रत्यक्ष प्रमाण को एक सिरे से नकारता जाए और जहां जहां उसके मत का समर्थन न हो उन सभी आर्ष ग्रंथों को एक सिरे से गलत कहता जाए।

किंतु स्वयं को अति विद्वान् समझने वाले लोग न श्रद्धा से ग्रंथों को खोज करते हैं, और न जानकारों की बात मानते हैं। इन विषयों पर भाग ०१ एवं भाग ०२ को मिलाकर आप अध्ययन करें तो सारे कुतर्कबुद्धि वाले लोगों का छद्म ज्ञान खण्डित दिखेगा। इसके बाद भी कोई यदि मूर्खता करे तो वाल्मीकि जी क्या दोष ? रामजी का क्या दोष ? परिश्रम से इतने ग्रंथों के प्रमाणों के सार देने वाले मुझ जैसे सैकड़ों रामदासों का क्या दोष ?

। इति शम् ।

तृतीय भाग

क्या नेत्रहीन या विकलांग व्यक्ति संन्यास के अधिकारी हैं ?

आजकल संन्यास लेने का 'फैशन' चल पड़ा है। कोई भी, कहीं भी, किसी से भी संन्यास ले रहा है, और संन्यास लेने के बाद कुछ भी करने में तत्पर हो जा रहा है। सम्भवतः इसीलिए शास्त्रों ने कलौ संन्यासवर्जितः तक कह दिया। बिना वर्णाश्रम-शुद्धता पुष्टि किये, गुण-लिंग-उद्देश्य का विचार किये, सबों को संन्यासी ही बनना है। उसके बाद यदि कुछ विशेष धनार्जन एवं जनबल हो गया तो फिर पीठाधीश्वर, जगद्गुरु, और न जाने क्या क्या उपाधियां भी मिलने लगती हैं एवं सनातन धर्म की हानि होने लगती है।

पूर्व के लेखों से चित्रकूट वाले ख्यातिलब्ध रामानंदी 'जगद्गुरु' जी के समर्थक भड़क गए क्योंकि मैंने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर नेत्रहीन व्यक्ति के संन्यास ग्रहण का निषेध किया था। यद्यपि यह उपहास, द्वेष अथवा अपमान के लिए नहीं, अपितु शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर समीक्षा के दृष्टिकोण से ही था, किन्तु बहुत विवाद हुआ एवं देहान्ध तथा ज्ञानान्ध जनों के कुतर्कों ने पुनः भ्रम की वैतरणी बहाई। अब तो विकलांग के लिए कुछ राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा वालों नेताओं में एक नया ही शब्द निकाल रखा है, – दिव्यांग।

दिव्यता वह है, जिसे देख कर लोग चमत्कृत हों। दिव्यता वह है, जो पुण्यकर्म के कारण सौभाग्य से प्राप्त हुई हो, जिसमें विलक्षणता हो, जो सामान्य से उत्कृष्ट हो एवं जिसकी ओर आकर्षित होकर सभी उसे प्राप्त करने या वैसा ही बनने की कामना करें। एक अंगहीन व्यक्ति को दिव्यांग कहना, उसका सम्मान नहीं, अपितु उसकी विवशता का राजनैतिक स्वार्थ हेतु अपमान ही है।

किस विकलांग को अपनी असमर्थता के कारण दिव्यता का आभास होता होगा ? कौन सा व्यक्ति उसके अंगों की "दिव्यता" को देखकर अपने अंगों को भी वैसा ही दिव्य बनाने की इच्छा करता होगा ? राजनैतिक महत्वाकांक्षा से ग्रस्त नेता एवं धार्मिक दम्भ से भरे धर्मोपदेशक, जब स्वयं को सर्वसमर्थ समझकर शब्द एवं धर्म की अप्रासंगिक एवं अनुपयुक्त व्याख्या करने लगते हैं, तब ऐसा ही होता है। पूर्वजन्म के किये गए पाप से ही इस जन्म में विकलांगता होती है, ऐसा सनातन धर्म में शास्त्र प्रमाण हैं। वैसे तो इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, क्योंकि अलग अलग प्रकार की विकलांगता का कारण अलग अलग कर्म ही हैं।

यदि हम कर्मफल को न मानें, तो भला जन्मजात असाध्य रोगों से ग्रस्त अथवा अंगहीनता से व्यथित देह वाले बच्चे ने कौन सा पाप किया था, क्योंकि इस जन्म के कर्म का तो प्रारम्भ भी नहीं हुआ !

दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम्।
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा॥
(ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय – २६, श्लोक - ०२)

कौन लम्बी आयु वाला होगा तथा कौन अल्पायु होगा, कौन सुखी या कौन दुःखी होगा, ये सब पूर्वकृत कर्मों के आधार पर निश्चित होता है। अंधत्व आदि से ग्रस्त अंगहीन भी पूर्व के पापकर्म के कारण ही होते हैं। हमारे शरीर में उत्पन्न होने वाले साध्य एवं असाध्य रोग भी पूर्वकृत दुष्कृत्यों को भोगने के लिए ही होते हैं।

अतः फलोपभोगार्थमुभयेषाञ्च कर्मणाम्। प्रारब्धानामिदं सृष्टं शरीरञ्च शरीरिणः॥
पाप्मभ्य एव जायन्ते प्रारब्धेष्वामयास्तनौ। नानाविधा दुःखवरा भुज्यन्ते देहिनापरे॥
(अहिर्बुध्न्य संहिता, पटल - ३८, श्लोक - १८-१९)

शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों के प्रारब्धफल को भोगने के लिये ही जीव को शरीर मिलता है। पापियों के ही शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं और जीव के द्वारा दूसरे प्रकार के भी भिन्न भिन्न दुःख भोगने पड़ते हैं। यह सिद्धान्त हमारे, आपके, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, शूद्र, ज्ञानी, मूर्ख सबों पर समान रूप से लागू होता है, जिसका किसी व्यक्तिविशेष से सम्बन्ध नहीं है। जो भी रोग है, वह पाप का ही परिणाम है। विवादित विषय में नेत्रहीनता से ग्रस्त व्यक्तियों पर विशेष ध्यान दिया गया था, इसीलिए उदाहरणस्वरूप नेत्रहीन होने का शास्त्रीय कारण ही प्रस्तुत करता हूँ, जो विश्वप्रसिद्ध सावित्री और यमराज के सम्वाद के अंतर्गत वर्णित है –

अन्धो दीपापहारी स्यात्
अन्धो भवति गोघ्नस्तु
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड २, अध्याय १२१, श्लोकांश - ०९)

अंधकार करने के उद्देश्य से दीपक बुझाने वाला, एवं गोहत्या करने वाला अगले जन्म में अन्धा होता है।

इस प्रकार से हम समझते हैं कि कोई भी रोग, दरिद्रता, अज्ञान, कष्ट और विकलांगता आदि में कोई दिव्यता नहीं है, अपितु यह स्वोपार्जित पापकर्म का ही फल है। विकलांग को सम्मानपूर्वक सहयोग दें, उसका उपहास न करें, उसकी सेवा करें, ये सब ठीक है, किन्तु उसे दिव्यांग न कह दें।

कुछ लोग मेरे विरोध में सन्त सूरदासजी का उदाहरण देते हैं। मैं उनकी बात का विरोध नहीं करता। ये कहीं नहीं लिखा कि पूर्वकृत पाप के कारण कोई इन जन्म में किसी अक्षमता से ग्रस्त है तो वह इस जन्म में भी पाप ही करेगा, अथवा उसका भगवान् की भक्ति अथवा प्राप्ति में अधिकार नहीं है। मैं ऐसा बिल्कुल नहीं कहता। सभी वर्ण, जाति, कुल, यहां तक कि समस्त संसार को अपनी अपनी मर्यादा के अनुरूप मार्ग का आश्रय लेकर भगवान् की भक्ति, लोकोपकार एवं मुक्ति का अधिकार है, एवं हमने पूर्व काल के प्रसङ्गों में ऐसा देखा भी है।

किन्तु यह ध्यातव्य है कि सूरदासजी कोई संन्यासी नहीं थे। वे भजनानंदी विरक्त साधु थे, परम् श्रेष्ठ भक्त थे, किन्तु संन्यासी नहीं थे। दोनों में भेद है। भक्त की स्थिति के लिए कोई भौतिक योग्यता नहीं चाहिए, संन्यास की स्थिति के लिए आध्यात्मिक योग्यता के साथ भौतिक योग्यता भी चाहिए। उसकी एक अलग विधि है। जैसे देशसेवा के लिए कोई विशेष योग्यता या सरकारी अनुमति नहीं चाहिए किन्तु यदि सेना में सम्मिलित होकर देशसेवा करनी है तो उसकी एक अलग योग्यता एवं विधि निश्चित है। ऐसा नहीं है कि नेत्रहीन व्यक्ति ज्ञानी नहीं हो सकता, सन्त या साधक नहीं हो सकता, अथवा भगवान् की प्राप्ति नहीं कर सकता। मैं ऐसा नहीं कह रहा, अपितु यह कह रहा हूँ कि दण्डधारण पूर्वक संन्यासी नहीं बन सकता।

मेरे पूर्व के लेखों में मैंने विषय की भिन्नता के कारण इस बात के ऊपर कोई विशेष प्रमाण नहीं दिया था, किन्तु संकेत किया था कि संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् आदि में नेत्रहीन या किसी शारीरिक अक्षमता वाले व्यक्ति के संन्यास का निषेध है। चूंकि नेत्रहीन शब्द से श्रीरामानन्दीय सम्प्रदाय के एक 'जगद्गुरु' का विशेष सन्दर्भ निकल पड़ता है, जिनके अशास्त्रीय वक्तव्य के विरुद्ध मैंने लिखा था तो मैंने यह भी संकेत किया कि श्रीमज्जगद्गुरु आद्यरामानन्दाचार्य जी के द्वारा आचार ग्रंथ के रूप में प्रणीत श्री वैष्णव-मताब्जभास्कर में भी यही बात वर्णित है। हाल ही में, मेरे लेखन के विपक्ष में किन्हीं विप्रश्रेष्ठ का (जिनके नाम-गुण के विषय में मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता हूँ, किन्तु

लोगों ने उनका नाम श्री रामाधार शर्मा बताया), एक वीडियो फेसबुक पर आया, जिन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने उपर्युक्त उपनिषदों एवं वैष्णवमताब्जभास्कर को "अक्षरशः" देख लिया किन्तु उन्हें वहां ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला। यह बड़ी हास्यास्पद बात है क्योंकि यह वैसी ही बात है कि कोई व्यक्ति यह दावा करे कि उसने ज्येष्ठ मास के निर्मल आकाश का घंटों अवलोकन किया किन्तु उसे इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि सूर्य का कोई अस्तित्व है। अस्तु, यदि उन्हें प्रमाण नहीं मिला तो इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रमाण है ही नहीं, अतः मैं प्रमाण इस लेख में संलग्न कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम तो संन्यास है क्या ?

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

बुद्धिमान् जन उसी को संन्यास कहते हैं, जिसमें काम्य कर्म का न्यास हो जाता है, अर्थात् उस स्थिति में सभी कर्म इन्द्रियों के द्वारा स्वभावतः ही संचालित होते हैं, जिसमें जीव की कोई उत्प्रेरित फलाकांक्षा नहीं होती। अब संन्यास की स्थिति किसे प्राप्त हो सकती है ?

इसमें कहा,

मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिङ्गधारणम्

(अहिर्बुध्न्य संहिता)

विष्णुसम्बन्धी संन्यास चिह्न (दण्ड) केवल मुख से उत्पन्न होने वाले ही धारण करें।

मुख से ब्राह्मण ही हुए हैं, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।

शेष द्विजाति (क्षत्रिय एवं वैश्य) के लिए अलिंग (दण्डरहित) संन्यास का विधान है, जो एक प्रकार वानप्रस्थीय नियमों तक ही सीमित है। स्त्री एवं शूद्रों के लिए अलिंग या सलिंग, किसी भी संन्यास का नियम नहीं है, वे गृहस्थ रहते हुए ही धर्मानुसार अपने परिवार एवं समाज की सेवा तथा पोषण करते हुए भगवान् की भक्ति करें, इससे उन्हें भी वही सद्गति मिलती है जो कठोर व्रत का पालन करने वाले संन्यासियों को मिलती है। फल में भेदभाव नहीं है, केवल क्रियामार्ग में भेद है।

हां, यदि ब्राह्मणेतर जन तीव्र वैराग्य से युक्त हो ही जाएं एवं संन्यस्त होना चाहें तो वे वीरभाव का आश्रय लेकर वन में चले जाएं, त्यागात्मिका वृत्ति का आश्रय लें। इस मार्ग का अनुसरण भगवान् ऋषभदेव (लौकिक दृष्टि से क्षत्रिय), महाभाग समाधि (लौकिक

दृष्टि से वैश्य), महामना विदुर जी (लौकिक दृष्टि से शूद्र) एवं साध्वी गार्गी (लौकिक दृष्टि से स्त्री) ने किया था। ऐसे वीरभाव का समर्थन वैष्णव, शैव, शाक्त एवं कौल, सभी पन्थ करते हैं। इसमें व्यक्ति समस्त द्वंद्वों से स्वयं को स्वभावतः मुक्त करके अवधूत वृत्ति का आश्रय लेकर ब्रह्मचिन्तन करते हुए प्राकृतिक दावाग्नि, बाढ़, भूस्खलन, हिंस्र जीव आदि के माध्यम से देहनाश करके परमपद को प्राप्त करता है। सभी वर्णों के स्त्री पुरुषों के लिए यही विधान शास्त्रोक्त है, जिसका अतिक्रमण करना घोर पाप का निमित्त बनता है। विदुर जी स्वयं धर्मावतार थे, ब्रह्मज्ञानी थे, परम् भगवद्भक्त थे किंतु उन्होंने देहगत अवस्था की मर्यादा के कारण धृतराष्ट्र जी को यह बात कही –

शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे। कुमारस्य तु याबुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम्॥
ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सगुह्यमपि यो वदेत्।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद्ब्रवीमि ते॥
(महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय – ४१, श्लोक – ०५-०६)

शूद्र योनि में जन्म लेने से मैं इससे अधिक उपदेश आपको नहीं दे सकता हूँ। इस विषय में कुमार (सनत्सुजात) की जो मति है, उसे आप मेरी भी मति जानें। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला यदि गुप्त रहस्यों वाले ज्ञान को भी उपदिष्ट करता है तो देवता उसकी निंदा नहीं करते, इसीलिए मैं ऐसा कहता हूँ।

विदुर जी स्वयं धर्म के अवतार थे, उन्होंने योगबल से सनत्सुजात ऋषि का तत्काल आवाहन किया और उनसे धृतराष्ट्र को उपदेश दिलाया। भला जो विदुर जी इतने दिव्य शक्ति से युक्त थे, वे क्या स्वयं ब्रह्मतत्त्व का उपदेश नहीं कर सकते थे ? किंतु उन्होंने धर्मगौरव के कारण ऐसा नहीं किया। सनातन धर्म यही बताता है कि आपमें क्षमता चाहे जितनी हो, प्रयोग वहीं पर करें और उतना ही करें जितना शास्त्रोक्त मर्यादा के अंतर्गत हो, क्योंकि जीव की क्षमता तो अनंत है किंतु देहगत अवस्था से कर्मफल के निर्माण एवं उपभोग की संगति होने से देहगत स्थिति का विचार मर्यादा के अनुकूल रहकर उचित कर्मकरना चाहिए। अतएव सदण्ड संन्यास में अनेकों प्रकार के लोग अनधिकृत हैं जिनमें कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं –

अथ षण्डः पतितोऽङ्गविकलः स्त्रैणो बधिरोऽर्भको मूकः
(संन्यासोपनिषत्)

नपुंसक, पतित (घोर पाप करने वाला), किसी अंग की विकलता के कारण कष्ट में पड़ा हुआ (विकलांग), स्त्री के समान आचरण करने वाला, अथवा स्त्री के आदेश के अनुसार दासवत् आचरण करने वाला, बहरा, अत्यंत बालक एवं गूंगा...

पुनः संन्यास के लिए अनुपयुक्त लोगों के प्रति एक और वेदवाक्य का अवलोकन करें –

षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी।

(नारदपरिव्राजकोपनिषत्)

नपुंसक, व्यथित, 'अन्धा', बालक एवं पापकर्म से गर्हित ...

आश्चर्य है कि 'अक्षरशः' अवलोकन का दावा करने वाले महानुभावों को ये सब प्रमाण नहीं दिखते। हमें तो लगता है कि दिखता सब है, बस जानबूझकर सत्य स्वीकार नहीं करते, क्योंकि स्वीकार करने से अपना स्वकल्पित आवरण हटेगा, लौकिक दृष्टि से प्रतिष्ठा हानि होगी, और यदि कह दें कि प्रमाण ही नहीं मिला तो भोले शिष्यगण स्वयं जाकर प्रमाण तो खोजने से रहे ... इसमें कुछ लोग अङ्गिरा एवं कूर्मपुराण के मत से कहते हैं कि संन्यास में सबका अधिकार है –

अन्धः पङ्गुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद्विजः॥

(यतिधर्मसङ्ग्रहे अङ्गिरावचनम्, कूर्मपुराणेऽपि)

अंधा हो, लंगड़ा हो, चाहे दरिद्र हो, विरक्त होने पर ब्राह्मण को सन्यस्त हो जाना चाहिए।

यह मत अधूरा सत्य है। क्योंकि यहां संन्यास शब्द में "आतुर संन्यास" भी आ जाता है, जो मृत्युकाल को निकट जानकर आपत्तिकाल में बिना किसी विशेष विधि, योग्यता एवं मन्त्र के केवल "मैं संसार के बंधन से परे हूँ और ब्रह्मचिन्तन करता हूँ" इस भाव से ले लिया जाता है। आतुर संन्यास वालों को कहीं का पीठाधीश्वर बनने, जगद्गुरु बनने, भाष्य लिखने, यहां तक कि महावाक्यों के उपदेश का भी अधिकार नहीं है। वे केवल विरक्त जीवन बिताने के साथ साथ भगवान् का स्मरण कर सकते हैं।

क्षयक्षीणोऽङ्गविकलो न तु संन्यासमर्हति।

(यतिधर्मसङ्ग्रहे दक्षवचनम्)

कुष्ठ, यक्ष्मा आदि से ग्रस्त व्यक्ति तथा विकलांगता से ग्रस्त जन संन्यास के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम्
(संन्यासोपनिषत्)

उपर्युक्त अवगुणों से युक्त लोग आतुर संन्यास के अलावा और कोई क्रमपूर्वक संन्यास नहीं ले सकते।

एते संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः।
(यतिधर्मनिर्णये पुराणोपनिषत्सु वाक्यसारम्)

और इन लोगों ने यदि संन्यास ले ही लिया तो भी महावाक्यों के उपदेश (जो कि दण्डी संन्यासियों का एकमात्र कर्तव्य शेष रह जाता है) के अधिकारी नहीं हैं, यानी व्यासपीठ पर बैठ नहीं सकते। इस कारण से भी श्रीरामभद्राचार्य जी व्याकरण और वेदान्त के विद्वान् होते हुए भी महावाक्योपदेश करने के अधिकारी नहीं हैं।

महावाक्यों का जो क्रम, अर्थ एवं भाव भगवान् शिव ने उपनिषदों में शुकदेव जी को तथा श्रीराम जी ने तत्त्वसारायण की श्रीरामगीता में हनुमान् जी को बताया है, उसके विरुद्ध अर्थ का व्याख्यान भी निषिद्ध ही है। जब रामभद्राचार्य जी अहं ब्रह्मास्मि की अपने व्याकरण-दम्भ से आप्लुत अनेकों प्रकार की व्याख्या करके तालियाँ बटोरते हैं, तब यह समझ में आता है कि शास्त्र ने ऐसे लोगों के लिए महावाक्योपदेश का अनधिकार क्यों वर्णित किया है। दण्ड संन्यास के बाद एकमात्र कार्य ब्रह्मचिंतन से अपना मोक्ष एवं तत्सम्बन्धी महावाक्यों के उपदेश से योग्य मुमुक्षुओं का कल्याण करना ही होता है। जो ऐसा करता है, वही सच्चा गुरु है। राजनीतिक स्वार्थ में लुप्त होकर आत्मसम्मोहन से ग्रस्त जनों को हम 'देशिक' नहीं मानते।

यदा पश्येत्परं तत्त्वं तदा मुक्तः स नान्यथा। स एव देशिको ज्ञेयः संसारर्णवतारकः॥
(विष्णु संहिता, द्वितीय पटल, श्लोक - ५३)

जब उसे (ब्रह्मचिन्तक को) परमतत्व का दर्शन हो जाता है, तभी वही मुक्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को ही देशिक* समझना चाहिए जो संसार समुद्र से पार करने में समर्थ हो।

*उपदेष्टा संन्यासी के लिए देशिक शब्द का प्रयोग बहुतायत से होता है।

अब इस प्रसङ्ग के सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण पर आते हैं, जो "अक्षरशः अवलोकन" करने वालों को भी नहीं दिखा। स्वयं आचार्य सम्राट् श्रीरामानंद स्वामी जी लिखते हैं –

विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान्। निग्रहेऽनुग्रहे चैव समर्थो देशिको मतः॥
हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटी कृष्णदन्तवान्। नेत्ररोगी च कुष्ठी च वावदूकश्च वामनः॥
व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखी बहुभोजनः। नेदृशो देशिको योग्यो मुमुक्षोर्मोक्षसाधने॥
(वैष्णवमताब्जभास्कर, परिच्छेद ४)

जो विरक्त भाव को धारण करे, ध्यान का अभ्यासी हो, अच्छी बुद्धि से युक्त हो, निग्रह (पाखंडियों के मत का खण्डन) करने में समर्थ हो, साथ ही अनुग्रह (जिज्ञासु शिष्यों पर ज्ञान की कृपा) करने में भी समर्थ हो, उसे ही 'देशिक' माना जाता है। जो किसी अंग से हीन हो, जिसमें किसी अंग की अधिकता हो, जो कपट का आश्रय लेता हो, जिसके दांत (अभक्ष्य ग्रहण या रोग के कारण) काले हों, *जो नेत्रों का रोगी हो*, कुष्ठ से युक्त हो, बकवास करने वाला हो, बौना हो, किसी बुरी आदत का शिकार हो, अत्यधिक सोने वाला हो, विकृत नखों से युक्त हो, बहुत भोजन करने वाला हो, ऐसा 'देशिक' मोक्ष की इच्छा रखने वाले शिष्यों के मोक्षसाधन के लिए योग्य नहीं है। इन श्लोकों तथा भावों को श्रीरामार्चनचन्द्रिका के सन्दर्भ के साथ श्रीरघुनाथ-तर्कवागीश ने भी आगमतत्त्वविलास में स्वीकार किया है।

दण्डी संन्यासी स्वयं भी मुक्त होता है और शिष्यों की मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करता है, किन्तु वैष्णवमताब्जभास्कर में स्वयं श्रीरामानंद स्वामी ने उपर्युक्त अवगुणों वाले के संन्यास की योग्यता या मोक्षसाधक मार्ग के कुशल उपदेष्टा होने का निषेध किया है। इसके प्रभाकिरण-भाष्य में नारदपरिव्राजकोपनिषत् का उपर्युक्त प्रमाण भी अक्षरशः स्वीकार किया गया है। इतना ही नहीं, आचार्यत्व के विषय में भी रामानन्द सम्प्रदाय के ही पूर्वाचार्य गुरुओं का निम्न मत है –

नैवाधिकाङ्गसहितो न च व्यङ्गदेहो नाचारहीनविविधाश्रमदत्तचित्तः।
नो लम्पटो न च कदाचरणानुरक्तः स्वाचार्यध्रुङ् न च न हि प्रमदानुरक्तः॥
श्रद्धान्वितः कर्मपरायणश्च गुरौ प्रपत्यातिविशुद्धमानसः।
निर्वृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविज्ञ आचार्यतां याति स वै विरक्तः॥
(श्रीमज्जगद्गुरु रामानंदाचार्य श्रीरघुवराचार्य 'वेदान्तकेसरी' कृत आचार्यस्मृति)

अधिक अंगों से युक्त, *विकृत अंगों से युक्त*, आचारहीन, अलग अलग सम्प्रदाय अथवा आश्रमों में भटकने वाला, लम्पट, कुत्सित आचरण करने वाला, *पूर्वाचार्यों की निंदा करने*

वाला तथा स्त्रियों में आसक्त रहने वाला व्यक्ति आचार्यपद के योग्य नहीं है। जो श्रद्धा से युक्त होकर स्वकर्म को करे, गुरु के प्रति शरणागति के माध्यम से मन को शुद्ध किया हो, सभी इन्द्रियों की विषयात्मिका वृत्ति को जिसने नियंत्रित कर लिया है, ऐसा विरक्त ही आचार्य पद के योग्य है। सर्वविदित है कि अपने भाष्यों में रामभद्राचार्य जी ने श्रीआद्यशंकराचार्य के पथ को कुपथ, उन्हें विक्षिप्त बुद्धि तथा श्रीआद्यरामानुजाचार्य जी आदि को अन्धा कहते हुए पूर्वाचार्य निन्दा की है।

जैसे सेना में भर्ती होने के समय आपकी देशभक्ति के साथ साथ शारीरिक योग्यता भी प्रधानता रखती है, शारीरिक अयोग्यता के कारण यदि आपको भर्ती न किया जाए तो इसका अर्थ आपका अपमान करना नहीं है, वैसे ही क्रमपूर्वक महावाक्योपदेशक दण्ड संन्यास हेतु भी आध्यात्मिक योग्यता के साथ साथ शारीरिक योग्यता की प्रधानता है, यह एक शास्त्रीय नियम है जिसमें किसी के उपहास या अपमान की बात नहीं आती है।

उपर्युक्त वैदिक, पौराणिक, स्मार्त एवं तांत्रिक प्रमाण, जो स्पष्ट होने के बाद भी पक्षपातपूर्ण दृष्टि वालों को नहीं दिख रहे थे, वो मैंने सारभूत रूप से अवलोकित करा दिए हैं। देहान्ध जनों की चिकित्सा कदाचित् हो भी जाये और उनके प्रति सहानुभूति भी हो सकती है किन्तु ज्ञानान्ध जनों का कल्याण दुष्कर ही है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

। इति शम्।

चतुर्थ भाग

आजकल प्रक्षिप्त कहने का अभियान जोरों पर है। पहले अंग्रेजों ने कहा, फिर आर्य समाजियों ने कहा, फिर अब उन्हीं जैसे लोगों के द्वारा खड़े किए गए कुछ धर्मगुरु (?) भी कह रहे हैं। चित्रकूट के भी एक अति प्रसिद्ध बाबाजी ने कहा था कि सीतात्याग काल्पनिक है, शम्बूक वध नहीं हुआ, उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, आदि आदि। उनके वेश, शारीरिक असमर्थता, राजनीतिक पैठ एवं और सामाजिक सम्मान का विचार करके अनेकानेक विद्वान् जन चुप रह गए,यद्यपि व्यक्तिगत में सबों ने आपत्ति की।

इन लोगों की एक शैली है - जिस बात का उत्तर इनके दल के पास नहीं होता, अथवा जो शास्त्रीय प्रमाण इनके मत के विरुद्ध होता है, उसे ये प्रक्षिप्त या मिलावटी कह देते हैं। प्रत्येक प्रश्न का इनके पास एक ही समाधान है - प्रक्षिप्त। इनलोगों को असली नकली की इतनी ही पहचान है, तो एक ही बार सूची बनाकर क्यों नहीं दे देते कि अमुक अमुक ग्रंथ प्रक्षिप्त है ? और उसकी वास्तविक प्रति अमुक स्थान पर है। अमुक अमुक व्यक्ति ने, अमुक अमुक समय में प्रक्षिप्त कर दिया। क्यों नहीं बताते हैं ये लोग ? जब हम मान्य शास्त्रों से इनके मत के विरुद्ध प्रमाण देते हैं, उसके बाद जाकर इन्हें बोध होता है और ये तत्काल उसे प्रक्षिप्त कह देते हैं।

पहले अनेकानेक ग्रंथों से प्रमाण देते हुए मैंने सीतात्याग और उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने वाले विषय पर विस्तार से क्रमबद्ध रीति का प्रयोग करते हुए दो भागों में अपना खण्डन लेख लिखा, जिसे निष्पक्ष विद्वानों की भरपूर सराहना भी मिली। चूंकि मैंने सीधे तौर पर अपना और अपने विपक्ष का नाम स्पष्ट रूप से लिया था तो कुछ संवैधानिक अत्याचार का प्रयास भी किया गया। वहां लेख में एक बिंदु पर हमने यह भी कहा था कि किसी अंग से विकल, यथा नेत्रहीनता आदि से ग्रस्त जनों को दण्ड संन्यास का अधिकार नहीं है। लेख का विषय दूसरा होने से मैंने वहां इसका प्रमाण न देकर केवल संकेत कर दिया कि इसका सन्दर्भ संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् में मिलेगा। उसके बाद चूंकि विषय रामानंद सम्प्रदाय की ओर मुड़ गया, तो मैंने यह भी कहा कि उपर्युक्त मत का समर्थन स्वयं श्रीरामानंद स्वामी जी के द्वारा लिखित वैष्णवमताब्जभास्कर में भी मिलता है। उस वक्तव्य के विरोध में एक महानुभाव श्रीरामाधार शर्मा जी ने एक वीडियो जारी किया

जिसमें उन्होंने दावा किया कि मेरे द्वारा संकेतित ग्रंथों को उन्होंने "अक्षरशः" देख लिया किन्तु उन्हें संन्यासाधिकार के संदर्भ में ऐसी किसी बात का उल्लेख नहीं मिला। ** यहां ध्यान दें, कि इन लोगों का एक षड्यंत्र होता है। इन्होंने यह नहीं कहा कि उपर्युक्त ग्रंथ मान्य नहीं हैं, अथवा प्रक्षिप्त हैं, आदि आदि। इन्होंने "पहले" कहा कि इन्होंने वहां अक्षरशः देख लिया किन्तु मिला नहीं। इनलोगों का दूसरा कपट यह है, कि पहले ये विपक्ष में दिए गए प्रामाणिक ग्रंथ में प्रमाण खोजेंगे कि सामने वाला जो श्लोक या सन्दर्भ दे रहा है, वह है भी नहीं। उचित भी है, हमलोग भी ऐसा ही करते हैं, पहले दिए गए प्रमाणों की पुष्टि अपने स्तर से स्वयं भी करते हैं। किंतु इसके बाद ये लोग क्या करते हैं कि यदि प्रमाण नहीं मिला तो कहेंगे कि वादी बिना प्रमाण के बोल रहा है और यदि प्रमाण मिला तो कह देंगे कि ये ग्रंथ प्रक्षिप्त है, ये ग्रंथ अर्वाचीन है, आदि आदि। अर्थात् चित भी मेरी, पट भी मेरी, यह इनका दुराग्रह होता है।

तो मैंने भी वैष्णवमताब्जभास्कर, संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् से अपनी बात के समर्थन में "अक्षरशः" श्लोकानुवाद युक्त प्रमाण प्रस्तुत किया जो इस शृंखला का तीसरा भाग हुआ। इसमें मैंने पूर्व के सभी कथित खण्डनों का प्रतिखण्डन किया और सन्दर्भ ग्रंथों से प्रमाण भी दिए। अब इसके बाद जैसा कि मैंने कहा, इनकी योजना थी कि अब ग्रंथों में प्रमाण तो मिल गए, तो किसी प्रकार से इन्हें ही प्रक्षिप्त, अर्वाचीन या अप्रामाणिक घोषित कर दिया जाय। इसीलिए इनके दल के कुछ विद्वानों ने हमारे, अपने लेखों के मौलिक लेखक होने पर ही प्रश्न खड़े कर दिए और श्री रामाधार शर्मा ने वैष्णवमताब्जभास्कर, संन्यासोपनिषत्, नारदपरिव्राजकोपनिषत् आदि को अर्वाचीन एवं विवादित बताने का कुप्रयास किया। लेखों के शृंखला की इस चौथी कड़ी में उनका ही लेख प्रतिखण्डित होगा। पहले उनका पक्ष, और फिर मेरा पक्ष क्रमशः लिखते जा रहा हूँ।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

पौण्ड्रकों से सावधान !

आजकल एक विषय ऐसा चल पड़ा है जिसमें, क्या विद्वान्, क्या ज्ञानलवदुर्विदग्ध और क्या मूर्ख, सभी अपना चञ्चु-प्रवेशाधिकार मानते हैं। वह विषय है- सीतानिर्वासन। वैसे भारत स्वतंत्र है और स्वतंत्र है आपकी भारती। परन्तु याद रहे कि यह स्वतंत्रता तभी तक वरेण्य मानी जा सकती है जबतक हम अन्यों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात नहीं करते।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

सत्य ही कहा आपने ! सीता निर्वासन के विषय पर चञ्चु-प्रवेशाधिकार के कारण ही, कोई भी खड़ा होकर ऋषिप्रणीत वाक्यों को प्रक्षिप्त कह दे रहा है। जैसे कूपमंडूक को समुद्रतल का बोध न होने से वह समुद्र को काल्पनिक मानता है, वही हाल अनेकों लोगों के साथ है, जो अपने मन की कल्पना का शास्त्रीय खंडन होने पर ग्रंथों को ही मिलावटी बताने लगते हैं। स्वतंत्रता का अर्थ शास्त्रनिन्दा नहीं होता। अन्यथा विष्णुद्रोही, किन्तु शिवभक्त रावण भी अपनी रक्षा न कर सका, और न ही शिवद्रोही, किन्तु विष्णुभक्त प्रजापति दक्ष का ही कल्याण हुआ।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

शास्त्रीय आलोचना का अधिकार है, पर वह तर्कसम्मत होनी चाहिए कुतर्क नहीं। पर सुनता है कौन ? यहीं पर गोस्वामीपाद याद आते हैं -

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुतिबिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुतिबेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन॥
मारग सोइ जा कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाके नख अरु जटा बिशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

(रामचरितमानस ७.९८.१-८)

सब अपनी-अपनी डफली, अपना अपना राग।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

हमने केवल अनेकानेक ग्रंथों के प्रसङ्गों को प्रस्तुत किया है, यदि आप उनकी प्रस्तुति को कुतर्क मानते हैं या उनके अनुवाद को गलत मानते हैं तो प्रमाण दें। शास्त्र के श्लोकों को सामने रखने वाले कुतर्की हो गए और उन्हें नकली कहने वाले बड़े तार्किक ? आपने यहां

भी क्या खूब कही, सत्य ही है। सत्य ही है, कि वर्ण और आश्रम का पालन नहीं हो रहा है अन्यथा संन्यास के वेदोक्त एवं सम्प्रदायोक्त नियमों का उल्लंघन करके कोई भी व्यक्ति संन्यासी या जगद्गुरु नहीं बन जाता। जब वेदों के अभिन्न अंग उपनिषदों से प्रमाण दिया जाय, तो उन्हें मिलावटी या संदिग्ध कहने वाला व्यक्ति निश्चय ही "श्रुतिविरोध" में रत होता है।

अपनी बातों के पोषण के लिए लोग शास्त्र का खंडन करने लगे हैं और साथ ही दम्भ और झूठ की पराकाष्ठा तो देखिए कि चित्रकूट वाले आपके जगद्गुरु जी ने तो यह भी कह दिया था कि 2018 तक राममंदिर न बना, तो आत्मदाह कर लेंगे, किन्तु उस समय तक न राम मंदिर ही बना, न आत्मदाह ही हुआ तो क्या एक त्रिदण्डी स्वामी के लिये ऐसे अविवेकपूर्ण राजनैतिक वक्तव्य का व्यापार उचित है ? यदि वक्तव्य दे भी दिया श्रीरामभक्ति में तो क्या देहलोलुपता से उससे पीछे हटना उचित है ? और खबरदार ! जो किसी ने उन्हें झूठा कहा तो ... क्योंकि उसे ही तो सन्त कहना है, तो मिथ्याचार, मनमौजी वक्तव्य, और उसके पोषण के लिए एक स्वर से सारे ग्रंथों को नकली कहता जाय !!

कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेचन करने वाली बुद्धि का नाम पंडा है, वह जिसमें है, वही पंडित है। किंतु जहां उचित अनुचित का विचार न करके केवल अपने निजी स्वार्थ हेतु अनेकानेक ग्रंथों, उपनिषदों और रामायणों को नकली कह दिया जाय, और फिर भी जो स्वयं को बड़ा श्रेष्ठ गुरु कहता फिरे, गाल बजाने वाले, ऐसे महापुरुषों से बड़ा पण्डित भला कौन होगा ?

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

आज इन तथाकथित गुरुओं और उनके शिष्यों की स्थिति कितनी दयनीय हो गयी है यह गोस्वामीपाद के शब्दों में ही देखें और आकलन करें -

गुरु शिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥
(रामचरितमानस ७.९९.६-७)
ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभबश करहिं बिप्र गुरु घात॥
(रामचरितमानस ७.९९ (क)

देखिये, आपलोग सोच रहे होंगे कि यह निबन्ध क्यों ? तो इसका उत्तर है - आज के तथाकथित गुरुओं द्वारा शास्त्र-निन्दा और आचार्य-निन्दा। ऐसे मिथ्यावासुदेवों से बचें तथा अपनी संस्कृति बचायें।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

आपने तो अत्यन्त अनुग्रह करके हमारे मन की बात अपने श्रीमुख से ही कह दी। पूरा विषय तो इसी उक्ति में आपने कह दिया। कौन से तथाकथित गुरु और शिष्य में अंधत्व एवं बधिरत्व है, जो शास्त्र को न देखना चाहते, न उसके समर्थन में कुछ सुनना चाहते हैं, ये तो अब समाज से छिपा हुआ नहीं रहा। यही गुरु और शिष्य के अंध-बधिर वाली चौपाई यदि हम गलती से लिख दें तो आपलोग तत्काल फुंसी का भगंदर बना देंगे। क्या अद्भुत बात कही आपने -

गुरु शिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥

आपके वचनों के पूरे भौतिक एवं आध्यात्मिक लक्षण आपके दल में ही आरोपित हो जा रहे हैं, अपने सत्य को इतनी सरलता और सहजता से स्वीकारने वाले आप लोग सदैव प्रणम्य हैं। शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य की निन्दा करने वाले तथा शास्त्रों के प्रमाणों की अवहेलना करने वाले आपके तथाकथित जगद्गुरु जी प्रभृति मिथ्यावासुदेवों से बचें तथा अपनी संस्कृति बचायें।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

हमारे संज्ञान में एक लेख आया है - रामभद्राचार्य-मत-खण्डन उत्तरकाण्ड- सीतात्याग-शम्बूकवध-रजक प्रसङ्ग समीक्षा। विषय देखकर अच्छा लगा, परन्तु पढ़ने के पश्चात् घोर निराशा ही लगी क्योंकि इनकी समीक्षा का एकमात्र ठोस आधार था- " हमारे ग्रन्थों में लिखी एक एक बात सत्य है, प्रामाणिक है और असंदिग्ध है।" इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इनका उद्देश्य गवेषणात्मक प्रतीत हो रहा था; पर गवेषणा है क्या यह डॉ. गूगल के शिष्य क्या समझें ? किसी सद्गुरुके चरणोंमें इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई होती तब न। जैसा कि करपात्री स्वामी ने अपनी पुस्तक रामायण मीमांसा (पृ.. ७८७, तृतीय संस्करण) में स्पष्टतः लिखा है -" जैसे समुद्र-जल स्वयं समुद्र से ग्रहण करने से खारा ही जल मिलता है। परन्तु वही जल मेघ के द्वारा प्राप्त होता है तो मधुर होता है। उसी तरह मनमाने वेद

को पड़कर उसका मनमाना अर्थ ग्रहण करने पर वह खारे जल के समान ही अग्राह्य होगा। जैसे मेघ के द्वारा आनीत वही जल मधुर होता है, उसी तरह गुरु-परम्परा से या आचार्य-परम्परा से अधीत वेद एवं वेदार्थ ही ग्राह्य एवं उपयोगी होगा। वेद को अनुश्रव कहते हैं जिसका अर्थ ही यह है कि वे गुरु-परम्परा से ही सुने जाते हैं। उनका निर्माण नहीं होता। इसी प्रकार अर्थज्ञान भी पारम्पर्य से ही प्राप्त करना चाहिये इसके लिये भी प्रमाण हैं

- 'आचार्यवान् पुरुषो वेद (छा. उप. ६।१४।२)', 'आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति (छा. उप. ४।९।३)','तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् (मुण्ड. उप. १।२।१२)' अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्राप्त विद्या ही फलदायिनी होती है। ब्रह्म के जानने के लिए समित्पाणि होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का ही अभिगमन करना चाहिये। आजकल पुस्तकें सुलभ हैं, अनेक टीकायें और तर्जुमे भी हैं। उन्हीं के आधार पर लोग वेद और पुराण पढ़ते हैं, इसीलिए समुद्र के खारे पानी के समान ही उनको वेदार्थ सर्वथा अग्राह्य ही प्रतीत होता है।"

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

आपकी निराशा का आधार क्या है ? यह कि मैं आपलोगों की तरह शास्त्रों को तोड़ने मरोड़ने के स्थान पर श्रद्धायुक्त होकर उनकी बातों को यथावत् स्वीकार करता हूँ ? यदि ये बात है तो आप जैसों की निराशा स्वाभाविक है, क्योंकि जब भ्रमित करने पर भी हनुमान जी भ्रमित न हों तो कालनेमि निराश होगा ही। शास्त्रों पर जिसकी निष्ठा हो, जो उन्हें प्रामाणिक और असंदिग्ध माने, ऐसे व्यक्ति से वे लोग सदैव निराश ही रहते हैं, जो लोग शास्त्रों को लौकिक उपन्यासों की तरह समझकर उनकी सैद्धान्तिक हत्या करते रहते हैं।

मैंने अपने सीतात्याग आदि लेखों में कौन सा प्रमाण गूगल से लिया है जो उक्त ग्रंथों में नहीं है, अथवा किसी और के लेख से चुराया है, इसका तो इन्होंने कोई प्रमाण दिया नहीं है, और न ही ये बताया कि उनमें से कौन सा प्रमाण गलत है ! केवल संदेह के कारण तो कुछ भी आरोप लगाया जा सकता है। रही बात सद्गुरु के चरणों की, तो स्वामी करपात्री जी जैसे सद्गुरु के द्वारा शिक्षित होकर भी रामभद्राचार्य जी ने करपात्री स्वामी जी के ही शास्त्रीय सिद्धांत - विदेशयात्रा निषेध की अवमानना करते हुए अमेरिका आदि की विदेशयात्रायें की, जो निश्चय ही आपके अनुसार उनकी गुरुभक्ति ही होगी। सद्गुरु के चरणों में तो हम सदैव रहते हैं, बस ऐसे गुरुओं से दूर रहते हैं जो अपनी प्रतिष्ठा के लिए कभी

भी किसी भी ग्रंथ को संदिग्ध या प्रक्षिप्त घोषित करने में थोड़ा भी संकोच नहीं करते। ऐसा शास्त्रापराध ब्रह्महत्या के समान है। स्वामी करपात्री जी ने रामायण मीमांसा में समुद्र जल, वेदार्थ और शिष्य के विषय में जो लिखा है, वह उक्ति यहां उल्लिखित करने वाले आप जैसे महानुभाव सम्भवतः उसी रामायण मीमांसा में यह पढ़ना भूल गए कि स्वामी करपात्री जी ने कैसे उत्तरकांड को वाल्मीकीय रामायण का मूल और वास्तविक अंश बताया है। कैसे उन्होंने सीतात्याग, शम्बूक वध आदि प्रसङ्गों को प्रामाणिक और सर्वथा सत्य सिद्ध किया है। समुद्र जल के स्थान पर उसी प्रसङ्ग को पढ़ लेते तो ऐसी बात रामाधार शर्मा जी नहीं करते।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

यदि सचमुच इनके गुरु समर्थ हैं और अपने शिष्य की कृति उनके संज्ञान में है तो आज उन्हें अवश्य अपने इस शिष्य पर पश्चात्ताप हो रहा होगा क्योंकि संन्यासी की निन्दा का कुफल उन्हें अवश्य पता होगा। वस्तुतः उपरोक्त समीक्षा के व्याज से गुरु भागवतानंद ने एक संन्यासी (जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य) की निन्दा ही अपना विषयवस्तु रखा।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

यदि चित्रकूट वाले कथित जगद्गुरुओं के भी गुरु जीवित हों या आपके जैसे हास्यास्पद खण्डन लेख लिखने वाले लोगों के गुरु भी समर्थ हों एवं उन्हें इसका बोध होगा, तो उन्हें भी अवश्य निराशा होगी कि कैसे उनके शिष्य अपनी निजी एवं नश्वर प्रतिष्ठा के चक्कर में उन्हीं मान्य ग्रंथों पर आघात कर रहे हैं, जिनकी रक्षा के लिए सम्प्रदायोक्त आचार्यों का दिव्यावतार हुआ था। संन्यासी की निंदा का कुफल हमें मिलेगा या नहीं, अथवा निंदित व्यक्ति की निंदा हुई भी या नहीं, अथवा वह व्यक्ति निंदनीय है या नहीं, ये बात परलोक में तो बाद में सिद्ध हो ही जाती है, किन्तु जिन्हें दण्डी संन्यासी बताया जा रहा है, उनके संन्यासाधिकार पर शास्त्रीय प्रश्नचिह्न तो लग ही गया है। मैंने किसी व्यक्ति की निंदा का विषयवस्तु नहीं रखा, अपितु उसके वक्तव्य के खण्डन का विषय रखा। इसीलिए लेखों के सैकड़ों पंक्तियों में, अनेकानेक अनुच्छेदों में मात्र दो चार अनुच्छेद को ही आप इस विषय का मान सकते हैं, वो भी शास्त्रीय प्रमाण के आधार पर ही लिखे गए हैं, कोई निजी द्वेष से, बिना प्रमाण के नहीं।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

उन्होंने (श्रीभागवतानंद गुरु ने) लिखा - "संन्यासोपनिषत् के अनुसार अङ्गविकल व्यक्ति संन्यासी बनने का अधिकारी ही नहीं है।..... और संन्यास ले भी लें तो भी महावाक्योपदेश, प्रवचन आदि के अधिकारी नहीं हैं। .... " इस कथन की पुष्टिमें उन्होंने प्रथमतः तो संन्यासोपनिषत् का समर्थन दिया है और द्वितीयतः श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर का। अब इनके उद्धृत दोनों ही ग्रन्थोंपर आधारित आरोप की सच्चाई देखी जाय।

(१) "संन्यासोपनिषत् के सम्बन्धमें अपनी पुस्तक 'धर्मशास्त्र का इतिहास' (प्रथम भाग, चतुर्थ संस्करण, पृ. ४९०) में भारत रत्न, महामहोपाध्याय डॉ. पाण्डुरङ्ग वामण काणे लिखते हैं -"परमहंस, ब्रह्म, नारद-परिव्राजक एवं संन्यास उपनिषदों में संन्यास के विषय में बहुत से नियम हैं। किन्तु इन उपनिषदों की ऐतिहासिकता एवं सच्चाई पर सन्देह है, अतः हम धर्मसूत्रों एवं प्राचीन स्मृतियों के नियमों की ही चर्चा करेंगे।" अब आप समझ सकते हैं कि इनके कथन कितने प्रामाणिक हैं! यहाँ ध्यातव्य यह है कि वेद चक्षु कहता किसे है ? मनुस्मृति कहती है -

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्। अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रं इति स्थितिः ॥
(मनुस्मृति १२.९४)

अर्थात् पितृ, देव तथा मनुष्यों के नेत्र वेद हैं। वेद व शास्त्र सभी शंकाओंसे रहित तथा प्रमाणों की सीमा से बाह्य अर्थात् स्वतः प्रमाण हैं। यही शास्त्र की मर्यादा है। इतना ही नहीं, छान्दोग्योपनिषत् की दृष्टि में तो -

तस्माद्वा एतँ सेतुं तीर्त्वान्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतँ सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥
(छान्दोग्योपनिषत् ८. ४. २)

इस सेतुरूप परमात्मा को जो भक्त प्रेम से वश में करके उसे पार करता है अर्थात् परमात्मा की मर्यादा के अनुसार संसार यात्रा सम्पन्न करता है वह अपने प्रारब्ध से अन्धा होता हुआ भी सेतुपरमात्मा की कृपा से अनन्ध अर्थात् दिव्यदृष्टिमान हो जाता है।

(नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ भवसागर तरहिं॥ (रामचरितमानस ६।२)) यहाँपर शाङ्कर भाष्य भी द्रष्टव्य है- तस्माद्वा एतमात्मानं सेतुं तीर्त्वा प्राप्यानन्धो भवति देहवत्त्वे पूर्वमन्धोऽपि सन्। ..... अर्थात् इसीसे सेतुरूप इस आत्माको तरकर- प्राप्त होकर देहवान् होनेके समय पहले अन्धा होनेपर भी अनन्ध हो जाता है। ...अतः इनका यह प्रमाण श्लथीभूत हो गया।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

डॉ पांडुरंग वामण काणे जी कोई धर्माधिकृत व्यक्ति नहीं थे जिन्हें इस बात का एकाधिकार था कि क्या प्रक्षिप्त है और क्या नहीं ! लगभग सभी विश्वविद्यालयों में जो परिवेश है, जो पाठ्क्रम है, जो पीएचडी की, जो शोधकर्ताओं की सामूहिक बहुसांख्यिकी है, वह घोर वामपंथी है। इस बात को सभी धर्मनिष्ठ विद्यार्थी और अध्यापक जानते हैं। डॉ पांडुरंग भी मैक्समूलर के बाद ही हुए हैं। थियोसोफिकल सोसाइटी और अंग्रेजों के सहयोग से बना आर्य समाज तो पुराणों और अधिकांश उपनिषदों को ही नहीं मानता है, महाभारत और वाल्मीकीय रामायण का लगभग भाग संदिग्ध ही बताता फिरता है। तो ये सब भ्रामक वातावरण षड्यंत्र से बनाया गया और उससे बड़े लेखक भी अछूते नहीं रहे।

आपका सम्पूर्ण तर्क मात्र इस बात पर आश्रित है कि संन्यासोपनिषत् एवं नारद-परिव्राजक के विषय में डॉ पांडुरंग ने एक पुस्तक में ऐसा लिखा। उनकी एक पुस्तक के आधार पर आप उपनिषद्ब्रह्मेंद्र के भाष्य, स्वामी परमानंदतीर्थ के संन्यास सम्बन्धी सन्दर्भों को नकार नहीं सकते। ये सभी ख्यात धर्माधिकारी हुए हैं। साथ ही विद्यारण्य स्वामी जी का प्रमाण तो और भी पुष्ट है जहां उन्होंने मुक्तिकोपनिषत् के वचन उद्धृत किये हैं। उसी मुक्तिकोपनिषत् की सूची में संन्यासोपनिषत् आदि भी है।

उपनिषदों की ऐतिहासिकता एवं सच्चाई पर संदेह क्यों है, इसका कारण और प्रमाण भी कुछ नहीं दिया गया। केवल षड्यंत्र के तहत - संदेह है, ऐसा कह दिया। यदि उपनिषदों पर संदेह है तो धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों पर क्यों संदेह नहीं है ? उस समय तक तो आर्य समाज वाले भी स्मृतियों को प्रक्षिप्त बताते फिर रहे थे, फिर डॉ पांडुरंग को केवल उपनिषदों में ही संदेह क्यों दिखा, स्मृतियों में क्यों नहीं ? इसका स्पष्ट विवेचन नहीं मिला, इसीलिए पाठक समझ सकते हैं कि प्रक्षिप्तवादियों के कथन कितने प्रामाणिक हैं। मैंने तो अपने कथन के समर्थन में बहुत कुछ कह दिया है। अब वेदोक्त चक्षु की बात करते हैं।

मनुस्मृति के श्लोक से हमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि इस श्लोक से इन्होंने स्वयं अपना ही खण्डन कर दिया है। एक ओर ये कहते हैं कि वेद चक्षु हैं, दूसरी ओर प्रामाणिक १०८ उपनिषदों की सूची के उन उपनिषदों को अप्रामाणिक बताते हैं, जिसके आधार पर ये अशास्त्रीय सिद्ध होंगे और इस प्रकार से स्वयं ही वेदविरुद्ध हो जाते हैं, इसके बाद हमें कहते हैं कि ये लोग बड़े चक्षुष्मान् हैं। इन्होंने ऊपर कहा कि वेद और शास्त्र सभी शंकाओं से रहित, प्रमाणों की सीमा से बाह्य, अर्थात् स्वतः प्रमाण हैं। किंतु फिर भी ये लोग उन स्वतः प्रमाणों एवं सभी शंकाओं से रहित ग्रंथों, उपनिषदों एवं श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों को भी अप्रामाणिक, प्रक्षिप्त बता रहे हैं।

मुझे इस बात पर हंसी आती है कि श्री रामाधार शर्मा जी मेरे विरुद्ध लेखन कर रहे हैं या मेरे समर्थन में, क्योंकि इनके दिए गए श्लोक से मेरा ही पक्ष दृढ़ होता है। सर्वप्रथम इन्होंने कहा था कि मेरी समीक्षा पढ़ने के बाद इन्हें घोर निराशा ही लगी, क्योंकि मेरी समीक्षा का एकमात्र ठोस आधार था - "हमारे ग्रन्थों में लिखी एक एक बात सत्य है, प्रामाणिक है और असंदिग्ध है"। अर्थात् मैं ग्रंथों की प्रत्येक बात को सत्य मानता हूँ, इस बात से इन्हें निराशा हुई। अब ये स्वयं ही मनुस्मृति का श्लोक लिखकर कह रहे हैं कि सभी शास्त्र, वेद आदि असंदिग्ध, शंकाओं से रहित और स्वतः प्रमाण हैं। तो बताईये, हम तो स्मृतियों के अनुसार ही चल रहे हैं, फिर आप स्वयं ही मनुस्मृति के वाक्यों के विरुद्ध होकर शास्त्रों में शंका और प्रक्षेपण क्यों आरोपित कर रहे हैं ?

अब मैं यहां वही बात कहता हूँ, जो आपने मुझे कहा था - "वेद को अनुश्रव कहते हैं। जिसका अर्थ ही यह है कि वे गुरु-परम्परा से ही सुने जाते हैं। उनका निर्माण नहीं होता। इसी प्रकार अर्थज्ञान भी पारम्पर्य से ही प्राप्त करना चाहिये इसके लिये भी प्रमाण हैं - 'आचार्यवान् पुरुषो वेद (छा. उप. ६।१४।२)', 'आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति (छा. उप. ४।९।३)','तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् (मुण्ड. उप. १।२।१२)' अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्राप्त विद्या ही फलदायिनी होती है। ब्रह्म के जानने के लिए समित्पाणि होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का ही अभिगमन करना चाहिये। आजकल पुस्तकें सुलभ हैं, अनेक टीकायें और तर्जुमे भी हैं। उन्हीं के आधार पर लोग वेद और पुराण पढ़ते हैं, इसीलिए समुद्र के खारे पानी के समान ही उनको वेदार्थ सर्वथा अग्राह्य ही प्रतीत होता है। इसीलिए गूगल की अपेक्षा सद्गुरु की शरण ग्रहण करें"।

एक ओर अपने कथित गुरुओं को संन्यासाधिकार से युक्त एवं चक्षुष्मान् सिद्ध करने के लिए आप कहते हैं कि वेद ही चक्षु हैं, वेदों में सन्देह नहीं, वे स्वतः प्रमाण हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि वेद को अनुश्रव कहते हैं, जिसका अर्थ ही यह है कि वे गुरु-परम्परा से ही सुने जाते हैं। उनका निर्माण नहीं होता। इसी प्रकार अर्थज्ञान भी पारम्पर्य से ही प्राप्त करना चाहिये। फिर कहते हैं कि संन्यासोपनिषत् अर्वाचीन है, उसका निर्माण बाद में हुआ। जब वेद अपौरुषेय हैं, वेद और वेदार्थ का निर्माण सम्भव नहीं है तो जिसका निर्माण सम्भव नहीं, उसका काल निर्धारण भी सम्भव नहीं।

जिसका काल निर्धारण भी संभव नहीं, उसका अर्वाचीन या प्राचीन होना भी सम्भव नहीं, वह तो नित्य है। यदि कुछ अन्य ग्रंथों को अर्वाचीन होने से न भी मानें तो फिर किस कारण से गोस्वामी जी की अर्वाचीन रामचरितमानस से प्रमाण देते हैं ? क्यों उनके नाम पर तुलसी पीठ बनाकर और दान मांगकर रोटियां सेंकी जा रही हैं ? यदि अर्वाचीन लेखन मान्य नहीं तो फिर आपने किस आधार पर पाण्डुरंग काणे के "अर्वाचीन" संदेहास्पद लेखन के आधार पर उनसे दो सौ वर्ष पूर्व के ब्रह्मेन्द्र भाष्य को नकारते हुए मेरे कथन को अप्रामाणिक कहा था ? ब्रह्मेन्द्र भाष्य, जो संन्यासोपनिषत् एवं नारद परिव्राजकोपनिषत् के साथ साथ १०८ उपनिषदों पर लिखा गया था, वो भी इस देश में मैक्समूलर और मैकाले के आने से पहले, उसके सामने तो पाण्डुरंग जी का लेखन और भी अर्वाचीन है, फिर आप "अर्वाचीन" को मान्यता देकर प्राचीन को क्यों नकार रहे हैं ?

ध्यान रहे कि धर्म की दृष्टि में १७५० में कांची कामकोटि के संन्यासी के भाष्य की अधिक मान्यता है, न कि परवर्ती और "अर्वाचीन" पाण्डुरंग काणे जी की, जिन्होंने केवल "संदेह" (न कि प्रमाण) के आधार पर संन्यासोपनिषत् को अप्रामाणिक कहा। एक और हास्यास्पद बात मैं बताऊं ? जिन डॉ पाण्डुरंग काणे के एक वक्तव्य के आधार पर आप मेरा खण्डन करने का निरर्थक प्रयास करते हैं, उन्हीं पाण्डुरंग काणे ने १९१३ ई० में भवभूति की उत्तररामचरितम् अपनी लिखी भूमिका के साथ प्रकाशित करवाई थी और उत्तररामचरितम् में आचार्य भवभूति ने सीतात्याग आदि का वृत्तांत प्रामाणिक मानते हुए ही वर्णन किया है, यह सर्वविदित है। मुक्तिकोपनिषत् का प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है, श्रीराम दरबार से, जहां सभी लोग बैठे हुए हैं।

भक्त्या शुश्रूषया रामं स्तुवन्पप्रच्छ मारुतिः।
राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः ॥

इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः। त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये ॥
अनायासेन येनाहं मुच्येयं भवबन्धनात्। कृपया वद मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम् ॥

पवनात्मज हनुमानजी ने भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए राम जी से पूछा - हे रामजी ! आप परमात्मा हैं, सच्चिदानंदविग्रह हैं ... मैं इस समय आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे रामजी ! मैं मुक्ति के लिए तत्वतः आपके रूप को जानना चाहता हूँ। जिस प्रकार से अनायास ही मैं भवसागर से मुक्त हो जाऊंगा, उस उपाय को बताएं। इस प्रकार से हनुमानजी के प्रश्न करने पर श्रीराम जी ने कहा -

साधु पृष्टं महाबाहो वदामि शृणु तत्त्वतः। वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं समुपाश्रय ॥

हे महाबाहो ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं अपना तात्विक स्वरूप बताता हूँ। मैं वेदान्त में ही प्रतिष्ठित हूँ, इसीलिए तुम वेदान्त का ही आश्रय लो। हनुमानजी ने पुनः प्रश्न किया -

वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद। हनूमत् शृणु वक्ष्यामि वेदान्तस्थितिमञ्जसा ॥

हे रघुश्रेष्ठ ! वेदान्त किन्हें कहते हैं, वे कहां स्थित हैं ? (तब रामजी ने कहा -) हे हनुमान् ! मैं तुरंत वेदान्त की स्थिति बताता हूँ, उसे सुनो।

निश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः।
तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः॥
(मुक्तिकोपनिषत्, प्रथम अध्याय, ४-९)

ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः।
तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा॥
ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसङ्ख्यकाः।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज॥
सहस्रसङ्ख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे॥
एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता।
(मुक्तिकोपनिषत्, प्रथम अध्याय, ११-१४)

मुझ विष्णु के श्वास प्रश्वास से अत्यंत विस्तृत वेद निःसृत हुए, जिनमें वेदान्त उसी प्रकार से प्रतिष्ठित है, जैसे तिल के अंदर तेल होता है। ऋग्वेद आदि के विभाग के अनुसार चार प्रकार के वेद हैं, जिनकी अनेक शाखाएं एवं उपनिषत् हैं। हे पवनतनय ! ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएं हैं एवं यजुर्वेद की एक सौ नौ शाखाएं हैं। (कूर्मपुराण आदि के मत से १०१ शाखा है) हे विपक्षी को कष्ट देने वाले हरि (हनुमान्) ! सामवेद की एक हज़ार एवं अथर्ववेद की पचास शाखाएं हैं। एक एक शाखा के लिए एक एक उपनिषत् मान्य है। (इसका अर्थ उपनिषदों एवं वैदिक शाखाओंकी न्यूनतम संख्या ११८० होनी चाहिए, किन्तु कालक्रम से परम्परा के विलुप्त होने पर अब बीस पच्चीस शाखा एवं लगभग दो सौ उपनिषदों की ही प्राप्ति सम्भव है)

इयं कैवल्यमुक्तिस्तु केनोपायेन सिद्ध्यति। माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ॥
तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिषदं पठ। ज्ञानं लब्ध्वा चिरादेव मामकं धाम यास्यसि॥
तथापि दृढता न चेद्विद्ज्ञानस्याञ्जनासुत। द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय ॥
विदेहमुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ। तासां क्रम सशान्तिं च शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः॥

कैवल्य मुक्ति कैसे होती है ? इस विषय में बताता हूँ। जो मुक्ति की इच्छा रखते हैं उन्हें केवल मांडूक्योपनिषत् के अध्ययन से भी मोक्ष हो जाएगा, इतना ही पर्याप्त है। फिर भी ब्रह्मज्ञान की सिद्धि न हो तो दस उपनिषदों (ईश, केन, कठ आदि) को पढ़ो। इससे ज्ञान प्राप्त करके तुम शीघ्र ही मेरे धाम को चले जाओगे। हे अंजनीपुत्र ! यदि फिर भी ज्ञान की दृढ़ता प्राप्त न हो तो बत्तीस उपनिषदों का अभ्यास करके मुक्त हो जाओ।देहजन्य बन्धन से मुक्ति की इच्छा शेष हो, तो १०८ उपनिषदों को पढ़ो। मैं तत्वपूर्वक उनके शांतिपाठ के साथ उनका क्रम बताता हूँ, सुनो।
(इसके बाद रामजी ने सबके नाम गिनाए हैं किंतु विस्तार भय से मैं पूरा नहीं लिख रहा हूँ, केवल उन दोनों अंशों को लिख रहा हूँ, जहां संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् का नाम प्रामाणिक उपनिषदों की सूची में स्वयं श्रीराम जी ने हनुमानजी को बताया है)

तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका। अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका॥
(मुक्तिकोपनिषत्, प्रथम अध्याय श्लोक - ३६)

तुरीयातीतोपनिषत्, *संन्यासोपनिषत्,* परिव्राजकोपनिषत्, अक्षमालिकोपनिषत्, अव्यक्तोपनिषत्, अक्षरोपनिषत्, पूर्णोपनिषत्, सूर्योपनिषत्, अक्ष्युपनिषत्, अध्यात्मोपनिषत् एवं

कुंडिकोपनिषत् ...

विद्या देवी ब्राह्मण के पास जाकर कहती है मुझे गोपनीय रखो, द्वेषी, धैर्यरहित, निस्तेज और हठ करने वाले धूर्त के सामने मुझे प्रकाशित मत करना, इससे मैं और भी वृद्धि को प्राप्त होऊंगी।

असूयकायानृजवे शठाय मा मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्॥
(मुक्तिकोपनिषत्)

गृहीत्वाष्टोत्तरशतं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः। प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥

(श्रीराम जी कहते हैं) - जो श्रेष्ठ ब्राह्मण इन १०८ उपनिषदों को पढ़ेंगे, वे जितने दूर तक प्रारब्धक्षय सम्भव है, वहां तक जीवन्मुक्त हो जाएंगे (अर्थात् शेष अभुक्त कर्मफल भोगने तक ही संसार में रहना होगा, उसके बाद के नवीन कर्मफल का निर्माण न होगा और भोगना नहीं पड़ेगा)

ततः कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते। वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्रसंशयः॥

फिर काल के वशीभूत होकर जब प्रारब्ध का नाश हो जाएगा, तब देहमुक्ति की निमित्त मेरी मुक्ति को प्राप्त कर जाएंगे, इसमें संशय नहीं है।

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरशतम्। सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम् ॥

सभी (११८०) उपनिषदों के मध्य, ये सारभूत १०८ उपनिषदों का समूह है, जिसे सुनने मात्र से सभी पापसमूहों का नाश हो जाता है।

मयोपदिष्टं शिष्याय तुभ्यं पवननन्दन। इदं शास्त्रं मयादिष्टं गुह्यमष्टोत्तरं शतम् ॥

हे पवननंदन ! तुम मेरे शिष्य हो, इसीलिए मैंने तुम्हें यह बताया। ये शास्त्र मेरे द्वारा उपदिष्ट है, इन १०८ उपनिषदों को गुप्त रखना।

इदमष्टोत्तरशतं न देयं यस्य कस्यचित्। नास्तिकाय कृतघ्नाय दुराचाररताय वै ॥

ये १०८ उपनिषत् जिस-किसी को नहीं दे देना है। नास्तिक, कृतघ्न और पापकर्म में रत व्यक्ति को कभी न दे।

मद्भक्तिविमुखायापि शास्त्रगर्तेषु मुह्यते। गुरुभक्तिविहीनाय दातव्यं न कदाचन ॥

जो मेरी भक्ति से विमुख है वह शास्त्रों के गड्ढे में गिर कर मोहित होता है (उनके वास्तविक अर्थ को नहीं जान पाता है)। जो गुरुभक्ति से हीन है, उसे कभी न दे।

सेवापराय शिष्याय हितपुत्राय मारुते। मद्भक्ताय सुशीलाय कुलीनाय सुमेधसे ॥
(मुक्तिकोपनिषत्)

हे मारुते ! जो सेवापरायण शिष्य हो, प्रिय पुत्र हो, मेरा भक्त हो, शीलवान् हो, कुलीन एवं अच्छी बुद्धि वाला हो ... (उसे ही दे)

प्रश्नमुण्डकमाण्डुक्याथर्वशिरोऽथर्वशिखाबृहज्जाबालनृसिंहतापनीनारदपरिव्राजकसीता शरभमहानारायणरामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिव्राजकअन्नपूर्णासूर्यात्म - पाशुपतपरब्रह्मत्रिपुरातपनदेवीभावनाब्रह्मजाबालगणपतिमहावाक्यगोपालतपनकृष्ण - हयग्रीवदत्तात्रेयगारुडानामथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां
भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥
(मुक्तिकोपनिषत्)

प्रश्नोपनिषत्, मुंडकोपनिषत् .... नृसिंहतापनीयोपनिषत्, *नारदपरिव्राजकोपनिषत् ,* सीतोपनिषत् .... दत्तात्रेयोपनिषत्, गारुडोपनिषत् ... ये ३१ अथर्ववेद के उपनिषत् हैं, जिनका शांतिपाठ "भद्रं कर्णेभिः ..." मन्त्र से होता है।

केनछान्दोग्यारुणिमैत्रायणिमैत्रेयीवज्रसूचिकायोगचूडामणिवासुदेवमहत्संन्यासाव्यक्त - कुण्डिकासावित्रीरुद्राक्षजाबालदर्शनजाबालीनां सामवेदगतानां
षोडशसंख्याकानामुपनिषदानामाप्यायन्त्विति शान्तिः ॥
(मुक्तिकोपनिषत्)

केनोपनिषत्, छान्दोग्योपनिषत् .... महदोपनिषत्, *संन्यासोपनिषत्,* अव्यक्तोपनिषत् .... जाबाल्युपनिषत्, ये १६ सामवेद के उपनिषत् हैं, जिनका शांतिपाठ " आप्यायन्तु ममांगानि ... " मन्त्र से होता है।

मुमुक्षवः पुरुषाः साधनचतुष्टयसंपन्नाः श्रद्धावन्तः सुकुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्यगुणवन्तमकुटिलं सर्वभूतहितेरतं दयासमुद्रं सद्गुरुं विधिवदुपसङ्गम्योपहारपाणयोऽष्टोत्तरशतोपनिषदं विधिवदधीत्य

श्रवणमननिदिध्यासनानि नैरन्तर्येण कृत्वा प्रारब्धक्षयाद्देहत्रयभङ्गं
प्राप्योपाधिविनिर्मुक्त घटाकाशवत्परिपूर्णता विदेहमुक्तिः। सैव कैवल्यमुक्तिरिति।
(मुक्तिकोपनिषत्)

मोक्ष की इच्छा रखने वाले व्यक्ति, साधनचतुष्टय से युक्त होकर, श्रद्धा से युक्त होकर, अच्छे कुल में उत्पन्न, वेदज्ञ, शास्त्र के माध्यम से कृपा करने वाले गुण से युक्त, सभी प्राणियों के हित में रत, दया के सागर, सद्गुरु के पास जाकर विधिवत् बैठकर, हाथ में पुष्पादि मांगलिक उपहार लेकर, उनसे इन १०८ उपनिषदों को विधिपूर्वक पढ़कर, फिर सुनकर, चिंतन मनन, निदिध्यासन करके, अपने अंदर धारण करके प्रारब्ध का नाश करके, भौतिक, सूक्ष्म एवं कारण आदि देहत्रयी को भंग करके, जैसे घड़े के फूटने में घटाकाश का महदाकाश में लोप हो जाता है, वैसे ही देह से मुक्त होकर ब्रह्मलीन हो जाते हैं, यही कैवल्यमुक्ति कहलाती है।

प्रतीत होता है कि चित्रकूट वाले बाबाजी के पास उनके शिष्यों ने विधिवत् इन १०८ उपनिषदों को स्वयं ऐसी रामाज्ञा होने पर भी नहीं पढ़ा है। यदि पढ़ा होता तो उसमें संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् की प्रामाणिकता पर संदेह नहीं करते। किन्तु यह बात भी है कि यदि पढ़ा होता तो बाबाजी के जगद्गुरु, संन्यास आदि बहुत सी बातों पर प्रश्न लगता, इसीलिए स्वयं गुरुमुख से पढ़ा नहीं। साथ ही जिन्होंने पढ़कर, इन लोगों के विपक्ष में लिखा, उनके सामने पाण्डुरंग काणे के वचन का आश्रय लेकर उपनिषदों को ही गलत सिद्ध किया और हठ की पराकाष्ठा तो तब होती है जब इन्होंने उन्हीं पाण्डुरंग काणे के द्वारा संपादित एवं प्रकाशित भवभूति के उत्तररामचरितम् में सीतात्याग के प्रसङ्ग को नहीं माना है।

फिर इन्हें मनुस्मृति के आधार पर शास्त्रों एवं ग्रंथों, वेदों को असंदिग्ध तथा शंकाओं से परे भी बताना है किन्तु हम यदि कहें कि मैं ग्रंथों की एक एक बात को बिना शंका के सत्य मानता हूँ, तो इन्हें उसपर निराशा भी व्यक्त करनी है। मतलब चल क्या रहा है बन्धु ? आप लोग हमारी धज्जियां उड़ाने आये थे या अपनी ? आपके ही वचनों से, आपके ही प्रमाणों से, आपके सम्प्रदाय के ग्रंथों से ही आपकी बात खण्डित हो जाती है। अब आते हैं, आपके द्वारा दिये गए छान्दोग्य श्रुति के प्रमाण पर। जिस मन्त्र एवं भाष्य का सन्दर्भ आपने दिया है, उसमें दूर दूर तक संन्यासाधिकार का कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। रही बात वहां अंधत्व के निवारण की, जो ब्रह्मज्ञान के बाद हो जाता है तो यह ध्यातव्य है कि विदुर

जी भी ब्रह्मज्ञानी थे किंतु उन्होंने सदण्ड संन्यास नहीं लिया और न ही महावाक्योपदेश किया था। आपके प्रमाण में संन्यास का नहीं, अपितु देहाभिमान से मुक्त आत्मा का कैवल्य प्रकरण है। यह स्थिति दण्डसंन्यास के बिना ही तपस्विनी शबरी, गृहस्थ विप्र सुदामा, वानप्रस्थी शरभंग आदि को प्राप्त थी। कम से कम यह तो देख लें कि कौन सी बात के खण्डन में कौन सा तर्क दिया जा रहा है, ऊपर से आप हमें ही कुतर्की कहेंगे। चित्रकूट के कथित जगद्गुरु उस स्थिति को प्राप्त नहीं हो गए हैं कि देहाभिमान से परे होकर देहजन्य वैकल्य से मुक्त हो जाएँ। देहाभिमान से मुक्त व्यक्ति आद्यशंकराचार्य जी की भांति परकाया प्रवेशादि में इच्छानुसार दक्ष होता है। एक और प्रमाण देखें -

दशोपनिषदश्रैष्ठ्यमष्टोत्तरशतादपि। अथवा साम्यमेवास्तां समान्यादुभयोरपि ॥

एवं

यथात्र कृतयज्ञस्य फलं स्वर्गेऽनुभूयते। तथा दशोक्तवाक्यानां फलमष्टोत्तरे शते॥

(वशिष्ठकृत तत्त्वसारायणोक्त श्रीरामगीता, महावाक्यार्थविवरण नामक चौदहवां अध्याय)

श्रीराम जी कहते हैं - १०८ उपनिषदों से दस उपनिषत् श्रेष्ठ हैं, अथवा दोनों भी समानता भी समझनी चाहिये क्योंकि जैसे यहाँ किये गए यज्ञ का फल स्वर्गलोक में अनुभव किया जाता है, वैसे ही दस उपनिषदों में कही गयी बातों का फल १०८ उपनिषदों में है।

आत्मानं स्वरणिं विधाय सकलानीशादिमुक्त्यन्तिमान्,
वेदान्तानपि चोत्तरारणिमयं जातस्तु गीतानलः।
सत्तर्कोन्मथनात्त्वदार्तिसमिधं दग्ध्वा ज्वलन्ते हृदि
त्वद्वाग्भूय समस्तसज्जनभवारण्यं दहत्वाश्रितम्॥

(तत्त्वसारायण, उपासनाकाण्ड, द्वितीय पादोक्त श्रीरामगीता, अध्याय - १८, श्लोक – ३०)

'हे हनुमान् ! आत्मा को प्रधान अरणि बनाकर ईशावास्योपनिषत् से मुक्तिकोपनिषत् पर्यन्त सभी उपनिषदों में कहे गए वेदान्त को उत्तर अरणि बनाने से इस श्रीरामगीतारूपी अग्नि का प्राकट्य हुआ है। तुम्हारे उचित तर्कों के मन्थन से तुम्हारी कष्टरूपिणी समिधा को जलाकर तुम्हारे हृदय में प्रज्वलित होती हुई, तुम्हारे वचनों से यह गीता सभी सज्जनों की भवाटवी को दग्ध करने का निमित्त बने।'

अब इसपर जो आप फिर से कुतर्क करें कि हम तो मुक्तिकोपनिषत् को भी नहीं मानते तो हम यही कहेंगे कि मानेंगे कैसे ? मानने के लिए सद्विवेक चाहिए और सद्विवेक के लिए

पुण्यबल। किन्तु अंग्रेजों के बाद हुए कथित समीक्षक, लेखक, प्रोफेसर आदि ने ऐसा भ्रामक पाठ्क्रम बनाया और ऐसी मानसिकता का प्रचार किया कि अमुक समय तक वैदिक काल रहा, फिर वेदों की रचना हुई, उपनिषदों की रचना हुई, उसे किसी ने स्वयं से बनाया, फिर उस काल में गोमांस खाते थे या आर्य बाहर से आये आदि आदि कि कोई भी उठकर आजकल कहता फिर रहा है कि ये अर्वाचीन है, ये प्राचीन है। वे प्रक्षिप्त है, ये सही है।

देश के एक बड़े नेता, जिनके जन्मदिन के ऊपर सरकारी शिक्षक दिवस मनाते हैं, वो तो यहां तक लिख गए कि कोई वेदव्यास थे ही नहीं, गीता को बाद में कुछ कुछ लोगों ने लिखा। तो इसमें सनातन धर्म क्या करें ? चार्वाक वाले ब्रह्म को नहीं मानते, आप मुक्तिकोपनिषत् को नहीं मानते, उलूकगण सूर्य को नहीं मानते, शिशुपाल कृष्ण को नहीं मानते, इसमें ब्रह्म और उपनिषदों का क्या दोष ?

प्रक्षिप्तवाद की इस कुत्सित विचारधारा का जन्म तब हुआ, जब अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी के पूर्वाग्रही एवं वेतनभोगी कर्मचारी मैक्समूलर को यह कार्य दिया गया कि भ्रम का माहौल बनाओ। उसने अनधिकृत होने पर भी वेदों का भ्रामक भाष्य लिख डाला। 'The Upanishads - Vol 1 and 2' के प्राक्कथन में उसने अन्य अप्रामाणिक लोगों के अस्पष्ट एवं अज्ञात सन्दर्भ से लिख दिया कि आदि शंकराचार्य जी ने एक परवर्ती / अर्वाचीन उपनिषत्, नारायणोपनिषत् का उद्धरण दिया है।

एक विदेशी म्लेच्छ समुदाय का व्यक्ति, जिन्हें यहां आकर इस बात पर आश्चर्य हुआ कि यहां लोग प्रतिदिन नहाते हैं, वो आद्य शंकराचार्य की नकारात्मक समीक्षा करने लगा ? कौन प्रामाणिक हैं, आद्यशंकराचार्य जी या मैक्समूलर ? इससे पहले कभी कहीं किसी ने यह क्यों नहीं लिखा कि अमुक अमुक उपनिषत् प्राचीन हैं और बाकी अर्वाचीन, इसीलिए अर्वाचीन वाले त्याज्य हैं। ये दिव्य ज्ञान केवल मैक्समूलर के परवर्ती लोगों को ही क्यों मिलने लगा ?

मुक्तिकोपनिषत् की सूची में वर्णित अनेकों उपनिषदों के संदर्भ श्रीआद्यशंकराचार्य आदि अनेकों आचार्यों के ग्रंथों एवं भाष्यों में सूर्यवदालोकित हैं। इतना ही नहीं, शृंगेरी के मान्य शंकराचार्य श्री विद्यारण्य स्वामी जी (पूर्व नाम माधव) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ पंचदशी (४/६८) में मुक्तिकोपनिषत् का निम्न वाक्य उद्धृत किया है -

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः।

विद्यारण्य स्वामी जी का सम्भावित काल १२६८-१३९१ ई० का बताया जाता है। ये विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहर-बुक्का (प्रथम) के गुरु थे। ये वेदभाष्यकार आचार्य सायण के भाई थे एवं स्वयं भी माधवाचार्य के नाम से अनेक भाष्य, प्रकरण ग्रंथ, आगम ग्रंथ तथा दार्शनिक ग्रंथों की रचना की थी। इनकी प्रामाणिकता पर भला कौन संदेह करेगा ? अतः मुक्तिकोपनिषत् प्रामाणिक ही है, साथ ही उसमें उल्लिखित सभी शेष उपनिषत् भी प्रामाणिक हैं। चतुराम्नाय मान्य शांकर मठ, कांची कामकोटि मठ, गौड़पादाचार्य मठ आदि ने, साथ ही अनेकानेक मान्य रामानुजीय, माध्व मठों ने अपनी हज़ारों वर्षों की परंपरा में कभी भी मुक्तिकोपनिषत् या संन्यासोपनिषत् आदि पर आपत्ति नहीं की है। प्रामाणिकता के लिए विश्वप्रसिद्ध श्री शृंगेरी मठ में भी मुक्तिकोपनिषत् में वर्णित सभी १०८ उपनिषदों को पूर्ण मान्यता है।

कांची कामकोटि मठ के वरिष्ठ धर्माधिकारी उपनिषद्ब्रह्मयोगी ने इन सभी १०८ मुख्य उपनिषदों पर मध्य अठारहवीं शताब्दी (१७५० ई०) में भाष्य भी लिखा था, जो आज भी सुलभ है। इसमें संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् भी सम्मिलित हैं। उस समय तक इनकी प्रामाणिकता में किसी को कोई संदेह नहीं था, अपितु इसी महान् भाष्य से प्रसन्न होकर कांची के तत्कालीन अधिपति स्वामी श्रीरामचन्द्रेन्द्र सरस्वती जी ने ने उनके नाम ब्रह्मेन्द्र के आगे ही उपनिषत् शब्द की उपाधि लगा दी थी। जब उन्नीसवीं शताब्दी में मैक्समूलर आदि को प्रायोजित करके विधर्मियों ने उसके माध्यम से यह भ्रम फैलाया कि उपनिषदों में संदिग्धता है, तब जाकर यहां के अन्य प्रज्ञाहीन लोगों ने भी ऐसा ही कहना प्रारम्भ किया।

वाराणसी के कामरूप मठ के आचार्य श्री स्वामी महादेवानंदतीर्थ के शिष्य श्री स्वामी परमानन्दतीर्थ ने यतिधर्मनिर्णय नामक विशालकाय सङ्ग्रह ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें उन्होंने विस्तार से संन्यासाधिकार के प्रसङ्ग में संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् के सन्दर्भ सम्मिलित किये हैं। बाद में विक्रम सम्वत् १९६४ (ई० सन् १९०७) में काशीराजसभा के पंडित एवं काशीधर्मसभाध्यक्ष आचार्य प्रियनाथ तत्वरत्न जी ने प्रसिद्ध सेठ किशोरीलाल जी और सेठ मुकुन्दलाल जी के आर्थिक सहयोग से नागेश्वर यंत्रालय में प्रकाशित करवाया था। १९४८ ई० में मुंबई, निर्णय सागर प्रेस से सभी १०८ उपनिषत् प्रकाशित भी हुए थे जिसमें संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् भी हैं।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

इन्होंने (श्रीभागवतानंद गुरु ने) प्रमाणीकरण का अपना दूसरा आधार बनाया है श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर को, पर इन्हें जानना चाहिये कि उनका ईंगित श्लोक विवादित है। ऐसा इसलिए कि श्रीवैष्णवमताब्जके छह सम्पादनों को पढनेका अवसर दास को प्राप्त हुआ। जिस श्लोक के आधार पर (हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च.... इत्यादि) ये मिथ्यावासुदेव अपनी सिद्धि और प्रसिद्धि का असफल प्रयास कर रहे हैं, उसका पूर्ण विवरण दे देना भी निष्पक्ष निष्कर्ष हेतु आवश्यक है।

(क) सम्पादक श्रीरामटहल दास सम्पादन वर्ष - सं. १९८४ वि. अर्थात् १८२७ ई. *श्लोक नहीं है।*

(ख) सम्पादक आनन्दभाष्य सिंहासनासीन सम्पादन वर्ष - २००३ ई. *श्लोक है।*

(ग) सम्पादक आचार्य जयकान्त शर्मा सम्पादन वर्ष - २०१३ ई. *पाद टिप्पणी* सहित श्लोक है।*

(घ) सम्पादक श्रीकृष्णनारायणाचार्य सम्पादन वर्ष - २०१४ ई. *श्लोक नहीं है।*

(च) सम्पादक आचार्य किशोर कुणाल सम्पादन वर्ष - २०१४ ई. *श्लोक नहीं है।*

(छ) सम्पादक डॉ. रामाधार शर्मा सम्पादन वर्ष - २०१८ ई. *श्लोक नहीं है।*

*पाद टिप्पणी- किसी किसी प्रति में आचार्यशिष्यलक्षणप्रकरण के श्लोक सं ६२-६७ तक के छह श्लोक उपलब्ध नहीं होते हैं।) स्पष्टतः कहा जा सकता है कि उद्धृत श्लोक विवादित है और सर्वसम्मतिसे इसका ख्यापन नहीं किया जा सकता।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

उपर्युक्त प्रसङ्ग को विवादित किसने बनाया ? आप लोग तो पहरेदारी करने बैठे ही थे न कि अमुक ग्रंथ में मिलावट है, अमुक बात सही है, अमुक अर्वाचीन है तो अमुक प्राचीन है। फिर आप जैसी दिव्य दृष्टि वालों के होते हुए कौन है जो आपके ही आदि आचार्य श्रीरामानंदाचार्य जी के लिखे ग्रंथों में गड़बड़ कर गया ? आपने जितने संस्करण बताए हैं, उनमें संख्या "ग ", और " च " तो चित्रकूटीय बाबा जी के प्रबल शिष्य और समर्थकों ने ही छापे हैं। आचार्य किशोर कुणाल जी तो शासकीय सेवा में रहने के कारण आधुनिक राजनैतिक विचारों से इतने प्रभावित हैं कि अयाज्य ब्राह्मणेतरों को भी देवलवृत्ति और पौरोहित्य में विक्षेपित कर रहे हैं। तो इसकी सम्भावना क्यों नहीं उसमें से वे अंश निकाल देंगे जिसके आधार पर उनका मत खण्डित हो सकता है।

फिर "छ" वाले संस्करण के सम्पादक तो श्री रामाधार शर्मा जी स्वयं हैं, ये भी ग्रंथ से वे श्लोक निकाल सकते हैं। जो अपने मत की पुष्टि के लिए उपनिषदों पर ही उंगली उठा दें, उसके लिए अपने आचार्य के लिखित ग्रंथों से उन अंशों को निकालना कौन सी बड़ी बात है, जिसके आधार पर भविष्य में इनकी प्रामाणिकता को चुनौती मिलती ?

आपके अनुसार संस्करण संख्या "क" में वे श्लोक नहीं है, जहां नेत्ररोगी के आचार्यत्व का निषेध है किन्तु संस्करण संख्या "ख" में है। फिर शेष संस्करणों में, जो दनादन पिछले आठ वर्षों के अंदर छपवाए गए हैं, आश्चर्य है कि उनमें से अधिकांश के सम्पादक चित्रकूट वाले बाबाजी के निकट शिष्य या समर्थक हैं और चारों में नेत्ररोगी वाले श्लोक गायब हैं ? फिर आपने संस्करण "ख" वाले आनन्दभाष्य सिंहासनासीन संस्करण वालों को क्यों नहीं सङ्केत किया कि आप कैसे ये श्लोक सम्मिलित कर दिए, जब ये मूल में नहीं हैं तो ? क्योंकि सत्य आप भी जानते हैं और वे भी। ग्रंथों में गड़बड़ी करना, उन्हें मिलावटी कहना, अपने संस्करण बनवा कर छपवाना, उसमें से अपने मत के विरोध की सामग्री को हटवा देना और समाज में भ्रम फैलाना, ये तो इन लोगों की पुरानी आदत है।

यहां पर आप लोग एक और कुतर्क कर सकते हैं कि संस्करण "क" अधिक प्राचीन है और संस्करण "ख" अर्वाचीन, इसीलिए हम प्राचीन को मानेंगे। तो हमें बताईये कि फिर किस आधार पर आपने संन्यासोपनिषत् एवं नारदपरिव्राजकोपनिषत् का १७५० ई० वाला प्राचीन ब्रह्मेन्द्र भाष्य नहीं माना ? १९०७ ई० के यतिधर्मनिर्णय में इन उपनिषदों के प्रमाण की उपेक्षा कर दी, किन्तु इनकी अपेक्षा अर्वाचीन १९५३ ई० में पाण्डुरंग काणे की एक उक्ति के आधार पर इन उपनिषदों को गलत कहने लगे ?

यहां भी अर्द्धकुक्कुटन्याय से उन्हीं पाण्डुरंग काणे के द्वारा प्रस्तावित १९१३ ई० के संस्करण वाले भवभूतिकृत उत्तररामचरितम्, जिसमें सीतात्याग का विस्तृत वर्णन है, उसका तो नाम तक नहीं ले रहे। वैसे भी आगमतत्त्वविलास में श्रीरघुनाथ-तर्कवागीश श्रीरामार्चनचन्द्रिका के वचनों से उपर्युक्त कथित विवादित श्लोकों की प्रामाणिकता सत्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल में ही मान चुके हैं। श्रीवैष्णवों में श्रीरामार्चनचन्द्रिका का क्या स्थान एवं महत्त्व है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। अब आते हैं वैष्णवमताब्जभास्कर पर। आपने संन्यासोपनिषत् को भले ही प्रमाण न माना हो, किन्तु संस्करण "ख" में वैष्णववपन-मीमांसा के अंतर्गत संन्यासोपनिषत् के वाक्य को कुटीचक परिभाषा में उद्धृत किया गया है। आपका सम्प्रदाय आनन्दभाष्य-सिंहासनासीन की बात मानेगा या पाण्डुरंग काणे की ?

आपने उपर्युक्त संस्करणों में कहा कि नेत्ररोगी यदि वाले श्लोक विवादित हैं। हालांकि वे विवादित क्यों हुए, किसके कारण हुए, ये हमने बता दिया है किंतु चलिये, आपको थोड़ी छूट देते हुए इसी ग्रंथ के निर्विवाद भाग से प्रमाण देते हैं।

वैष्णवमताब्जभास्कर, संस्करण "ख" के पञ्चम परिच्छेद (पृष्ठ ४२१) में वैष्णववपनमीमांसा, प्रभाकिरण भाष्य, के प्रकरण में संन्यासोपनिषत् का निम्न वचन सम्मिलित है -

कुटीचकः शिखायज्ञोपवीतिदण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः
पितृमातृगुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपरएकत्रान्नादनपरः
श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः
इति संन्यासोपनिषत् ...

इतना ही नहीं, वैष्णवमताब्जभास्कर के ही संस्करण "ख" में चतुर्थ परिच्छेद (पृष्ठ ३३२) में पञ्चसंस्कार प्रकरण के अंतर्गत नारदपरिव्राजकोपनिषत् का निम्न वचन भी सम्मिलित किया गया है -

नटादिप्रेक्षणं द्यूतं प्रमदासुहृदं तथा। भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण्न पश्येत्कदाचन ॥
रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु। षडेतानि यतिर्नित्यं मनसापि न चिन्तयेत्॥
- नारदपरिव्राजकोपनिषदि

साथ ही, प्रथम परिच्छेद (पृष्ठ १७५) के तृतीयतत्त्वेश्वरनिरूपण प्रसङ्ग में वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड, अध्याय १११ का बीसवां श्लोक भी इस प्रकार लिखा है -

चिन्तयेद्राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं य इच्छति।
श्रावयेदिदमाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने॥

उसी प्रसङ्ग में आगे श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कंध के ग्यारहवें अध्याय से श्रीराम चरित्र का माहात्म्य वाचक श्लोक सम्मिलित किया गया है। बता दूं, कि श्रीमद्भागवत के इसी अध्याय में श्रीरामानंद सम्प्रदाय के सप्तमाचार्य श्रीवेदव्यास जी ने सीतात्याग का प्रसङ्ग भी लिखा है और उसपर श्रीधराचार्य जी, आद्यवल्लभाचार्य जी जैसे दिग्गज विद्वानों ने निर्विवाद भाष्य भी लिखा है। इसका प्रमाण सीतात्याग वाले प्रथम एवं द्वितीय लेखों पहले ही दे चुका हूँ। श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर लिखने की आवश्यकता क्यों पड़ी थी ? क्योंकि श्रीसुरसुरानंदाचार्य जी ने श्रीरामानन्दाचार्य जी से वैष्णवधर्म सम्बन्धी दस प्रश्न किये थे, उनके उत्तर के लिए ही ग्रंथोल्लेखन हुआ था। संस्करण "ख" के पृष्ठ २५-२६-२७ को

देखें, आपको उन श्लोकों का संकेत भी मिलेगा, जिन्हें आप विवादित बता रहे हैं या बना रहे हैं। रामानंद सम्प्रदाय के अन्य पीठ और मान्य संन्यासी धर्मगुरु आदि सब संन्यासोपनिषत् आदि को, श्री वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड आदि को सही मानते हैं, केवल अवैदिक मत का आश्रय लेने वाला चित्रकूटीय दल ही वितण्डावाद का पोषण कर रहा है। प्रतीत होता है कि केवल यही सर्वज्ञ हैं, बाकी सब मूर्ख हैं। हो भी क्यों न, इनके जगद्गुरु जी तो स्वयं शिव जी से स्वप्न में शास्त्रार्थ करते हैं। हम तो किसी मठ आदि से, पार्टी-एसोसिएशन, संस्था से नहीं जुड़े हुए हैं किंतु ऐसा क्यों है कि आपके चित्रकूटीय दल को छोड़कर, या उसके द्वारा स्वार्थ, भय या उपेक्षा से कारण विरोध का साहस न करने वालों को छोड़कर अन्य रामानंदीय आश्रम, पीठ, धर्माधिकारियों को संन्यासोपनिषत् आदि की प्रामाणिकता में आपत्ति नहीं दिखती ?

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

इन्होंने पीठ पर भी प्रश्न उठाया है- "तुलसी पीठ कोई प्रामाणिक शास्त्रोक्त पीठ नहीं है।" यह कथन तो ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक 'विद्यामार्त्तण्ड' नहीं, 'विद्यातमिस्र' ही है। तुलसीपीठ का पीठत्व और जगद्गुरुत्व के प्रमाणीकरण के अधिकारी तो ये हैं नहीं और आशा करता हूँ कि ये अवश्य जानते होंगे कि इसका अधिकारी कौन है। अतः ऐसा लिखकर इन्होंने ये इन संस्थानों की क्षमता और वैधता पर भी प्रश्न उठा दिया जो अनुचित है। अतः निवेदन है कि इन संस्थाओं का अपमान करना छोड़ दें।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

तुलसी पीठ को हम शास्त्रोक्त मान लेंगे किन्तु आप बताईये तो सही कि किस आर्ष ग्रंथ, तंत्र, संहिता, पुराण, उपनिषत्, स्मृति आदि में वर्णन है ? क्या परम्परा है उसकी ? अस्तु, हमें मत बताईये, किन्तु जैसे सभी शांकर, रामानुज, माध्व पीठों की परंपरा ज्ञात है, शास्त्रीय सन्दर्भ भी है, वैसे आपके पास क्या है ? यह जानने का अधिकार तो पूरे देश को है क्योंकि इसकी ही ब्रांडिंग के आधार पर आपलोग सार्वजनिक रूप से ग्रंथों के बारे में अनुचित वक्तव्य देते रहते हैं। आद्यशंकराचार्य जी ने शिष्यों को संन्यास के नियम बताते समय कहा कि 'नारी नरक का द्वार है'। किसके लिए कहा ? संन्यासियों को कहा कि यदि तुम स्त्री संसर्ग करोगे तो उसी नारी रूपी द्वार से नरक में जाओगे। इतनी सी बात जिसकी बुद्धि न समझ पाई हो, उस व्यक्ति की भला क्या प्रामाणिकता हो सकती है ? जो व्यक्ति

इस सामान्य सी बात को, जिसका सन्दर्भ यतिधर्म का वर्णन करने वाले और भी शास्त्रों में मिलता है, न समझ पाये हों, वे भला दिव्य रामकथाओं को क्या समझेंगे ? जब समझ न आएंगे तो प्रक्षिप्त तो कहेंगे ही। अब जगद्गुरुजी ने कह दिया है तो जैसे तैसे इज्जत बची रहे, अपना स्वार्थ सधता रहे, इसीलिए चेले भिड़ गए - एक सुर से सारे ग्रंथों को प्रक्षिप्त घोषित करने में। बिना अधिकार के ही संन्यास के वेश बनाने और संन्यासी होने में बहुत भेद है।

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि रम्यावसथप्रियस्य॥
(वसिष्ठ स्मृति, अध्याय - १०)

ऐसे संन्यासी का मोक्ष सम्भव नहीं है जो वाग्जालीय विषयों में उलझा रहे, जो लौकिक विषयों में फंसा रहे, जो केवल भोजन -वस्त्र की चिंता करता रहे अथवा जो सुखपूर्वक निवास का उपक्रम करता रहे। आजकल परम्परा के बिना अपने अपने पीठ बनाकर स्वयं को वहां का पीठाधीश्वर घोषित करके सुखोपभोग करने वाले संन्यासी ऐसे ही होते रहते हैं।

फिर इनके पीठों की परम्परा पूछो तो कहते हैं कि हमें तुम्हारी प्रामाणिकता की आवश्यकता नहीं, हम चाहे जो करें, तुम कौन होते हो पूछने वाले ? भाई, हम ब्राह्मण होते हैं, पूछने वाले। हम न हों तो आपको पूछे ही कौन ? ब्राह्मण ही तो सदण्ड संन्यासाधिकार रखता है, ब्राह्मण गृहस्थ ही के घर भवितव्य संन्यासियों का जन्म होता है, संन्यासी का तो अग्रिम जीवन समाज से लगभग दूर, विरक्तभाव से व्यतीत होता है, वो तो ब्राह्मण ही है, जिसका आवागमन और उपदेश जनसामान्य के मध्य सक्रियता से होता रहता है, इसीलिए हम ब्राह्मण, प्रत्येक पीठाधीश्वर के वक्तव्य एवं प्रामाणिकता को जानने के अधिकारी हैं ताकि निजी स्वार्थ से कोई समाज को भ्रमित न कर सके। यदि हम प्रश्न ही न करें तो यह अंधभक्ति होगी और शास्त्र के साथ कपट होगा क्योंकि फिर कोई भी व्यक्ति त्रिदण्डी वेश बनाकर कुछ भी बोलेगा और जनता वही मानने लगेगी।

त्रिदण्डव्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः।
यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदण्डी हि स स्मृतः॥
(विष्णुस्मृति, अध्याय ०४, श्लोक - ३४)

त्रिदण्डी संन्यासी का वेश बनाकर बहुत से लोग जीवन यापन कर रहे हैं। किंतु जो ब्रह्म को नहीं जानता, वो त्रिदण्डी नहीं है। (इसीलिए भी प्रश्न करना आवश्यक है) ब्रह्म को जानने का दावा करने वाले शास्त्र को तो ठीक से जानते ही नहीं, मान्य उपनिषदों तक को नकली कह देते हैं। ऐसे लोगों को वेदनिन्दक कहा गया है। वेदनिन्दा से क्या होता है ? विष्णुधर्मोत्तरपुराण का वचन है - नास्तिको वेदनिन्दकः। नास्तिक ही वेदनिन्दक होता है। जो नास्तिक है वह चाहे वेश से कुछ भी हो, रटने को चाहे जितने भी ग्रंथ रट लिए हों, लिखने को चाहे कुछ भी लिख दिया हो और मिलने को अधर्मपरायण कलियुगी शासन तंत्र से कोई भी सम्मान मिल गया हो, इसके बाद भी उसे ब्रह्मज्ञानी तो हम मानते ही नहीं।

भला उपनिषदों पर प्रश्न खड़े करने वाला, शिव और विष्णु में भेद देखने वाला, विष्णु और राम में भेद देखने वाला, पूर्वाचार्य निंदा में तत्पर रहने वाला एवं श्रीमद्भागवत आदि समस्त सर्वमान्य ग्रंथों को केवल स्वमतपोषण हेतु प्रक्षिप्त कहने वाला व्यक्ति या उसका पक्षधर ब्रह्मज्ञानी कैसे हो सकता है ? संन्यास धर्म का तो यह सामान्य सा नियम है कि स्त्रियों की संगति न करें। यदि करेगा, तो पतित होगा, नरक में जाएगा। जिस नारी को आनन्द का द्वार समझता था, वही नारी उसके लिए नरक का द्वार बन जाएगी। द्वारं किमेकं नरकस्य नारी। शास्त्रों में नारी शक्ति की बड़ी महिमा बताई गई है और संन्यासियों को भी बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है, किंतु दोनों को एक दूसरे की संगति करने को मना किया है।

जैसे इस प्रकृति में बारूद बहुत उपयोगी है, अग्नि भी बहुत उपयोगी है किन्तु दोनों को साथ रखना मना है। दूध भी उपयोगी है, तेल भी उपयोगी है किन्तु दोनों को साथ मिलाने का निषेध है। चंदन पवित्र है, ताम्रपात्र भी पवित्र है किंतु ताम्रपात्र में चन्दन रखने मना किया है। ऐसे ही नारी भी सम्माननीया है, संन्यासी भी सम्माननीय है किन्तु संगति का निषेध है। इसी मर्यादा का उपदेश स्वयं श्री रामानन्दाचार्य जी भी वैष्णवमताब्जभास्कर के पञ्चम परिच्छेद में स्त्रीग्रहणनिषेध प्रकरण के अंतर्गत श्लोकसंख्या ५ एवं ७ में कहते हैं-

न स्त्रियं परिगृह्णीयाद्विरक्तो वैष्णवः क्वचित्।
मन्वादिस्मृतिशास्त्रेषु तन्निषेधस्य शासनात्॥
प्रच्युतो नैष्ठिकाद्धर्मादात्महापि प्रकीर्तितः।
मठाध्यक्षत्वदीक्षादौ बहिष्कार्यः स यत्नतः॥

अर्थात्, विरक्त वैष्णव कभी भी स्त्री-ग्रहण न करे, क्योंकि मनु आदि के स्मृतिशास्त्रों में ऐसी ही आज्ञा है। अपने संन्यास धर्म से भ्रष्ट होने वाला व्यक्ति आत्मघाती कहलाता है। उसे मठाधीश पद से हटा दिया जाय, उसपर शिष्यों को दीक्षा देने के सन्दर्भ में प्रतिबंध लगा दिया जाय। प्रत्येक कार्य से प्रयत्न करके उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है। इसी बात को आदिशंकराचार्य जी ने शिष्यों को कहा कि स्त्रीगमन करोगे तो नरक जाओगे, इसीलिए नारी को नरक के द्वार के समान समझ कर दूर से ही त्याग दो।

किन्तु चित्रकूटीय जगद्गुरु बाबा तो भड़क गए, उन्होंने शंकराचार्य जी को ही मूर्ख और नारी विरोधी घोषित कर दिया। इसी बात को रामानंदाचार्य जी ने भी कहा है तो क्या अब उन्हें भी मूर्ख और नारी विरोधी कह दिया जाएगा ? इसी बात को मनु आदि ने भी कहा, तो क्या वे भी मूर्ख हैं ? ज्ञान केवल चित्रकूट में ही फंस गया है ? भोजन या तो पचकर ऊर्जा प्रदान करता है अथवा अजीर्ण कर देता है। कुछ लोगों को ज्ञान का अजीर्ण हो जाता है और जब वह अजीर्ण होता है तो उन्हें अपने सिवा शेष सभी, ब्रह्मा से कीट पर्यंत के लोग गलत, एवं ग्रंथ प्रक्षिप्त दिखने लगते हैं।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

सीतानिर्वासन पर तो इन्होंने कोई युक्तियुक्त तर्क नहीं दिया बस मात्र एक कि यह कथा अमुक अमुक जगह पाई जाती है। पर यह तो सर्वविदित है। अपने पक्षमें कोई सार्थक युक्ति तो रखी नहीं। हाँ, इतना अवश्य किया कि इन्होंने डॉ. कुमार विश्वास पर भी निष्प्रमाण प्रश्न उठा दिया जो असङ्गत है।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

यह कथा अमुक अमुक जगह *नहीं* पाई जाती है, इसी आधार पर तो अभी तक आपलोग प्रलाप कर रहे थे कि कथा काल्पनिक है। यह आपको सार्थक लगा ? जब हमने कहा कि अमुक अमुक जगह पाई जाती है तो वो सार्थक नहीं लगा ? हमने निम्न बिंदुओं का सप्रमाण प्रस्तुतिकरण दिया -

१) सीता जी का वनवास क्यों हुआ, इसके लिए पद्मपुराण से प्रमाण दिया, पक्षियों का श्राप कि तुम गर्भवती अवस्था में पति से दूर हो जाओगी। पुनः अध्यात्म एवं आनन्द रामायण से प्रमाण दिया कि वाल्मीकि मुनि, राजा जनक, उनकी पत्नी और सीताजी से मिलकर, रामजी ने योजना बनाकर वन में भेजा गया।

२) धोबी के प्रसङ्ग में पद्मपुराण से उसके पूर्वजन्म की कथा, आनन्द रामायण से इस जन्म की कथा एवं गर्ग संहिता से अगले जन्म की कथा का प्रमाण दिया।

३) शम्बूक प्रसङ्ग के सन्दर्भ में पद्मपुराण से पूरा विस्तृत प्रमाण दिया कि उसके वध में कोई शोषण नहीं था। शम्बूक रामजी को पितातुल्य मानता था। फिर श्रीमध्वाचार्य जी के महाभारततात्पर्यनिर्णय से शम्बूक के पूर्वजन्म (जंघासुर) की कथा का प्रमाण दिया और बताया कि शम्बूक संसार को कष्ट देने की इच्छा से तपस्या कर रहा था इसीलिए उसका उद्धार आवश्यक था।

४) उत्तरकाण्ड के सन्दर्भ में वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड से ही उत्तरकाण्ड की पुष्टि की, श्लोक संख्या, अध्याय संख्या आदि के संदर्भ में श्री गोविंदराजीय भाष्य, बृहद्धर्म उपपुराण एवं आनन्द रामायण का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया।

५) बृहद्धर्म उपपुराण के रामायण कवच में सातों काण्ड का वर्णन, दुर्गा देवी के द्वारा सातों काण्ड के माहात्म्य का वर्णन आदि अभूतपूर्व प्रमाण भी दिए।

६) इसके अतिरिक्त सीतात्याग के प्रसङ्ग की प्रामाणिकता में नारद पुराण, स्कन्दपुराण, श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, आदि से लगभग डेढ़ सौ श्लोकों का संग्रह करके ठोस प्रमाण दिया। इस जन्म, अगले जन्म, किसका श्राप कहाँ किस घटना का निमित्त बना, किसके बाद क्या हुआ, क्यों किया, ये काम सही क्यों, गलत क्यों, सबका विस्तृत विवेचन लिखा। पाठकगण मूल लेखों के प्राथमिक भागों में देख सकते हैं।

जानते हैं, इसके बाद चित्रकूट की तुलसी पीठ के पक्षधरों की ओर से क्या उत्तर मिलता है ? यह चूंकि इतने ग्रंथों के प्रमाण हैं, खण्डन तो हो सकता नहीं है तो एक स्वर से कह दिया कि सब के सब प्रक्षिप्त हैं। अच्छा तरीका है। एक स्वर से सारे ग्रंथ प्रक्षिप्त ... सारे आचार्य प्रक्षिप्त ... किसने किया प्रक्षिप्त ? कोई कंप्यूटर सर्वर में तो ग्रंथ थे नहीं कि हैक करके फ़ाइल एडिट कर दी और सारे कॉपी एडिट हो गए ? या तो ग्रंथ स्मरण थे, या तो

हस्तलिखित थे। तो जिसने केवल बीच बीच में इन ग्रंथों में अलग से प्रक्षिप्त किया, उसके हाथ की लिखावट मूल लिपिक से मेल खाती नहीं और वो पकड़ा जाता, घोर विरोध होता। यदि प्रक्षेपक ने अपनी अलग प्रतियां बनाईं तो फिर सहस्रों श्लोकों के ग्रंथों की एक एक प्रति बनाने में ही उसे जीवन लग जाता, और उसकी प्रति अन्य सैकड़ों कंठस्थ एवं भौतिक प्रतियों के सामने प्रसिद्ध ही न होती। यदि प्रक्षेपक अकेला नहीं था, सैकड़ों लोग सैकड़ों प्रक्षेपण बना रहे थे, तो फिर इतना बड़ा अभियान गुप्त कैसे रह गया ? किसी को पता कैसे नहीं चला ? किसने सीतात्याग आदि के प्रसङ्ग को प्रक्षिप्त किया, कब किया, इसका कोई प्रमाण स्वघोषित जगद्गुरु जी के पक्षधरों से नहीं मिलता है।

मैंने सीतात्याग के समर्थन के अनेकानेक प्रमाण दिए, जिसके विरोध में उन्होंने कहा कि सारे प्रक्षिप्त हैं, किन्तु किसने किये, कब किये, कोई जानकारी नहीं। साथ ही ये लोग यह भी नहीं बता रहे कि इन्हें ज्ञात कैसे हुआ कि ये प्रसङ्ग प्रक्षिप्त है ? निश्चय ही या तो इनके पास बिना प्रक्षेप वाली मूल प्रति होगी अथवा इनके पास जांच की कोई विद्या होगी। तो उस जांच की विद्या से कृपया बताएं कि जिन ग्रंथों में सीतात्याग का प्रसङ्ग स्पष्ट है, उन्हें तो आप प्रक्षिप्त कह दिए और जिनमें नहीं है उनमें यह भी तो नहीं लिखा कि सीतात्याग काल्पनिक है, हुआ ही नहीं ? जिसमें वर्णन नहीं है, वहां तो कुछ वर्णन है ही नहीं - न पक्ष में न विपक्ष में, फिर उसे हम निषेध कैसे मान लें ?

मान लें, कि एक सभा में दो सौ लोगों में से सौ लोग आपका समर्थन कर रहे हैं। शेष लोग न समर्थन कर रहे, न विरोध। वे कुछ कह ही नहीं रहे। तो क्या हम उन्हें विरोधकर्ता मान लेंगे ? नहीं, अपितु इस प्रसङ्ग में उनका नाम लेंगे ही नहीं, क्योंकि वे कुछ कहते ही नहीं। क्या हम सौ समर्थकों को प्रक्षिप्त, घूसखोर मान लेंगे ? ऐसा भी नहीं है। अपितु रामानन्दाचार्य जी के भी पूर्ववर्ती मध्वाचार्य जी ने महाभारततात्पर्यनिर्णय में स्पष्ट किया है कि भविष्य में आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग ग्रंथों पर शंका बताएंगे, इसीलिए मैं सभी ग्रंथों के साररूप में अभी ही निर्णय कर दे रहा हूँ कि सीतात्याग और शम्बूक वध प्रामाणिक है। आश्चर्य है कि जो प्रक्षिप्त अंश वल्लभाचार्य जी, मध्वाचार्य जी, गोविंदराज जी को तक ज्ञात न हुआ और एक भी ग्रंथ में ज्ञात न हुआ अपितु उन्होंने प्रक्षिप्त की धारणा के स्पष्ट विरोध में मत दिया है, उन अनेकानेक ग्रंथों के वही प्रसङ्ग चित्रकूटीय बाबाओं को नकली लगने लग गए ?

कुमार विश्वास कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं, लौकिक कवि हैं। धर्मशास्त्रों के उपदेश का

कार्य एवं अधिकार उनका नहीं है। उन्होंने सुनी सुनाई अफवाह, जो आपलोगों के सौजन्य से ही फैली है उसी के आधार पर बिना स्वतन्त्र शोध किये, केवल स्वयं को क्रांतिकारी विचारक सिद्ध करने के लिए कह दी थी। यदि कवि होने मात्र से आप उनके वक्तव्य को सही मानते हैं और मेरे विरोध को गलत, तो बताएं कि कवित्व के ही मामले में कालिदास एवं भवभूति जी अधिक श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक हैं या कुमार विश्वास ? कालिदास एवं भवभूति ने अपनी रचनाओं में सीतात्याग का जो विस्तृत वर्णन किया है, जिसका समर्थन अनेकानेक पुराणों एवं रामायणों से कर चुका हूँ, वो अधिक प्रामाणिक है या कुमार विश्वास का बयान ?

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

किसी भी विषय पर आप अपनी भावनानुसार ही उसको समझ पायेंगे परन्तु गवेषणा भावना पर नहीं, तर्क पर आधारित होता है। बहुत प्रसन्नता होती यदि आपका खण्डन तर्कप्रतिष्ठित होता, तर्काभास नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका यह लेख पूर्वाग्रह से ग्रसित, हिन्दूसमाज को भटकाने वाला, अन्यों की निन्दा कर अपने को विद्वान् प्रमाणित करने का कुत्सित और बीभत्स किन्तु असफल प्रयास है। मात्र इतना ही कहा जा सकता है - ॥ सुनि अघ नरकहुँ नाक सिकोरी ॥

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

मैंने सीतात्याग के प्रसंग के स्पष्ट समर्थन में अनेकानेक ग्रंथों के प्रमाण दिए हैं अतः आप लोग सीतात्याग के स्पष्ट विरोध में किसी पुराण या प्राचीन रामायण का संदर्भ दें। रही बात गोस्वामी जी की तो उन्होंने याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवाद को केंद्र बनाकर रामचरित-मानस लिखा और उसमें देवी पार्वती, भरद्वाज और गरुड़ जी ने जैसा प्रश्न किया और उन्हें जैसा उत्तर मिला, उसी के आधार पर उन्होंने रामचरितमानस का कथाक्रम बनाया। कोई भी कथा कहने वाला उसी प्रसंग को केंद्रित करके घटना का वर्णन करता है जो उससे पूछा गया हो न कि वह पूरे जीवन का ही अक्षरशः वर्णन करता जाता है। इसीलिए गोस्वामी जी ने उतना ही लिखा जितना कथा के प्रश्नकर्ताओं ने प्रश्न किया। गीतावली में गोस्वामी तुलसीदास जी ने सीतात्याग का बहुत भावपूर्ण वर्णन किया है, किन्तु कुछ दुराग्रही जन बड़ी निर्लज्जता से आजकल उसे भी मिलावटी कहने लगे हैं।

जैसे एक किसान अपने खेत पर समान परिश्रम से बीज बोता है किंतु कहीं वनस्पतियों का

घनत्व दिखता है और कहीं अभाव - उसी प्रकार से कथाओं में भी कहे कुछ प्रसंगों की अधिकता दिखती है और कहीं न्यूनता - ये उत्तर ऋषि शौनक को सूत जी ने दिया था। जहां न्यूनता दिखे वहां यह समझना चाहिए कि कथा बोलने वाले ने उसको जिज्ञासु की जिज्ञासा के अनुरूप न जानकर छोड़ दिया। यदि उसके विरोध में कोई बात नहीं बोल रहा है तो इसका अर्थ नहीं कि वह विरोध ही कर रहा है। अन्य स्थानों से समर्थन मिलने पर उसे प्रामाणिक ही समझना चाहिए।

मैं एक बात बताऊं ? किसी को शासन से कोई पुरस्कार मिल जाये तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह ब्रह्मा बन गया। वेदविरुद्ध होकर शास्त्रनिन्दा करने और उन्मुखी मार्ग पर चलने वाले ब्रह्मा और दक्ष भी कुशल न रहे तो शेष की क्या क्षमता ? हम तो उस देश में रहते हैं जहां देवी देवताओं के नग्न चित्र बनाने वाले मकबूल फिदा हुसैन को भी शासन से कला के नाम पर पद्मपुरस्कार मिल जाता है। समाज में उन्मुक्त अश्लीलता फ़ैलाने वाले करण जौहर तथा एकता कपूर को भी पद्मपुरस्कार मिल जाता है। हम तो उस देश में रहते हैं जहां के शीर्षस्थ नेताओं ने स्वयं को ही भारत रत्न दे डाला।

मैं किसी का अपमान नहीं कर रहा, बस ये कह रहा हूँ कि जहां ऐसे कटु सत्य की यथार्थ स्थिति हो, वहां ऐसे सन्दर्भ में कोई शासकीय पुरस्कार शास्त्रीय विषयों में प्रमाण और प्रक्षिप्तवाद का अधिकार नहीं दे देता है। शासनतन्त्र एवं व्यापारतन्त्र के द्वारा खड़े किए गए भगवाधारियों के दो दल हैं। एक दल वाले लोग भावपूर्ण अभिनय, मोहक शैली एवं मायामयी बातों से पहले समाज को भ्रमित करते हैं, ग्रंथों के प्रति अकारण ही अश्रद्धा उत्पन्न करते हुए उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करते हैं, ग्रंथ की अपेक्षा निजी वाणी को प्रामाणिक बताते हैं।

दूसरे दल वाले मानवता सबसे बड़ा धर्म है, सब धर्म समान है, हिन्दू धर्म में कुरीति है, मिलावट है - शोषण है, आदि आदि कुतर्कों से समाज को और भी अधिक भ्रमित करते हैं एवं प्रमाण में इन्हीं प्रथम दल वालों के वक्तव्य का उदाहरण देते हैं कि देखो, हम नहीं कह रहे। तुम्हारे ही अमुक सन्त या अमुक पीठाधीश्वर ऐसा कह रहे हैं। अब समाज का निजी अध्ययन तो होता है नहीं, इसीलिए सोचता है कि इतने बड़े आदमी हैं, सन्त हैं, देखो कितने भाव से बता रहे हैं, इसीलिए सत्य ही कह रहे होंगे। फिर जब हम जैसे लोग शास्त्रीय प्रमाणों की झड़ी लगाते हुए विरोध करते हैं तो कहा जाता है कि तुम कौन होते हो पूछने वाले ! हमें तुम्हारी प्रामाणिकता की आवश्यकता नहीं, तुम्हारे प्रमाण सब प्रक्षिप्त

हैं, आदि आदि। जब इतना हो जाता है तो इनके पोषक एवं प्रायोजक,विदेशी म्लेच्छ शक्तियों के माध्यम से धर्मपरिवर्तन, हिंसक दंगे, राष्ट्र विखंडन आदि करवाने लगते हैं। हमारे ग्रंथों को मिलावटी बताने का ये बहुत बड़ा षड्यंत्र विधर्मी गिरोह चला रहा है।

शिवपुराण की शतरुद्रसंहिता कहती है कि जब भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप पर मोहित होने शिव जी के वीर्य का स्खलन हुआ जिसे सप्तर्षियों ने गौतम महर्षि की पुत्री अंजना के गर्भ में कान के माध्यम से पहुँचा दिया। इस प्रकार से भगवान् शिव ही हनुमान् नाम से महान् बल तथा पराक्रम वाले वानररूप में अवतरित हुए। आत्मा वै जायते पुत्रः का भाव सही है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं पुत्र स्वयं पिता ही हो जाये -

चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा।
स्वं वीर्यं पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः॥
तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते। प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात्॥
तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः। कर्णद्वारा तथाऽञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥
ततश्च समये तस्माद्धनुमानिति नामभाक्। शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः॥

फिर भी तुलसीदास जी के नाम पर पीठ बनाने वाले श्रीरामभद्राचार्य जी तो अनावश्यक प्रसिद्धि की लालसा से श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी लेखनी पर ही आघात कर चुके हैं। संसार के सभी विद्वानों को यह ज्ञात है - संकर सुवन केसरी नंदन। गोस्वामी जी तो पूर्व में गाईये गणपति जगवंदन। संकर सुवन भवानी नंदन लिख चुके हैं तो क्या वहां भी शंकर स्वयं कर दें ? किन्तु यहाँ भी श्रीरामभद्राचार्य जी को अपनी अतिरिक्त विद्वत्ता दिखानी ही थी सो उन्होंने इसे कर दिया - संकर स्वयं केसरी नंदन। ऐसे ही लोग अपनी मनमानी से ग्रंथों में फेर बदल करते हैं और मिलावटी प्रतियाँ बनवाने में लगे हुए हैं, साथ ही प्रक्षिप्तवाद का आरोप दूसरों पर लगा देते हैं। एक उदाहरण और देखें -

एकदा परमप्रीता पार्वती पतिदेवता। क्रीडन्तं सुरतासक्तकपियुग्मं ददर्श ह॥
ततस्सा ह्रीमती बाला महादेवस्य पश्यतः। पुष्पसान्द्रेषु कुञ्जेषु तथा रन्तुं मनोदधे॥
सर्वज्ञस्तदभिप्रायं ज्ञात्वा स कपिरूपधृक्। रमयामास तां देवीं कपिरूपधरां शिवाम्॥
सहस्राब्दप्रमाणेन क्रीडित्वा स महाद्युतिः। तत्तेजः पार्वतीगर्भे निधाय विरराम ह॥

एक बार पतिव्रता पार्वती देवी ने रमण करते हुए वानर दम्पति को देखा। उसे देखकर

लज्जायुक्ता पार्वती ने महादेव जी को देखते हुए लता-पुष्पादि के कुञ्ज में वैसा ही विहार करने की इच्छा व्यक्त की। सर्वज्ञ शिवजी ने उनके मन के अभिप्राय को जानकर वानर का रूप धारण किया एवं वानरी रूप वाली पार्वती के साथ एक सहस्र वर्षों तक रमण किया और अपने महान् प्रकाशित तेज को पार्वती के गर्भ में स्थापित करके निवृत्त हुए।

अग्नौ चिक्षेप तत्तेजः पार्वती धारणाक्षमा।
स चाप्यशक्तस्तद्वायौ निक्षिपन् विससर्ज ह॥
तस्मिन्केसरिणो भार्या कपिसाध्वी वराङ्गना।
अञ्जना पुत्रमिच्छन्ती महाबलपराक्रमम्॥
तपश्चचार सुमहन्नियतेन्द्रियमानसा। तस्यै वायुः प्रसन्नात्मा प्रत्यहं फलमर्पयन्॥
भक्षार्थमेकदा तस्यास्तत्तेजश्चार्पयत्करे। फलबुद्ध्या तु तत्तेजः साप्यभक्षयदङ्गना॥

उस देदीप्यमान गर्भ को धारण करने में सक्षम न होने से देवी पार्वती ने अग्नि में छोड़ दिया। अग्नि ने भी उसके तेज को सहन न कर सकने के कारण उसे वायु में फेंक दिया। उस समय सुन्दर रूप वाली, केसरी वानर की पत्नी अंजना अत्यन्त बलशाली पुत्र की कामना से अपने मन और इन्द्रियों को नियन्त्रित रखते हुए दुष्कर तपस्या कर रही थी। इस बात से प्रसन्न होकर वायुदेवता उसे खाने के लिए प्रतिदिन एक फल दिया करते थे। एक दिन वायुदेवता ने फल के स्थान पर शिव का वह तेजोमय अंश ही अंजना के हाथ में दे दिया जिसे फल समझकर उसने खा लिया।

नातिदीर्घेण कालेन चाञ्जना पतिदेवता।
स्वाङ्गेषु गर्भचिह्नानि सा दृष्ट्वा ह्रीमना ह्यभूत्॥
विस्मयाविष्टचित्तां तां व्रतभङ्गविशङ्किताम्।
ध्यायन्ती भयवित्रस्तामाभाष्याहाशरीरिणी॥
माभूत्ते व्रतभङ्गोऽयं मा विषीद वरानने। देवप्रसादात्ते गर्भे महाव्यक्तिः भविष्यति॥
(पराशर संहिता, पटल - ०६, श्लोक - २४-३४)

कुछ ही समय के बाद पतिव्रता अंजना अपने शरीर में गर्भधारण के चिह्नों को देखकर लज्जित हो गयी। साथ ही आश्चर्य से युक्त होकर वे सोचने लगीं कि कहीं मेरा व्रत भ्रष्ट तो नहीं हो गया। उस समय उसे भयातुरा देखकर आकाशवाणी हुई - हे सुन्दर मुख वाली !

तुम शोक न करो। तुम्हारा व्रत भंग नहीं हुआ है। देवताओं के अनुग्रह से तुम्हारे गर्भ से महान् व्यक्तित्व होगा।

शंकरसुवन अर्थात् *शिव का पुत्र* का तद्भव शब्द संकर सुवन, ऐसा होता है जो सर्वथा शास्त्रोक्त ही है, किन्तु स्वप्न में शिव जी के साथ सौ-सौ कोटि तक शास्त्रार्थ करने वाले एवं शिवावतार श्रीशंकराचार्य जी के उपदेशों को कुपथ कहने वाले श्रीरामभद्राचार्य जी निश्चय ही पुराण-तन्त्रादि से भी ऊपर ही होंगे। हमें तो इस बात का आश्चर्य होता है कि इनके समर्थकों के द्वारा अभी तक इन्हें ब्रह्मा का अवतार क्यों घोषित नहीं किया गया है ?

सुनने और पढने में आया है कि चित्रकूटीय दल के कुछ लोग हमें आजकल कौवा कह रहे हैं, हमें भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि हम रामकथा के रसिक, वैसे कौवे हैं जिनके पास समाधान के लिए स्वयं गरुड़ जी आते हैं। मेरा यह लेख पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं, शास्त्रीय प्रमाणों से आलोकित है। हिन्दू समाज को भटकाने वाला नहीं, हिन्दू समाज को भ्रमित गुरुओं से बचाने वाला है।

अन्यों की निन्दा कर अपने को विद्वान् प्रमाणित करने का कुत्सित और बीभत्स किन्तु असफल प्रयास नहीं, अपितु शास्त्रनिन्दकों का खंडन करके स्वयं को मात्र मान्य ग्रंथों एवं परम्परागत आचार्यों के मत का रक्षक सिद्ध करने का लोकोपकारी प्रयास है क्योंकि रामद्रोही भले ही रावण के समान सम्पन्न एवं बली हो, श्रीरामदल की गिलहरी भी उसके सामने किंचित् अकड कर ही चलती है। इन लेखों के कारण तुलसी पीठ के पक्षधर अपनी राजनैतिक पहुँच एवं प्रशासनिक परिचयों का दुरुपयोग करते हुए मुझे निर्बल समझकर जो धमकियाँ दिलवा रहे हैं, उनके लिए मैं श्रीहनुमान् जी की निम्न उक्ति प्रस्तुत करूँगा -

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुडहि खाइ परम लघु ब्याल॥

मात्र इतना ही कहा जा सकता है - प्रिय लागहु मोहि राम ...

। इति शम्।

पञ्चम भाग

चतुर्थ भाग में वर्णित श्री रामाधार शर्मा जी के आक्षेपों का मैंने जो प्रत्युत्तर दिया, उसके विरोध में चित्रकूट की तुलसीपीठ एवं श्रीरामभद्राचार्य जी के पक्षधरों की ओर से श्री नित्यानंद मिश्र जी ने मेरा खण्डन लिखा, जिसे पढ़कर मैं पहली बार प्रतिपक्ष के तर्कों पर प्रमुदित हुआ। उनके खण्डन एवं तर्कों का स्तर अत्यंत ही श्रेष्ठ है एवं प्रामाणिक भी "प्रतीत" होता है। फिर भी उन्होंने जो कहा वह स्थूल दृष्टि से सही होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से अशास्त्रीय ही है। मेरे उसी प्रत्युत्तर के कुछ बिंदुओं पर श्री रामाधार शर्मा जी ने भी कुछ खण्डनपरक लेखन किया जिसमें पुनः पूर्व की ही भांति बड़े ही विचित्र प्रश्न खड़े किए गए। सर्वप्रथम प्रस्तुत है रामाधार शर्मा जी का खण्डन एवं मेरे द्वारा उनका प्रतिखण्डन :-

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

पौण्ड्रकों से सावधान !

श्रीभागवतानंद गुरुजी ! प्रथमतः तो आपको बता दूँ कि न तो मेरा अभिप्राय है कि किसी विषय को अकारण प्रक्षिप्त कह देना और न ही आँख बन्द कर बिना किसी विश्लेषण के उसे ज्यों-का-त्यों, बिना समझे मान लेना; क्योंकि गवेषणा / अनुसंधान में मनोराज्य नहीं चलता। आपने देखा होगा कि अभी तक मैंने अपने लेख का विषय यह नहीं बनाया कि कौन सा अंश प्रक्षिप्त है और कौन अप्रक्षिप्त। परन्तु शास्त्रालोचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ तो द्वन्द्व है जिसका समाधान करने में न मैं केवल असमर्थ हूँ वरन् अनधिकारी भी। परन्तु आपके -"सीतात्याग काल्पनिक है, शम्बूक वध नहीं हुआ, उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, आदि आदि" - भ्रम-भञ्जन हेतु कुछेक समस्या दिखलाता हूँ -

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

आदरणीय श्री रामाधार शर्मा जी ! इससे पूर्व कि आप समस्याएं दिखाएं, मैं यह स्पष्ट कर दूं कि मैं भी किसी अंश को यूं ही बिना पूर्वापर प्रसङ्ग समझे स्वीकार नहीं कर लेता हूँ। आपने ध्यान नहीं दिया, जहाँ लोग रजक प्रसङ्ग के एक जन्म के अस्तित्व पर प्रश्न खड़े कर रहे थे, मैंने पूर्व और आगामी जन्म तक का प्रमाण देकर उसकी पुष्टि की थी। आप यदि

मेरे सभी वक्तव्यों को निष्पक्षता से देखेंगे तो पाएंगे कि गूढ़ एवं जटिल प्रश्नों तथा शंकाओं के समाधान में भी, मैंने शताधिक प्रमाण दिए हैं और इस लेख में आगे दूंगा भी, जिनमें से मेरा कोई भी तर्क या वक्तव्य अकेला नहीं है, अपितु उसके समर्थन में कोई मान्य शास्त्रवाक्य अवश्य सम्मिलित है और मैंने उसी शास्त्रवाक्य को ही अपने मत के रूप में सीधे सीधे, बिना तोड़ मरोड़ के प्रस्तुत किया है।

आपने कहा कि आप 'शास्त्रालोचन करते हैं तो कुछ द्वंद्व प्रतीत होता है'। निश्चय ही होगा, क्योंकि शास्त्र तो आलोचन का विषय ही नहीं है, अवलोकन का विषय है। हमलोग अवलोकन करते हैं इसीलिए शंकाओं का नाश हो जाता है। आपलोग शास्त्रालोचन करते हैं, इसीलिए शंकाएं हो जाती हैं। हो सकता है आप स्वयं उन द्वंद्वों के निवारण में स्वयं को असमर्थ मानते हैं, यह आपकी विनम्रता है किन्तु मैं आपके द्वंद्वों का नाश करने में स्वयं को गुरुकृपा से समर्थ समझता हूँ, क्योंकि यही मेरा कर्तव्य है। हम भी क्या समाधान करेंगे ? समाधान तो ऋषिगण पहले ही ग्रंथों में बता चुके हैं। हम तो बस यथावत् उसकी प्रस्तुति कर रहे हैं। अब आपकी समस्याओं पर दृष्टि डालते हैं।

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

स्कन्द पुराण रेवा खण्ड (१.३२-१.४५) में प्रत्येक पुराणों के श्लोकों की संख्या कही गयी है, जो इस प्रकार है- ब्रह्मपुराण- १००००, पद्मपुराण - ५५०००, विष्णुपुराण - २३०००, वायुपुराण - २४०००, भविष्यपुराण - १४५००, मार्कण्डेयपुराण - ९०००, अग्निपुराण - १६०००, नारदपुराण - २५०००, श्रीमद्भागवतपुराण - १८०००, ब्रह्मवैवर्तपुराण - १८०००, लिङ्गपुराण - ११०००, वाराहपुराण - २४०००, स्कन्दपुराण - ८१०००, वामनपुराण - १००००, कूर्मपुराण - १७०००, मत्स्यपुराण - १४०००, गरुड़पुराण - १९००० व ब्रह्माण्डपुराण - १२८०० श्लोक। परन्तु श्रीमद्भागवत पुराणके अनुसार कतिपय पुराणों के श्लोकों की संख्या में अन्तर है, जैसे अग्निपुराण - १५४०० (परन्तु स्वयं अग्निपुराण के अनुसार १२०००), स्कन्दपुराण - ८११००, मत्स्यपुराण - २४००० तथा ब्रह्माण्डपुराण - १२००० श्लोक (१२।१३।४-८)। और तो और, वायुपुराण के श्लोकों की संख्या अग्निपुराण (२७२।४५) के अनुसार १४००० एवं देवी भागवत (१।३।७) के अनुसार २४६०० है। मार्कण्डेयपुराण के श्लोकों की संख्या स्वयं मार्कण्डेय (१३४।३९) के अनुसार ६९०० है। इस प्रकार अधिकतर पुराण के श्लोकों की संख्या के सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि उनके श्लोकों की संख्या निश्चयेन नहीं कही जा सकती। उससे भी विकट स्थिति तो यह है

कि आज जो पुराण उपलब्ध हैं उनके श्लोकों की संख्या उपरोक्त से भिन्न है, यथा विष्णु पुराणमें लगभग १६०००, नारदपुराणमें १८११० श्लोक तथा भविष्यपुराण व स्कन्दपुराण में कथित से अधिक श्लोक पाये जाते हैं। यहाँ तक कि एक ही पुराण के दाक्षिणात्य, औदिच्य, गौड़ीय व पश्चिमोत्तर संस्करण में प्रचुर अन्तर व पाठभेद देखा जा सकता है। स्पष्टतः आज प्राप्य पुराणोंका स्वरूप अपने मौलिक स्वरूप से अलग हो गया है।

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

यह समस्या शास्त्र के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखने वालों को अवश्य ही भ्रमित करेगी किन्तु श्रीरामचरणों के प्रताप से मैं इसका समाधान देता हूँ। पुराणों की श्लोक संख्या में इसीलिए भेद मिलता है, क्योंकि पुराणों की रचना एक ही बार नहीं हुई है अपितु प्रत्येक द्वापर में इनका लेखन एवं पुनर्लेखन होता है। वेदव्यास के विषय में यह ध्यातव्य है कि यह एक पद है। प्रत्येक द्वापर के अंत में विष्णु के आवेशांश से एक योग्य व्यक्ति को वेदव्यास के पद पर बैठाया जाता है। वर्तमान वैवस्वत मन्वतर में अभी तक अट्ठाईस द्वापरों में अट्ठाईस वेदव्यास हो चुके हैं। उनके नाम अनेकों पुराणों में वर्णित हैं किन्तु मैं यहां उदाहरण के लिए निम्न प्रमाण दे रहा हूँ -

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत्॥
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः। पञ्चमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तथापरे ॥
मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः। सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा ॥
एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्। त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे ॥
त्रय्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः। मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा ॥
अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम्। उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः ॥
वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा।
तृणबिन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम्॥
ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता॥

(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध – ०१, अध्याय -०३, श्लोक - २६-३३)

अभी तक अट्ठाईस वेदव्यास हो चुके हैं जिन्होंने द्वापर में बारम्बार वेदों के चार विभाग किये हैं। प्रथम द्वापर में स्वयं ब्रह्मा ही वेदव्यास थे। दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास बने। तीसरे में दैत्यगुरु शुक्राचार्य, चौथे में देवगुरु बृहस्पति, पांचवें में सविता, छठे में मृत्युदेव वेदव्यास बने। सप्तम में इन्द्र, आठवें में वशिष्ठ, नवें में सारस्वत, दसवें में त्रिधामा ऋषि वेदव्यास बने। ग्यारहवें में त्रिवृष और बारहवें में भरद्वाज बने। उसके बाद अन्तरिक्ष, चौदहवें में धर्म, फिर त्रय्यारुणि, धनञ्जय, फिर मेधातिथि (अथवा क्रतुञ्जय/कृतञ्जय) और अठारहवें में व्रती (जय/ऋणज्य) बने। इसके बाद अत्रि बने। अत्रि के बाद गौतम, गौतम के बाद जो वेदव्यास बने उनका नाम उत्तम या हर्यात्मा है। उनके बाद वाजश्रवा वेण वेदव्यास बने, फिर सोम (शुष्कायण/मुष्यायणसंज्ञक) फिर राजर्षि तृणबिन्दु (रावण के पिता विश्रवा के नाना) बने। उनके बाद श्रेष्ठ भृगुवंशी वाल्मीकि वेदव्यास बने। वाल्मीकि के बाद शक्ति और उनके बाद जातुकर्ण वेदव्यास बने। उनके बाद श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास बने। वर्तमान में वेदव्यास यही हैं, ऐसे ये २८ व्यास हुए हैं।

भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने॥
(विष्णुपुराण, तृतीय अंश, अध्याय – ०३, श्लोक – २१)

जब मेरे (पराशर) पुत्र कृष्णद्वैपायन का कार्यकाल समाप्त हो जाएगा, फिर भविष्य में जो द्वापरयुग आएगा उसमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामा वेदव्यास का पद सम्भालेंगे। (कल्पभेद से नामभेद भी आता है, जैसे कि शक्ति और जातुकर्ण के मध्य पराशर का नाम भी विष्णुपुराण में वर्णित है) प्रत्येक बार वेदव्यास पद पर अलग अलग सिद्धगण बैठते हैं तो सबकी शैली समान नहीं होती है। अतः भिन्न श्लोक संख्या का मिलना स्वाभाविक है। इस बात के प्रमाण में मैं निम्न शास्त्रवाक्य प्रस्तुत करता हूँ -

यच्च दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल ॥
उभाभ्यां यत्तु दृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते। पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्॥
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः। पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे मुने॥
(स्कन्दपुराण, अवन्ती/रेवाखण्ड, प्रथम अध्याय, श्लोक - २३-२५)

जिन बातों का वर्णन वेदों में है, वही बातें स्मृतियों में भी हैं। जो बातें इन दोनों में हैं, वही पुराणों में भी हैं। सबसे पहले सभी शास्त्रों में, ब्रह्माजी ने पुराण को ही स्मरण किया। पुनः

उसके बाद उनके अन्य मुखों से वेदों का प्राकट्य हुआ। उस (प्राथमिक) कल्प में, हे मुने ! एक ही पुराण था।

अष्टलक्षप्रमाणे तु द्वापरे द्वापरे सदा ॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते।
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥
(स्कन्दपुराण, अवन्ती/रेवाखण्ड, प्रथम अध्याय, श्लोक – २८-२९)

(उसे छोटा करते करते) प्रत्येक द्वापर युग में पुराण संहिता की श्लोक संख्या को आठ लाख में सीमित किया गया। उसे ही अठारह भागों में विभाजित करके बताएंगे। हालांकि, आज भी देवलोक में वह पुराण संहिता सौ करोड श्लोकों की ही है। वाल्मीकि जी ने भी पहले सौ करोड़ विस्तार वाला ही रामचरित्र लिखा था, इसका प्रमाण इस प्रकार है।

वाल्मीकिना तु यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
आहृत्य नारदायैवं तेन वाल्मीकये पुनः।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम् ॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - ५३, श्लोक - ७१-७२)

वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणा विहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
आह तन्नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः।
वाल्मीकिना च लोके तु धर्मकामार्थसाधकम् ॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अध्याय - ०२ , श्लोक - ९५-९७)

इसके अतिरिक्त विस्तार से इस श्रृंखला के प्रथम दो लेखों में आनन्द रामायण के सन्दर्भ से बहुत कुछ लिख चुका हूँ। अब चूंकि पुराणों को प्रत्येक द्वापर में प्रत्येक व्यास नये संस्करण के साथ सम्पादित एवं कथानकों की शैली अथवा प्रसङ्गों को संशोधित करते हैं तो उसके कई संस्करण, पाठभेद और श्लोक में न्यूनाधिक्य भाव मिलते हैं, क्योंकि नए संस्करण के आने से प्राचीन संस्करण नष्ट नहीं हो जाते। इसीलिए धर्मशास्त्रों में पुराणों एवं स्मृतियों में

कुछ के नाम के आगे वृद्ध, उत्तर, बृहत् आदि शब्द लगा हुआ मिलता है। जैसे वृद्धपाद्म या वृद्धमनुस्मृति, बृहन्नारदीय, शिवधर्मोत्तर, विष्णुधर्मोत्तर आदि आदि। ये शब्द अनेकों संस्करण के ही द्योतक हैं। इसके समर्थन में मैं निम्न प्रमाण देता हूँ -

दशधा चाष्टधा चैतत्पुराणमुपदिश्यते। बृहत्सूक्ष्मप्रभेदेन मुनिभिस्तत्त्ववित्तमैः॥
(शिवपुराण, वायवीय संहिता, पूर्वभाग, प्रथम अध्याय, श्लोक - ४२)

जो दश एवं आठ (अठारह) प्रकार के पुराण बताए गए हैं, उनके भी बृहत् एवं सूक्ष्म आदि प्रभेद "तत्व को जानने वाले" मुनियों ने कहे हैं। (अर्थात् पुराणों के कई संस्करण हैं)

पिशाचाः प्रायशो राम ब्रह्मराक्षसनामिनः। वेदमन्त्रस्य वेत्तारो दृश्यन्ते न पुराणवित्॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ११५, श्लोक - ४६)

(यह पुराणों का रहस्य इतना गूढ़ है कि) हे रामजी ! ब्रह्मराक्षससंज्ञक पिशाच प्रायः वेदमन्त्रों के जानकार होते हैं, किन्तु वे पुराणवेत्ता नहीं होते।

संस्करण की बात को पुष्ट करने के लिए शिवपुराण का एक प्रमाण देता हूँ,

व्यासनाम्ना चरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले ॥ एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरे द्वापरे द्विजाः ॥
निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम् ॥

इस संसार में व्यास नाम से अवतार लेकर घूमते हुए (व्यास जी के द्वारा) प्रत्येक द्वापर में वेदों को व्यवस्थित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य पुराण आदि भी रचे गए हैं।

यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम् ॥ तस्य भेदान्समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥
धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादश संहिताः॥

यह जो वेदसम्मत शिवपुराण है, इसके भेदों (संस्करण) को संक्षेप में बताता हूँ, सुनो और समझो। इस धर्मसंज्ञक पुराण की बारह संहिताएं हैं। (बारह संहिताओं के नाम, गुण, विवरण देने के बाद कहते हैं)

व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्॥ शैवं तत्र पुराणं वै चतुर्थं सप्तसंहितम्॥
(शिवपुराण, वायवीय संहिता, पूर्वभाग, प्रथम अध्याय)

व्यास जी के द्वारा इसे चौबीस हज़ार श्लोकों में संक्षिप्त कर दिया गया, जिससे अब इस

चतुर्थ भेद (संस्करण) में शिवपुराण की सात संहिताएं ही हैं। (वर्तमान में गीताप्रेस से सात संहिता वाले संस्करण का शिवपुराण प्रकाशित है, तो चौखम्बा वालों के पास द्वादश संहिता वाले संस्करण की दस संहिता तक प्रकाशित है। शेष दो संहिताएं कालक्रम से युगाक्रान्त होकर दुर्लभ हैं) स्कन्द पुराण में जो ८०१०० के अतिरिक्त भी श्लोक मिलते हैं, वह भी अनुचित नहीं है क्योंकि स्कन्दपुराण के दो संस्करण, एक तो इक्यासी हज़ार श्लोकों का तथा दूसरे के लक्षश्लोकी होने का प्रमाण भी है -

स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीति निगद्यते। सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु पठ्यते॥
परिलेख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्। शैवं स पदमाप्नोति मकरोपगमे रवेः॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य, अध्याय – ०२, श्लोक - ६१-६२)

उपर्युक्त श्लोक के दो अर्थ हैं, एकाशीति सहस्राणि च एकशतम् अर्थात् ८०१०० अथवा एकाशीति (सहस्राणि) एवं एकशतं (सहस्राणि) अर्थात् एक तो ८१००० और दूसरा १००००० श्लोकों वाला। स्कन्दपुराण के संहितात्मक एवं खण्डात्मक दोनों प्रभेदों को सम्मिलित करने पर इसकी साधुता सिद्ध हो जाती है। अब वायुपुराण का उदाहरण देखते हैं, जिसमें आपने कहा कि वायुपुराण के २४००० श्लोकों वाले होने का वर्णन भी है और १४००० श्लोकों का भी वर्णन है। वर्तमान उपलब्ध पाठ में तो और भी कम हैं -

अयुतं वामनाख्यञ्च वायव्यं षड्शताधिकम्।
(औशनस उपपुराण, विन्ध्यखण्ड, अध्याय – ०३, श्लोकांश - ३०)
अयुतं वामनाख्यञ्च वायव्यं षड्शतानि च।
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध – ०१, अध्याय -०३, श्लोकांश - ०७)

वामन में १०००० और वायुपुराण में १०६०० श्लोक हैं। उपर्युक्त मान के ही लगभग पाठ आज भी वायुपुराण में दृष्टिगत होते हैं। कहीं कहीं तो पुराणों की श्लोक संख्या उनके महा एवं उपस्वरूपों को जोडकर बताई गयी है, यथा विष्णुपुराण के वर्णित मान में विष्णु-विष्णुधर्म-विष्णुधर्मोत्तर तीनों पुराणों के मान सम्मिलित हैं। अब आप कहेंगे कि वर्तमान स्वरूप की तो पुष्टि हो गयी किन्तु १४००० श्लोकों के मान का क्या ? इसके लिए आपको वायुपुराण के अन्य भागों को भी देखना होगा। जैसे महाभारत के एक लाख श्लोकों वाली बात तो है ही, किन्तु खिलभाग हरिवंश अथवा दाक्षिणात्य बृहत्तर पाठों को मिलाकर उसमें लगभग सवा लाख श्लोकों की बात भी आती है।

यह भी अनुचित नहीं है क्योंकि सवा लाख श्लोकों का भी प्रमाण है -

सपादलक्षञ्च तथा भारतं मुनिना कृतम्। इतिहासमिति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम्॥
(औशनस उपपुराण, विन्ध्यखण्ड, अध्याय – ०३, श्लोक - १०)

उसी प्रकार वायुपुराण के अयुताधिक श्लोकों के वर्तमान संस्करण के अतिरिक्त हम इसमें १४००० श्लोकों वाले बृहत्तर संस्करण की बात भी बताते हैं जो समाज में अप्रचलित है। जैसे महाभारत का खिलभाग हरिवंशपुराण है, वैसे ही वायुपुराण का खिलभाग एकलिंग-पुराण है जो वायुपुराण का मेदपाटीय खण्ड है। इसमें भी वायु और नारद का ही सम्वाद वर्णित है। १६७६ ई० में महाकवि रणछोड़भट्ट ने महाराणा राजसिंह के काल की 'राजप्रशस्ति' अभिलेख में उनके वंश की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए एकलिंगपुराण के सन्दर्भ में निम्न श्लोक लिखा है -

इति वायुपुराणस्य सम्मतिस्तत्र विस्तरः।
द्रष्टव्यो बाष्पवंशेस्मिन् कार्यः शिष्टैस्तदादरः॥

यह वायुपुराण से समर्थित उसका विस्तृत भाग है जिसमें बाष्पवंश (इसी में आगे महाराणा कुम्भा आदि हुए) का वर्णन देखा जा सकता है एवं सज्जनों के द्वारा इसका आदर होना चाहिए। रणछोडभट्ट के समकालीन पण्डित सदाशिव ने भी 'राजरत्नाकर' में पार्वती के श्राप से नन्दी का मानवावतार, बाष्प के नाम से होने का उल्लेख करते हुए लिखा है - इत्थं प्रभञ्जनपुराणविदो वदन्ति, जबकि यह कथा मूल वायुपुराण की नहीं, एकलिंग-पुराण की है, अतः एकलिंगपुराण वायुपुराण का ही मेदपाटीय खिलखण्ड है। सदाशिव गोरवाल ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इसकी एक पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि बनाते समय इसी कारण से 'इति श्री वायुपुराणे मेदपाटीये श्रीएकलिंगमाहात्म्ये ...' की पुष्पिका ही लिखी है। १८५६ ई० की मातृका एकलिंगपुराण को वेदव्यासकृत ही बताती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एकलिंगपुराण के संयोजन से वायुपुराण १४००० श्लोकों की संख्या के लगभग सन्निकर्ष हो जाता है। जहाँ २४००० श्लोकों वाले वायुपुराण की बात आती है, यथा उदाहरण में निम्न श्लोक प्रस्तुत कर रहा हूँ -

यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं नाना वृत्तान्तसंयुतम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षैश्च साधुवृत्तसमन्वितम्॥ श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम् ॥

यो दद्याद्दधिसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य, अध्याय – ०२)

यह सब जो स्कन्दपुराण आदि की उक्ति है जहाँ २४००० श्लोकों वाले वायुपुराण का संकेत होता है, वहां वायवीय का अर्थ वायुपुराण नहीं, अपितु वायवीय संहिता वाला शिवपुराण ही है। अठारह पुराणों की गणना में यदि हम शिवपुराण को गिनते हैं तो वायुपुराण को नहीं गिनते और यदि वायुपुराण की गणना करते हैं तो शिव पुराण को नहीं गिनते हैं। यहां २४००० श्लोकों वाले वायवीय संहिता से युक्त शिवपुराण को बताया गया है, ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार से यह समझना चाहिए कि पुराण का रूप प्रत्येक चतुर्युगी में परिवर्तित होता रहता है। जिसमें अलग अलग व्यास अपनी अपनी शैली में पुनर्लेखन एवं संरक्षण करते हैं। इसीलिए पाठभेद और श्लोक संख्या में भेद दिखाई पड़ता है। इसमें कोई अप्रामाणिकता की बात नहीं है।

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

परस्पर विरुद्ध कथन :- भौगोलिक पदार्थ के विवरणमें पुराणों में कहीं-कहीं विरोधी विवरण भी मिल जाता है। किसी स्थान या देश का नाम क्यों ऐसा ही पड़ा - इसके उत्तर में विरुद्ध वचन भी मिलते हैं। एक उदाहरण दे रहा हूँ। अच्छोदा नदी से उत्पन्न होने के कारण एक सरोवरका नाम 'अच्छोद' (वायुपुराण ७३।३) पड़ा। पर इसी पुराणमें आगे (७७।७६) कहा कि अच्छोदसरः से निकलनेके कारण नदी का नाम अच्छोदा पड़ा। इस प्रकार और बहुत से प्रसङ्ग दिखलाये जा सकते हैं।

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

किसी के नाम के पड़ने के अगर दो कारण हैं, तो इससे कोई बात अप्रामाणिक कैसे हो गयी ? श्रीरामानंद स्वामी जी ने श्रीराम नाम के अनेकों प्रकार से तात्पर्य एवं अर्थ बताए हैं। भौगोलिक परिवर्तन, भूकम्प, आदि से तो समुद्र का पर्वत बन जाना (आधुनिक विज्ञान के अनुसार हिमालय आदि के निर्माण काल की प्रक्रिया) और पर्वत का समुद्र बन जाना ('मॉना किया' पर्वत का प्रशान्त महासागर में विद्रूपितभाव से समाहित होने लगना) आधुनिक विज्ञान भी मान रहा है। ऋषभपुत्र भरत एवं दुष्यन्तपुत्र भरत, दोनों ही भारत देश के नामकरण के कारण क्यों नहीं हो सकते ?

अब रही बात कि भौगोलिक वर्णन में भेद क्यों मिलता है। इसका उत्तर निम्न है -

यस्मिन् कल्पे तु यत् प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।
तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - २९०, श्लोक – १५)

जिस कल्प में ब्रह्मा जी ने पुराण का जैसा व्याख्यान किया, उसका उसका माहात्म्य उसके स्वरूप के द्वारा ही वर्णित होता है।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - ५३, श्लोक - ६३)

विद्वान् जन पिछले कल्पों के पुराणों को भी जानते हैं। पुराणों का अनुक्रमण करना, धन-यश-एवं आयु की वृद्धि करता है।

यो न वेद पुराणं हि न स वेदात्र किञ्चन।
कतमः स हि धर्मोऽस्ति किं वा ज्ञानं तथाविधम् ॥
(स्कन्दपुराण, अवन्ती/रेवाखण्ड, अध्याय – १, श्लोक - २०)

जो पुराणों को नहीं जानता, वह यहां कुछ भी नहीं जानता। उसमें भला कहाँ कैसा धर्म और ज्ञान है ? (पुराणों को जानने का अर्थ उनको पाश्चात्य म्लेच्छों के द्वारा षड्यंत्र से निर्धारित कालखण्ड और आपत्ति के अनुसार पढ़कर शंका उत्पन्न करना नहीं, अपितु सनातनी परम्परा के अनुसार उन्हें समझकर उनके अर्थ से शंकाओं का निवारण करना है)

एक उदाहरण और देता हूँ। प्रभास क्षेत्र के कई कल्पों में कई नाम वर्णित हैं -

अस्य क्षेत्रस्य नामानि कल्पे कल्पे पृथक्प्रिये॥
आयामादीनि जानीहि गुह्यानि सुरसुन्दरि॥
आद्ये कल्पे पुरा देवि प्रमोदनमिति स्मृतम्॥
नन्दनं परितस्तस्य तस्यापि परतः शिवम्॥
शिवात्परतरं चोग्रं भद्रिकं परतः पुनः॥ समिन्धनं परं तस्मात्कामदं च ततः परम् ॥
सिद्धिदं चापि धर्मज्ञं वैश्वरूपं च मुक्तिदम्॥
तथा श्रीपद्मनाभं तु श्रीवत्सं तु महाप्रभम्॥

तथा च पापसंहारं सर्वकामप्रदं तथा ॥ मोक्षमार्गं वरारोहे तथा देवि सुदर्शनम् ॥
धर्मगर्भं तु धर्माणां प्रभासं पापनाशनम्॥ अतः परं भवन्तीह उत्पलावर्त्तिकानि च ॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अध्याय १०, श्लोक – ३२-३८)

अलग अलग कल्प में इस क्षेत्र का नाम अलग अलग होता गया है। ये अत्यंत गुप्त हैं, इन्हें सरहस्य जानो। (पिछले बीस कल्पों में प्रभास क्षेत्र का नाम क्रमशः) प्रमोदन, नंदन, शिव, उग्र, भद्रिक, समिन्धन, कामद, सिद्धिद, धर्मज्ञ, वैश्वरूप, मुक्तिद, श्रीपद्मनाभ, श्रीवत्स, महाप्रभ, पापसंहार, सर्वकामप्रद, मोक्षमार्ग, सुदर्शन, धर्मगर्भ और इस कल्प में प्रभास है। आगे के कल्पों में इसके नाम उत्पल, आवर्तिकादि होंगे। इसी प्रकार से अलग अलग कल्पों की कथा ऋषियों ने सुनाई है। आपलोग प्रश्न करते हैं कि मार्कण्डेय जी ने युधिष्ठिर को महाभारत में जो रामकथा सुनाई, उसमें भला क्यों सीतात्याग नहीं सुनाया ? इसके दो कारण हैं।

पहला, राजा युधिष्ठिर इस बात से अत्यंत दुःखी थे कि धर्मात्मा होने पर भी वे घोर जंगल में कष्ट भोग रहे हैं। इसीलिए वे जानने के उत्सुक थे कि क्या पहले भी किसी धर्मात्मा को वनवास का कष्ट हुआ है ? इस प्रसङ्ग में केवल रामवनवास में घटित कथा का वर्णन, प्रश्नकर्ता की रुचि के अनुसार मार्कण्डेय जी ने किया था, इसीलिए सीतात्याग आदि नहीं सुनाया।

समतीते यथा कल्पे षष्ठे मन्वन्तरे गते ॥ सप्तमस्य चतुर्विंशे राजंस्त्रेतायुगे तदा ॥
यदा रामेण समरे सगणो रावणो हतः ॥ रामेणैव तदा राजन्कुम्भकर्णो निपातितः ॥
वर्तमाने तु यद्वृत्तं कल्पे यदुकुलोद्वह॥ रामस्य चरितं बद्धं तदा वाल्मीकिना शुभम् ॥
अतीतकल्पे यद्वृत्तं मया तत्काम्यके वने॥ युधिष्ठिराय कथितं धर्मपुत्राय पार्थिव ॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, प्रथम खण्ड, अध्याय ८१, श्लोक - २३-२७)

(मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं)- 'पिछले कल्प के छठे मन्वन्तर के बीतने पर जो सातवां मन्वन्तर आया, उसके चौबीसवें त्रेतायुग में अपने गणों के साथ रावण, श्रीराम जी के हाथों मारा गया। रामजी के ही द्वारा कुम्भकर्ण भी मारा गया। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! इस कल्प में जो राम जी की लीला हुई, उसे वाल्मीकि जी ने सुंदर चरित्र के रूप में लिपिबद्ध किया। पिछले कल्प में जो घटना घटी थी, उसे मैंने काम्यक वन में धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को

सुनाया था।' ऐसे ही स्वयं जाम्बवान् जी ने श्रीराम जी को ही उनके पिछले कल्प की कथा पद्मपुराण के अंतर्गत पुराकल्प रामायण के रूप में सुनाई है। तात्पर्य है कि पुराणों की कथा और भौगोलिक वर्णन में कुछ भेद इसीलिए है क्योंकि सभी अलग अलग कल्पों पर आश्रित हैं। कुछ प्रमाण और प्रस्तुत करता हूँ।

एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्। तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते॥

इस प्रकार से वह पद्म सुवर्णमय संसार के रूप में हो गया, तो उस कथानक का आश्रय लेकर बुद्धिमानों ने जो वृत्तांत कहा, वह ५५००० श्लोकों वाला पद्मपुराण कहलाया।

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। यत्प्राह धर्मानखिलांस्तद्युक्तं वैष्णवं विदुः॥

वाराहकल्प के वृत्तांत का आश्रय लेकर पराशर जी ने जो अखिल धर्मों को कहा, उसे विष्णुपुराण जानो।

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाब्रवीत्। यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम्॥

श्वेतकल्प के प्रसङ्ग के आधार पर जिन धर्मवाक्यों को वायुदेव ने कहा है, वह रुद्र के माहात्म्य से युक्त वायुपुराण हुआ।

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः। तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते॥

सारस्वत कल्प में जो श्रेष्ठ जन हुए, उनका वृत्तांत भागवत कहलाता है। (यहां भागवत का तात्पर्य श्रीमद्देवीभागवत से है क्योंकि सारस्वत कल्प में ही रावण का वध विजयादशमी को हुआ था और यह कथा श्रीमद्भागवत में नहीं, श्रीमद्देवीभागवत में है)

यत्राह नारदो धर्मान्बृहत्कल्पाश्रयाणि च। पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते॥

बृहत्कल्प में नारद जी ने जिन धर्मवाक्यों को कहा, उसे २५००० श्लोकों वाला नारद पुराण कहा जाता है।

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च। वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते॥

ईशान कल्प के वृत्तांत का आश्रय लेकर अग्निदेव ने वशिष्ठ जी को जो कहा, उसे अग्निपुराण कहते हैं।

अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम्।

....

भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते॥

अघोरकल्प के वृत्तांत-प्रसङ्गों के आधार पर जगत् की आगे के काल में होने वाली भविष्यप्रधान स्थिति का वर्णन जिसमें है वह भविष्यपुराण कहलाता है।

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च। सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्॥

.....

तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते॥

रथन्तरकल्प के वृत्तांत का आश्रय लेकर नारद जी ने सावर्णि को उत्तम श्रीकृष्ण माहात्म्य सुनाया है, वह १८००० श्लोकों वाला ब्रह्मवैवर्त पुराण है।

महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च। विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते॥

महावराहकल्प के माहात्म्य को आधार बनाकर भगवान् विष्णु ने पृथ्वी देवी को जो कहा, वह वराहपुराण कहलाता है।

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते॥

जब गारुड कल्प में ब्रह्मांड से गरुड़ जी का प्राकट्य हुआ, उसके आधार पर भगवान् श्रीकृष्ण ने जो कहा, उसे गरुड़पुराण कहा जाता है।

भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः। तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - ५३)

भविष्य के कल्पों में घटित होने वाली घटनाओं के आधार पर ब्रह्मदेव के द्वारा कहे गए पुराण को ब्रह्माण्डपुराण कहते हैं। इस प्रकार से, जब प्रत्येक कल्प में कुछ भिन्नता के साथ सृष्टि होती है, कुछ भिन्नता के साथ घटनाएं भी घटित होती हैं, तो स्वाभाविक है कि उनका वर्णन पुराणों में कुछ भिन्न प्रकार से ही होगा। इसके अतिरिक्त एक एक पुराण, स्वयं भी स्वनामसंज्ञक कल्पों के अधिष्ठाता हैं।

कूर्मकल्पो मत्स्यकल्पः श्वेतवाराहकल्पकः। नृसिंहकल्पश्च तथा तथा वामनकल्पकः॥

स्कन्दकल्पो रामकल्पः कल्पो भागवतस्तथा।
तथा मार्कण्डकल्पश्च तथा भविष्यकल्पकः॥
लिङ्गकल्पस्तथा ज्ञेयस्तथा ब्रह्माण्डकल्पकः।
अग्निकल्पो वायुकल्पः पद्मकल्पस्तथैव च॥
शिवकल्पो विष्णुकल्पो ब्रह्मकल्पस्तथा क्रमात्।

यहां ध्यान देने की बात है कि इनका क्रम उल्टा है। पहले ब्रह्मकल्प, फिर विष्णुकल्प, फिर शिव, पद्म, वायु आदि आएंगे। रामकल्प से वामन का संकेत है, साथ ही यहाँ शिव तथा वायु दोनों का वर्णन एक साथ है।यहां यह भी ध्यातव्य है कि इन्हीं अठारह महाकल्पों के नाम पर पुराणों के नाम रखे गए हैं।

कल्पनाम्ना पुराणं च महादेवेन निर्मितम्। अष्टादशपुराणानि निर्मितानि शिवात्मना ॥
(यह मत भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व का है)

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

अब आईये, वाल्मीकि रामायण की ओर चलते हैं। इसके गौड़ीय, दाक्षिणात्य और पश्चिमोत्तरीय पाठ पाये जाते हैं; पर तीनों में अनेक पाठभेद पाये जाते हैं। किसे ऋषिप्रोक्त पाठ माना जाय ? इतना ही नहीं। ऋषि के परिकल्पनानुसार इस कृतिमें ५०० सर्ग और और २४००० श्लोक होने चाहिए, पर वर्तमान में ६४५ सर्ग और २३४४० श्लोक प्राप्त हैं। क्या यह प्रमाणित नहीं करता कि वर्तमान स्वरूप विकृत है?

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

बिल्कुल नहीं। अनेक प्रतियों में तो यह संख्या पच्चीस हज़ार के लगभग है जो कि बृहद्धर्म उपपुराण के मत से प्रमाणित ही है। गोविन्दराज जी ने भाष्य में उत्तरकाण्ड के वाल्मीकि कृत ११० सर्ग की गणना लिखी की है। आनन्द रामायण में वर्णन है कि वेदव्यास जी ने बाद में रामायण के प्राथमिक और औपसांहारिक सर्ग लिखे। इस प्रकार उत्तरकाण्ड में १११ सर्ग हुए, जो आज भी गीताप्रेस आदि के संस्करणों में उपलब्ध हैं। तो सर्ग आदि की दृष्टि से तो उत्तरकाण्ड गलत नहीं हुआ। फिर एक बात उठती है कि बाकी हिसाब शेष कांडों पर ही गलत बैठता होगा, किन्तु यहां संदेह तो उत्तरकाण्ड में ही कर देते हैं। अस्तु, शास्त्रों

में वाल्मीकीय रामायण के ऋषिप्रणीत ही न्यूनतम तीन संस्करण की चर्चा है।

१) लव-कुश को २४००० वाला सर्वविदित संस्करण पढ़ाया।

२) वाल्मीकि जी ने जो रामायण २५००० श्लोकों में लिखकर वेदव्यास जी को दी थी, इस बात का प्रमाण बृहद्धर्म पुराण में स्वयं दुर्गा देवी के वाक्य से, सबसे पहले वाले लेख के अंत में श्लोक के साथ दे चुका हूँ। इसमें एक हज़ार श्लोक जो बढ़ गए, उनमें लव कुश का अयोध्या जाना, राम दरबार आदि में कथा सुनाना, आदि सम्मिलित होना चाहिए, जिसे स्वाभाविक है, कि वाल्मीकि जी ने इस घटना के बाद लिखा और चूंकि इसमें लवकुश के ही रामायण पाठ करने की घटना थी, सो लवकुश को पढ़ाये संस्करण में नहीं हो सकती थी क्योंकि उसे पढ़कर ही तो वे रामदरबार में गए थे।

३) वाल्मीकि जी ने विस्तृत रूप से शतकोटिविस्तार वाले की रचना की। जिसका प्रमाण मत्स्यपुराण एवं स्कन्दपुराण से दे चुका हूँ। किन्तु लोकालोक में उनके विभाजन के समय पूरी कथा खण्डित हो गयी तो शिव जी के आज्ञानुसार स्वयं वेदव्यास जी ने उन भागों के अंश एकत्र करके अपने सम्पादकीय में कुछ सर्ग एवं श्लोकों को जोड़ते हुए नवीन संस्करण तैयार किया। इस बात का प्रमाण आनन्द रामायण के पूरे श्लोकों के साथ इस चर्चा के द्वितीय लेख (भाग ०२) में कर चुका हूँ।

इस प्रकार से वर्तमान संस्करणों में से एक वेदव्यास जी के द्वारा संकलित, संशोधित एवं सम्पादित है, जिसे कभी वाल्मीकि मुनि ने लिखा था और उसे वेदव्यास ने शिव जी की आज्ञा से लुप्त होने से बचाया, जिसका उल्लेख आनन्द रामायण में वाल्मीकि जी ने ही किया है। इसके अलावा केवल वेदव्यास जी ने ही उसे संकलित और संशोधित किया ऐसा नहीं है। आनन्द रामायण में ही उन अंशों की रक्षा और उन्हें ग्रहण करके अपने माध्यम से सम्पादित - प्रसारित करने वालों में अगस्त्य जी का भी नाम है, जो 'दक्षिण' में ही रहते हैं। तो इस प्रकार से सिद्ध हुआ कि नानाविध ग्रंथों में वाल्मीकीय रामायण के जो प्रसङ्ग हैं, उनके आधार पर इसके कई मान्य ऋषियों के द्वारा कई संस्करणों के रूप में लिखित होने की बात पुष्ट होती है, इसीलिए सभी पाठभेद एवं संस्करण सर्वथा मान्य हैं।

अब हम केवल उत्तरकाण्ड पर थोड़ी सी चर्चा और करते हैं। बृहद्धर्म पुराण में स्वयं देवी दुर्गा ने जया और विजया को रामायण का महत्व बहुत विस्तार से बताया है। वहां पर देवी वाक्य से वर्णन है कि ब्रह्मदेव ने वाल्मीकि जी को रामायण लिखने का आदेश देते हुए उन्हें रामायण कवच का उपदेश किया।

पूरा कवच मैं मन्त्रप्रकाशन के भय से नहीं दे रहा हूँ, बस प्रारम्भ एवं अंतिम का मुख्य भाग देता हूँ -

ॐ नमोऽष्टादशततत्त्वरूपाय रामायणाय महामन्त्रस्वरूपाय मा निषादेऽति मूलं शिरोऽवतु अनुक्रमणिकाबीजं मुखमवतु... ....काललक्ष्मणसम्वादोऽवतु नाभिं आचरणीयं श्रीरामादिधर्मं सर्वाङ्गं ममावतु इति रामायणकवचं रामायणवाचकाः पठेयुस्त्वं चेदं जस्वा रामायणं कुरु सप्तकाण्डम्।

(बृहद्धर्म पुराण, पूर्वखण्ड, रामायणोत्पत्ति-प्रकरण, अध्याय - २५)

'अष्टादशतत्व से युक्त, महामंत्ररूपी रामायण को प्रणाम है। मा निषाद, यह मूलमन्त्र मस्तक की रक्षा करे। अनुक्रमणिका रूपी बीज मुख की रक्षा करे .... काल और लक्ष्मण का सम्वाद नाभि की रक्षा करे, एवं स्वयं धर्ममय श्रीराम जिनका आचरणीय चरित्र, पूरे शरीर की रक्षा करे। इस रामायण कवच को रामायण का पाठ करने वाले पहले पढ़ें और अब तुम (वाल्मीकि) भी इसका जप करके सात कांडों वाली रामायण लिखो।' यहां दो बातें ध्यान में रखें। रामायण जी के कवच में ही स्पष्ट रूप से सात कांडों को लिखने का आदेश ब्रह्मदेव ने वाल्मीकि जी को दिया है। दूसरे, काल-लक्ष्मण सम्वाद की बात स्पष्ट आयी है जो उत्तरकाण्ड का ही एक प्रमुख प्रसङ्ग है।

अनावृष्टिर्महापीडा ग्रहपीडाप्रपीडिताः। आदिकाण्डं पठेयुर्ये ते मुच्यन्ते ततो भयात्॥

वर्षा के अभाव से जन्य अत्यंत पीड़ा, ग्रह आदि से जन्य कष्ट से जो पीड़ित हैं, वे आदिकाण्ड को पढ़कर भय से मुक्त हो जाते हैं।

पुत्रजन्मविवाहादौ गुरुदर्शन एव च। पठेच्चश्रृणुयाच्चैव द्वितीयं काण्डमुत्तमम्॥

पुत्रजन्म, विवाह, गुरुदर्शन आदि के समय दूसरे (अयोध्या) काण्ड को पढ़े या सुने।

वने राजकुले वह्निजलपीडायुतो नरः। पठेदारण्यकं काण्डं श्रृणुयाद्वा स मङ्गली॥

जंगल में जाना हो, राजदरबार में जाना हो, या अग्नि-जल आदिव से व्यक्ति पीड़ित हो तो वह मंगलाकांक्षी अरण्यकाण्ड को पढ़े या सुने।

मित्रलाभे तथा नष्टद्रव्यस्य च गवेषणे।
श्रुत्वा पठित्वा कैस्किन्ध्यं काण्डं तत्तत् फलं लभेत्॥

मित्र के मिलने पर, नष्ट हो गई वस्तु को खोजने के समय, किष्किन्धा काण्ड को पढ़ या सुनकर व्यक्ति अभीष्ट सिद्धि करता है।

श्राद्धेषु देवकार्येषु पठेत् सुन्दरकाण्डकम्। शत्रोर्जये समुत्साहे जनवादे विगर्हिते।
लङ्काकाण्डं पठेत्किंवा शृणुयात् स सुखी भवेत्॥

श्राद्ध या यज्ञ आदि में सुंदरकांड पढ़ना चाहिए। युद्ध, उत्साह, शत्रु को जीतने के उपक्रम के समय अथवा लोगों के मध्य सम्मान की रक्षा हेतु शपथ आदि लंकाकाण्ड को पढ़े या सुने।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि काण्डमभ्युदयोत्तरम्।
आनन्दकार्ये यात्रायां स जयी परतोऽत्र च॥

जो व्यक्ति यात्रा में, आनन्द आदि के अवसर पर अभ्युदयसंज्ञक उत्तरकाण्ड को पढ़ता या सुनता है, वह यहां और दूसरे, सभी स्थानों में विजय प्राप्त करता है।

मोक्षार्थी लभते मोक्षं भक्तार्थी भक्तिमेव च।
ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं ब्रह्मतत्त्वोपलम्भकम्॥

ब्रह्मतत्व का बोध कराने वाले इस काव्य से मोक्ष, भक्ति या ज्ञान की कामना वाले व्यक्ति को ये सब मिल जाता है।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि काव्यं वाल्मीकिना कृतम्।
आदिकाण्डं माघमासे द्वितीयं फाल्गुने तथा॥
चैत्र आरण्यकं काण्डं कैस्किन्ध्यं माधवे तथा।
ज्यैष्ठे तु सुन्दरं काण्डं एवं काण्डद्वयं शुचौ॥
शुद्धकाले समारभ्य ब्रह्मचारी समाहितः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि काव्यं सर्वमतः क्रमात्॥

जो वाल्मीकि जी के द्वारा लिखे गए इस महाकाव्य को सुनता या पढ़ता है, उसे कि माघ के महीने में आदिकाण्ड, फाल्गुन में अयोध्याकाण्ड, चैत्र में अरण्यकाण्ड, वैशाख में किष्किन्धाकाण्ड, ज्येष्ठ में सुन्दरकाण्ड तथा आषाढ़ में शेष दो (लङ्का एवं उत्तरकाण्ड) को पढ़ना या सुनना चाहिए। अच्छे मुहूर्त में ब्रह्मचर्यपूर्वक, जो इस क्रम से इस काव्य को

सुनता है .....

फलं तस्य प्रवक्ष्यामि शृणुतं विजये जये। स्त्रीराजपितृगोहन्ता ब्रह्महा हेमचोरकः॥
सुरापो गुरुभार्यागो देवद्वेषकरस्तथा। नानापापरतो वापि तत्क्षणादेवमुच्यते॥
त्रैलोक्यपावनः सोऽपि देवानामपि दुर्लभः॥

(बृहद्धर्म उपपुराण, पूर्वखण्ड, रामायणोत्कीर्तन-प्रकरण, अध्याय - २६, श्लोक – ०८-२०)

हे जया और विजया ! मैं उसके पुण्यफल को कहती हूँ। स्त्री, राजा, पिता, गौ तथा ब्राह्मण को मारने वाला, सुवर्ण की चोरी करने वाला, मदिरापान करने वाला, गुरुपत्नीगमन करने वाला, तथा देवताओं से द्वेष करने वाला, एवं अन्य पापों से युक्त व्यक्ति भी उसी क्षण पापों से मुक्त हो जाता है। वह स्वयं भी त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला हो जाता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

(यह प्रमाण और प्रसङ्ग बृहद्धर्म पुराण के पण्डित हरिप्रसादशास्त्री सम्पादित, एवं कलकत्ता से १८८८ ई० में प्रकाशित संस्करण से लिया गया है) इस प्रकार से पूर्व में दिए गए अनेकानेक असंदिग्ध प्रमाणों एवं अभिनव प्रमाणों के आधार पर भी उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता सर्वथा सत्य है।

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

पूर्व में मैंने संकेत किया था कि आपके लेख का निष्कर्ष विवेचना रहित है। किसी कथानक की सिद्धि (अथवा इसका प्रक्षिप्त होना) मात्र इस आधार पर नहीं होनी चाहिए कि यह कथानक इन-इन स्थानोंमें पाया जाता है, वरन् गंभीर मीमांसा पर आधारित होना चाहिए। आपने शम्बूकवध प्रकरण याद दिला दिया, अच्छा किया। मैं कथा की पुनरुक्ति नहीं करूँगा, परन्तु जो प्रश्न उठ रहा है उसपर आपका ध्यानाकर्षण चाहूँगा। शम्बूक (शूद्र) की तपस्याके कारण ब्राह्मण बालक की मृत्यु हो गयी, ऐसा कहा गया है। क्या आप ऐसा मानते हैं? यदि नहीं, तब तो इसे प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा और यदि हाँ तो निम्न प्रश्नका समाधान बतायें -

१. रामराज्यमें ऐसी कौन सी व्यवहारिक न्यायप्रक्रिया थी जिसमें कर्म (अथवा अविहित कर्म) तो कोई और करता था और उसका फलभोग कोई और ? किसी भी धर्मशास्त्र या स्मृतिमें इस व्यवहारका समर्थन मिलता है क्या ? इससे भगवान् श्रीरामकी न्यायप्रियतापर

प्रश्नचिह्न नहीं उठ जायेगा ?

२. अब उसी उत्तरकाण्डमें आगे (७।९९।१३) चलकर कहते हैं-

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।
नानर्थो विद्यते कश्चिद्रामे राज्यं प्रशासति॥

अर्थात् रामराज्य में किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी और न किसी प्रकार की व्याधि से पीड़ित होता था। यह यदि सत्य है तो ब्राह्मणबालक काल-कवलित कैसे हुआ ? महर्षिका यह वचन मिथ्या प्रमाणित हो जायेगा अथवा यह श्लोक प्रक्षिप्त हो जायेगा।

३. दण्ड देना राजाका धर्म है परन्तु उसे क्रियान्वित करना राजाका कर्म कैसे ?

४. श्रीराम ने तलवार से शम्बूकका सिर काट डाला। इस कथानक के पूर्व कहीं भी श्रीराम ने तलवार को शस्त्ररूप में व्यवहार नहीं किया। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि इधर शम्बूक का सिर कटा और उधर ब्राह्मणबालक जीवित ! यहाँ कौनसा कर्म सिद्धान्त चरितार्थ हुआ? मैं समझता हूँ कि इतनी सारी विसंगतियाँ ही शम्बूकवध-कथानक को अनर्गल प्रलाप सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं।

हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत और शास्त्रों पर गौरव है और प्रत्येक भारतवासी को होना भी चाहिए। परन्तु उसका अनुशीलन होना चाहिए, उसकी मीमांसा होनी चाहिए। विज्ञान के क्षेत्र में हमने ही सारे विश्व को आलोकित किया। परन्तु ज्ञानगौरव का स्थान जब ज्ञानगर्व ने ले लिया तो हमारा ज्ञान शिथिल पड़ता गया और अवनति को प्राप्त हो गये। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारा सनातन वैदिक हिन्दू धर्म इतना उन्नत है कि हम पुनः विश्वका मार्गदर्शन करनेमें सक्षम होंगे। आवश्यकता है मात्र आत्ममंथन करते हुए मीमांसापद्धति से अपने शास्त्रों के आलोडन का।

किसी विद्वान् का कोई अंश हो सकता है कि हमें ठीक नहीं लगता तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वह अयोग्य और त्याज्य है। उसके बहुत सारे कथन समीचीन होंगे। एक और बात, इतना तो समझ लेना चाहिए कि किसी के कार्य का मूल्यांकन करने का अधिकारी वही होता है जिनकी विद्या, बुद्धि, तपश्चर्या इत्यादि उनसे अधिक वा कम-से-कम समकक्ष तो हो ही। अब मैं स्वयं तो 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर' रहूँ और कहूँ कि न्यूटन ने गति-सिद्धान्त में भारी भूल की तो यह हास्यास्पद ही होगा। इससे बचना चाहिए।

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

मेरा लेख विवेचना रहित कैसे है, जबकि मैंने वहां प्रत्येक धारणा और वक्तव्य को शास्त्रीय श्लोकों से पुष्ट किया है। यह कैसा दृष्टिकोण है आपलोगों का कि केवल संदेह के आधार पर जैसे कि 'ये बात सही नहीं लगती, ऐसा क्यों कर दिया, वैसा क्यों कर दिया', इन सबको आप तो विवेचना का नाम दे देते हैं, किन्तु मैं अपनी एक एक उक्ति के पीछे ठोस शास्त्रीय वाक्य का बल देता हूँ तो वो आपको विवेचना रहित दिखता है।

जिन कथानकों की हम बात कर रहे हैं, वे किसी सामान्य यत्र तत्र स्थान पर नहीं, शास्त्रों में लिखे हुए हैं और पूर्वाचार्य जनों ने उसका अनुपालन तथा समर्थन भी किया है। अब यदि उनकी बातें भी असत्य ही हैं, तो ऐसी बुद्धि से भगवान् हमें बचाएं। किसी भी विषय में संदेह होने पर शास्त्र से ही प्रमाण खोजे जाते हैं, और यहां उन शास्त्रों को मात्र "इन-इन स्थान" की संज्ञा दी जा रही है ? मैं बिल्कुल मानता हूँ कि शम्बूक वध की कथा सत्य है, इसमें कोई प्रक्षेप नहीं।

१) रामराज्य में पूर्णतः शास्त्रीय वाक्यों के आधार पर चलने वाली न्याय व्यवस्था थी। राजा के राज्य में कोई अधर्म होता है तो किसी न किसी अंश में राजा के साथ ही पूरी प्रजा को उसका फल भोगना पड़ता है। जैसे हम किसी के घर में आग लगा दें तो वह आग उस घर वाले नहीं लगाई, किन्तु मेरे किये कर्म से उसे हानि हुई। आपने प्रमाण मांगा है तो मैं अवश्य दूंगा। जब बात इतनी बढ़ ही गयी है कि ऐतिहासिक प्रमाणों के स्थान पर मात्र चिद्विलास से ही प्रमाण एवं प्रक्षिप्त का निर्णय किया जा रहा है तो प्रमाण दूंगा ही ...

विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते क्षयः ॥
(स्कन्दपुराण, माहेश्वर/कौमारिका खण्ड, अध्याय ४०, श्लोक- २२२)

यदि ब्राह्मण अपने कर्म को दूषित कर ले, तो प्रजाओं का नाश होता है।

क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कंध, अध्याय – ८९, श्लोक – २३)

ब्राह्मण कहते हैं - इस क्षत्रबंधु (नाम मात्र के क्षत्रिय) के कर्मदोष से ही मेरा बालक मर गया।

मातामहस्य दोषेण वेनः कालात्मजात्मजः। निजधर्मं परित्यज्य अधर्मनिरतोऽभवत्॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड, अध्याय - २८, श्लोक - २२-२३)

अपने नाना के दोष से ही वेन ने अपने धर्म का परित्याग करके अधर्म में मन लगाया।

शूद्रस्त्रिरात्रं कुरुते विषये यस्य भूपतेः। तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय - ३२०, श्लोक - ११)

जिस राज्य में शूद्र तीन रात्रि तक उग्र तप कर लेता है, उस राजा का राष्ट्र अकाल, तस्कर एवं रोगों से कष्ट पाता है। (शूद्र के लिए उग्र नहीं, सौम्य तप का विधान है)

और्व मुनि का सगर के प्रति राज्यधर्म के वर्णन में यह वचन है -

यस्य राज्ये सदा शूद्राः पुराणं संहितां तथा।
पठन्ति स्यात् स हीनायुः राजा राष्ट्रेण सान्वयः॥
(कालिकापुराण, अध्याय - ८८, श्लोक - ४७-४८)

जिसके राज्य में शूद्र सदैव वेद और पुराण का पाठ करते हैं उस राजा की आयु का, अपनी प्रजा की आयु के साथ ही नाश हो जाता है। (शूद्र के लिए सदाचार ग्रंथ, स्वकर्मप्रकाशक लोकशिक्षा, आदि का विधान है। वेद-पुराणों के पाठ का निषेध है।)

सङ्गत्या वै पापकृन्मानवानां तुल्यं दण्डं साधवः संस्पृशन्ति।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्तस्मात् पापैः सङ्गमं नैव कुर्यात्॥
(एकलिङ्गपुराण, अध्याय - १२, श्लोक – ११७)

वायुदेव ने कहा - हे नारद ! पापियों की संगति करने से सज्जनों को भी उनके बराबर ही दण्ड भोगना पड़ता है, जैसे सूखे काष्ठ के साथ गीला काष्ठ भी जल जाता है, अतः पापियों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए।

कृते राष्ट्रं तथा लिप्येत्त्रेतायां ग्राममेव च। द्वापरे कुलमेकञ्च कलौ कर्ता च लिप्यते॥
(एकलिङ्गपुराण, अध्याय - १२, श्लोक – १२८)

सत्ययुग में पापी का किया गया पाप पूरे राष्ट्र को लगता है। त्रेतायुग में एक पापी का पाप पूरे ग्राम को लगता है, द्वापर में एक कुल को और कलियुग में केवल पाप करने वाले को लगता है

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः॥
(विष्णुधर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय - ६१, श्लोक - ६५)

जिस राज्य में वेदज्ञ ब्राह्मण भूख से पीड़ित होता है, वह राज्य रोग, अकाल एवं तस्करों से कष्ट पाता है। इस प्रकार समाज के अलग अलग व्यक्तियों के कर्म एवं स्थितियों का प्रभाव अन्य पर भी पड़ता है। जैसे राजा के किये पाप या यज्ञ से प्रजा को दुःख या सुख मिलता है, वैसे ही प्रजा में भी कोई व्यक्ति पाप या पुण्य करे तो उसका भी तद्वत्काम प्रभाव दिखता है।

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि धर्मपरायण समाज में किसी एक का भी किया गया कुकृत्य सबों पर कुछ न कुछ प्रभाव युगकाल के भेद से अवश्य डालता है। इससे भगवान् की न्यायप्रियता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगेगा, कारण आगे बताऊंगा। भगवान् की लीला और पूर्वापर उद्देश्य को न समझकर उनके ऊपर, यहां तक कि उनके भगवान् ही होने पर ऐसे ही प्रश्नचिह्न देवी सती ने भी लगा दिए थे, परिणाम सभी जानते हैं।

२) जब तक धर्म का पालन होता रहे तभी तक सुख और शांति सम्भव है। सामान्यतः अकालमृत्यु आदि नहीं होती थी। किन्तु यदि कोई हठपूर्वक मारने ही के लिए आक्रमण कर दे तब ? फिर तो मृत्यु होगी ही न। वायुदेव के अवतार आद्यमध्वाचार्य जी ने महाभारततात्पर्यनिर्णय में स्पष्ट निर्णय लिखा है कि "शम्बूक देवत्व प्राप्त करके लोकसंहार की कामना से तप कर रहा था"। प्रहार को झेलने की शक्ति सबसे कम बालकों में ही होती है, इसीलिए उसके मारण सम्बन्धी तपोबल से बालक मरने लगे। राम जी ने राजा बनने के बाद भी कई युद्ध लड़े हैं, ये भी एक प्रकार का मान्त्रिक युद्ध ही था।

३) दण्ड देने में ही क्रियान्वित करने का भाव छिपा है। आप महाभारत आदि का प्रसङ्ग देखें कि राजाओं को क्यों बनाया गया ? ताकि वे दण्ड दे सकें। राज्याभिषेक के समय उसमें सभी देवताओं का न्यास होता है, जिसमें दण्ड देने वाले यमराज भी होते हैं। राजा केवल न्यायाधीश नहीं है कि दण्ड का निर्णय सुना दिया किन्तु काम कोई और करे। राजा स्वयं दण्ड देता भी है।

शम्बूक को मारने में कोई दूसरा समर्थ नहीं था क्योंकि वह बहुत तेजस्वी और बलवान् था। पहले वह जंघासुर नाम का राक्षस था जिसने पार्वती देवी को प्रसन्न करके वरदान

मांगा था। साथ ही, उसने कुटिलता से रुद्रपद को ही हथियाना चाहा। वो कोई निरीह, असहाय, भजनानंदी, सीधा साधा शूद्र नहीं था। जैसे ब्राह्मण के भेष में रहते हुए भी राक्षसराज रावण लोकसंहार करता था वैसे ही जंघासुर भी शूद्र शम्बूक के भेष में लोकसंहार का उपक्रम कर रहा था। इसीलिए उसके उद्धार के लिए सीधे भगवान् को ही हस्तक्षेप करना पड़ा। मैंने लेख भाग ०२ में श्लोक के साथ प्रमाण दिया है। राजा स्वयं भी दण्ड देता है, इसीलिए पृथ्वी को दण्ड देने के लिए स्वयं महाराज पृथु तत्पर हो गए थे। कलियुग को दण्ड देने हेतु स्वयं राजा परीक्षित् तत्पर हो गए थे।

रामजी स्वयं कहते हैं - क्षत्रियैः धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १०, श्लोक – ०३)

क्षत्रिय इसीलिए धनुष धारण करता है कि किसी के मुख से दुःखभरी कराह न निकले। (तात्पर्य यह है कि क्षत्रिय का काम ही है कि शस्त्रधारण करके जिन पर अत्याचार हो रहा हो, उनकी रक्षा करे।)

४) कैसी विचित्र बात करते हैं आप ? आनन्दरामायणोक्त श्रीरामरक्षास्तोत्र तो पढ़ा ही होगा आपने ?

सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा। गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ॥
साथ ही भगवान् का स्वरूप कैसा है ?
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् ॥

तलवार के साथ, तरकश, धनुष, बाण लेकर राक्षसों का संहार करने वाले हैं। पूर्व में कबन्ध के हाथों को काटने के लिए भगवान् ने तलवार का ही प्रयोग किया था, यह सर्वविदित बात है।

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ। अच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः ॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः। चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - ७०, श्लोक – ८-९)

तब उन देशकाल को जानने वाले राघवों ने उसकी (कबन्ध की) दृढ़ भुजाओं को तलवार से कंधे काट कर अलग कर दिया। शीघ्रता से रामजी ने उसके दाहिने हाथ को तलवार से काट डाला एवं वीर लक्ष्मण ने बाएं हाथ को काटा।

वह खड्ग आदि उन्हें अगस्त्य जी ने दिया था।

अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यन्तत्प्रसादतः।
धनुः खड्गञ्च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः ॥
जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरीं तटे।
(अग्निपुराण, अध्याय – ०७,श्लोक - ०२)

कुछ और प्रमाण देखें -

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्। वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः। दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ ॥
संपूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः। महारजतकोशोऽयमसिः हेमविभूषितः॥
अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्॥
तद्धनुस्तौ च तूणि च शरं खड्गं च मानद। जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १२, श्लोक – ३२-३६)

अगस्त्य जी कहते हैं - ये महान् और दिव्य धनुष विष्णु का है, जो स्वर्ण एवं हीरे से सुशोभित है, इसे विश्वकर्मा ने बनाया था। ये सूर्य के समान तेजस्वी और अमोघ, ब्रह्मशिर नामक श्रेष्ठ बाण है, ये मुझे दो अक्षय तरकशों के साथ इन्द्र ने दिया था। उनमें सदैव अग्नि के समान दाहक बाण भरे रहते हैं। यह चांदी की म्यान और *सोने से मढ़ी तलवार* है। हे राम ! इसी धनुष से पहले युद्ध में विष्णु ने राक्षसों का संहार करके देवताओं का ऐश्वर्य उन्हें वापस लाकर दिया था। इस धनुष, अक्षय तरकश, दिव्य बाण एवं *तलवार* को तुम विजय की कामना से वैसे ही धारण करो, जैसा कि इन्द्र वज्र को धारण करते हैं। शूर्पणखा के प्रसङ्ग में भी ऐसे तलवार के प्रयोग से विरूप करने का वर्णन है -

इत्युक्तो लक्ष्मणः तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग - १८, श्लोक - २१)

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि रामजी खड्गधारी भी थे और साथ ही समयानुसार प्रयोग भी करते थे।

शम्बूक का सिर कटा और ब्राह्मण बालक जी उठा, इस बात पर आपको क्यों आश्चर्य हुआ है ? भगवान् तो पूरी वानर सेना को जीवित कर दिए थे, यहां तो एक बच्चा ही है। अस्तु, केवल आप ही नहीं, वशिष्ठ जी भी इसे आश्चर्य ही मानते हैं। वशिष्ठ जी ने स्वयं निम्न बात कही -

यस्याधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि ॥
पुरे वा राजशार्दूल कुरुते दुर्मतिर्नरः। क्षिप्रं स नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥
चतुर्थं तस्य पापस्य भागमश्नाति पार्थिवः।
सत्त्वं पुरुषशार्दूल गच्छस्व विषयं स्वकम् ॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर। एवं ते धर्मवृद्धिश्च बलस्य वर्धनं तथा ॥
भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवनम्। नारदेनैवमुक्तस्तु साश्चर्यो रघुनन्दनः ॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ३५, श्लोक – ५२-५६)

जिस राजा के राज्य में अधर्म या दुष्कृत्य होता हो, जिसके नगर में कोई व्यक्ति दुर्मति से युक्त कर्म कर रहा हो, वह राजा शीघ्र ही नरक में जाता है। जब तक उस तक पाप का निवारण नहीं हो जाता है तब तक वह राजा उसके पाप का चतुर्थांश भोगते रहता है। इसीलिए तुम शीघ्र जाओ और निरीक्षण करके देखो कि तुम्हारे राज्य में क्या हो रहा है और जहां गलत होते देखो वहां उसका प्रतिकार करो। इसी से तुम्हारे धर्म एवं बल दोनों वृद्धि को प्राप्त होंगे। इसके बाद ही यह बालक पुनर्जीवित होगा। इस आश्चर्यजनक बात को नारद मुनि मुझे पहले ही बता चुके हैं। इस प्रकार से हमने देखा कि न तो शम्बूक का वध कोई दूसरा कर सकता था, न ही रामजी शांत रह सकते थे। एक तो शम्बूक कोई लोकोपकारी कृत्य कर नहीं रहा था और दूसरे गुरु वशिष्ठ जी ने स्वयं ही जाकर निरीक्षण करो और समाधान करो, ऐसा आदेश राम जी को दिया था।

मैं समझता हूँ कि जिन भी विसंगतियों की चर्चा प्रतिपक्ष कर रहा है वह मात्र यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलम् के कारण मोहबुद्धि के कारण उत्पन्न हो रही हैं। पूर्वापर प्रसङ्ग को देखकर ही कुछ कहना चाहिए। किसी विषय पर संदेह होने पर हम शास्त्र एवं पूर्वाचार्यों के मत का आश्रय लेते हैं। आनन्द रामायण में निर्देश है कि यदि रामकथा में कोई संदेह हो तो अन्य पुराणों से उसे मिलाकर समझ लेना चाहिए। मैंने रामायण में शम्बूक वध के प्रसङ्ग पर उठे संदेह को आनन्द रामायण के निर्देश अनुसार पद्मपुराण के

वर्णन के आधार पर एवं साथ ही श्रीआद्यमध्वाचार्य जी के द्वारा दिये गए स्पष्ट "निर्णय" के आधार पर समन्वय करके ही उसे प्रामाणिक जाना और समझा है। अतः उपर्युक्त विसंगतियाँ मात्र ग्रंथ के प्रति पूर्वाग्रही अश्रद्धा से युक्त एवं कुतर्कजन्य हैं। जिन्होंने यह तर्क तक दे दिया कि राम जी तो तलवार ही न रखते थे, इसीलिए शम्बूक-वध प्रक्षिप्त है, उनके विषय में यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः उन्होंने श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त होकर ढंग से वाल्मीकीय रामायण पर भी पर्याप्त परिश्रम नहीं किया है, शेष ग्रंथों की बात ही क्या ..

ऐसे में भारत का भविष्य अंधकारमय ही हैं। श्री रामाधार शर्मा जी ! आपने कहा कि हमारे सनातन धर्म का झंडा सर्वत्र फहराता था, आदि आदि। स्मरण रखें कि यह शास्त्र के सिद्धांत से बिना समझौता और संदेह किये, उसकी रक्षा में तत्पर रहने की प्रवृत्ति के कारण सम्भव हुआ था, न कि विवेचना और शोध के नाम पर अश्रद्धा और संदेह का जाल फैलाने के लिए। आखिर क्यों मैं शांत रहता हूँ, क्यों मेरा मन शास्त्रीय विषयों में शंका नहीं करता या भ्रम में नहीं पड़ता और क्यों आपलोगों के चिंतन की दिशा का अंत संदेह, शंका, व्यथा, उहापोह आदि में होता है ?

अभी तक मैंने प्रत्येक प्रश्न और शंका का अक्षरशः श्लोकबद्ध उत्तर दिया या नहीं ? मैंने तो कोई अपने से लिखे ग्रंथ से श्लोक नहीं दिया ? फिर क्यों वे प्रमाण मुझे दिखते हैं और आपलोगों को नहीं ? मै तो आयु, धन, प्रतिष्ठा, संसाधन, डिग्री आदि विषयों में आपलोगों से बहुत निम्नस्तर का हूँ, फिर ऐसा क्यों ? क्योंकि मैं शास्त्र के स्तर पर स्वयं को ले जाकर उन्हें समझने का प्रयास करता हूँ और आपलोग शास्त्र को ही अपने स्तर पर लाकर समझने का प्रयास करते हैं। शास्त्र अखण्डित हैं, वे ब्रह्म के वांग्मय विग्रह हैं, सभी पुराण नारायण के दिव्य अंग हैं। उनमें एक शब्द पर भी सन्देह करना सीधे नारायण के वांग्मय देह पर आघात करने के समान है।

श्री रामाधार शर्मा के द्वारा खण्डन

तुलसी पीठ और तुलसी पीठाधीश्वर के जगद्गुरुत्व पर भी आपश्री ने प्रश्न उठाया। मैं इसका उत्तर नहीं देना चाहता था पर संकेत दे रहा हूँ। यह प्रश्न भारत की किस पीठ पर नहीं उठाया जा सकता और किस जगद्गुरु पर नहीं उठाया जा सकता ? पीठ और जगद्गुरु निर्धारण की प्रक्रिया संत और विद्वत्समाज के संज्ञान में है और सर्वमान्य है, केवल उन्हें छोड़कर जो द्वेषाग्नि में भस्मीभूत हो रहे हों।

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा प्रतिखण्डन

चित्रकूट वाले बाबाजी से मेरा कोई निजी खेत जमीन का झगड़ा नहीं है जो मैं उनसे वैर या द्वेष करूँगा। उनके वक्तव्य यदि शास्त्रीय आलोक में समीक्षणीय हैं तो उससे भी पीछे नहीं हटूंगा। रही बात पीठ की, तो पीठ या मठ किन नियमों पर बनते हैं, उसका नामकरण कैसे होता है, उनके अधिपति की क्या योग्यता और मर्यादा होनी चाहिए, इन सब बातों पर श्री नित्यानंद मिश्र जी के खण्डन के प्रतिखण्डन में उत्तर दूंगा। आजकल जगद्गुरु कैसे बनते हैं, कालक्रम में पांचवें स्थान पर तो श्रीरामानंदाचार्य जी ही आते हैं और छठे स्थान पर श्रीवल्लभाचार्य जी, फिर गृहस्थ होते हुए भी कैसे कृपालु जी पञ्चम जगद्गुरु बने थे, कैसे रामपाल भी जगद्गुरु की उपाधि लगाकर घूम रहा है, ये सब हमें मत बताइए।

मठ और अखाड़ों की गुप्त राजनीति और सांठ गांठ जनता नहीं जानती, इसीलिए मूर्ख बनती है। हमें ये सब मत सिखाईये, हम जानते हैं कि कैसे सभी अखाडे आजकल अपराधी, हत्यारे एवं चरित्रहीनों से भरते जा रहे हैं। मूल परम्परा के निर्वाहक सन्त बचे ही कितने हैं ? कैसे मठों के लिए महन्तों की हत्या होती है, कैसे राजनेताओं की चाटुकारिता से महामंडलेश्वर बनते हैं, ये सब हम जानते हैं। आपकी ये कथित संस्था और संत समाज के कितने सदस्य आचरणनिष्ठ और शास्त्रवेत्ता है, ये सत्य आपलोगों से उत्तम किसे ज्ञात होगा ? आजकल तो भण्डारों में पचास की संख्या में "जगद्गुरु" आ जाते हैं। पांच दस पीठाधीश्वरों को छोड़कर शेष सभी भाट चारण की तरह नेताओं की प्रत्यक्ष चापलूसी में लगे हुए हैं। एक है जगत् और डेढ़ हजार जगद्गुरु।

जैसे भार्गव उपपुराण, वैष्णवमताब्जभास्कर आदि में वैष्णव सम्प्रदायों के पीठ, स्कन्दपुराण, देवीपुराण, शैवागम शास्त्र आदि में शैव तथा शाक्त पीठ, एकलिंगपुराण, शक्तिसंगम तन्त्र आदि में चारों शांकर पीठों की परम्परा, नाम, आचार आदि वर्णित हैं, हमें आप तुलसीपीठ का भी कोई सन्दर्भ या परम्परा दिखा दें तो हम उसे शास्त्रोक्त मान लेंगे। हमें मनुष्यों के वाक्यों में नहीं, शास्त्र के वाक्यों में श्रद्धा है।

। इति शम्।

षष्ठ भाग

श्री नित्यानंद मिश्र के द्वारा खण्डन

संन्यास-उपनिषदों में जीवित आतुरसंन्यासी के लिए क्रमसंन्यास का विधान एवं संन्यास-उपनिषदों में विधि-निषेध का वैभिन्न्य

मेरे संज्ञान में बीस उपनिषदें 'संन्यास-उपनिषदें' कही जाती हैं - अद्वयतारक, अवधूत, आरुणेय, आश्रम, कठश्रुति/कठरुद्र, कुण्डिका, जाबाल, तुरीयातीत, तेजोबिन्दु, नारदपरिव्राजक, निर्वाण, परब्रह्म, परमहंस, परमहंसपरिव्राजक, ब्रह्म, भिक्षुक, मैत्रेय, याज्ञवल्क्य, शाट्यायनीय, संन्यास। इन उपनिषदों में आपस में अनेकानेक भेद हैं, कुछ उदाहरण देखें। यथा 'कुण्डिकोपनिषत्' में वानप्रस्थ और संन्यास का भेद नहीं है तो दूसरी ओर 'आरुणेय' तथा 'नारदपरिव्राजक' उपनिषदों में वानप्रस्थ और संन्यास का स्पष्ट भेद है। 'कठरुद्रोपनिषत्' में यति को कुण्डिका-चमस-शिक्य-त्रिविष्टप-उपानह-शीतोपघातिनी-कन्था-कौपीन-आच्छादन-ज्ञानशाटी-उत्तरासङ्ग को त्यागने को कहा है (कुण्डिकां चमसं ... सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः), वहीं 'कुण्डिकोपनिषत्' में यति को इनके अतिरिक्त अन्य सब कुछ त्यागने को कहा है (कुण्डिकां चमसं ... अतोऽतिरिक्तं यत्किंचित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः)। 'कठरुद्रोपनिषत्' में संन्यास के समय प्राजापत्य चरु अर्पित करने का विधान है (प्रजापतये च प्राजापत्यं चरुम्), 'जाबालोपनिषत् में प्राजापत्य इष्टि का निषेध और केवल आग्नेयी इष्टि का विधान है (तथा न कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात्"), और 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' में प्राजापत्य इष्टि का वैकल्पिक निषेध है ("अथवा न कुर्यात्)। कुछ संन्यास-उपनिषदों में प्रथम तीनों आश्रम पूर्ण करने के पश्चात् परिवार से अनुमति लेकर ही संन्यास लेने का विधान है, तो अन्य संन्यास उपनिषदों में किसी भी समय निज इच्छा से संन्यास लेने को मुमुक्षु स्वतन्त्र है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न संन्यास-उपनिषदों में विधि-निषेध को लेकर अनेक भेद दिखते हैं। विभिन्न श्रुतियों के सन्दर्भ में महाभारत के 'वनपर्व' का यह वचन ध्येय है, महाजनों द्वारा अनुगत ही धर्म का पथ है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

देवी-भागवत पुराण में भी श्रुतियों में द्वैध स्वीकारा गया है और द्वैध प्राप्त होने पर दोनों श्रुतियों को धर्म माना गया है (११.१.२३)—

श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक्॥

कहने का तात्पर्य यह है संन्यास उपनिषदों में स्मृतियों और पुराणों के जैसे अनेक भेद हैं। अतः केवल एकाध संन्यास उपनिषत् में प्राप्त विधि और निषेध को सार्वत्रिक न मानकर सभी संन्यास उपनिषदों के विधि और निषेध का समग्र आकलन करके ही धर्म का निर्णय लेना चाहिए।

भागवतानन्द का निष्कर्ष है विकलाङ्ग (यथा दृष्टिबाधित) केवल आतुर संन्यास के अधिकारी हैं, महावाक्य के उपदेश युक्त क्रम-संन्यास के नहीं। अपने पक्ष के समर्थन में ये 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' के तृतीय उपदेश और संन्यासोपनिषत्' के द्वितीय अध्याय से "एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम्" इस वाक्य का उद्धरण देते हैं। दोनों उपनिषदों में यह वाक्य प्राप्त है। 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' के तृतीय उपदेश का उद्धरण देखें जिसमें षण्ड, विकल, अन्ध, बालक, पातकी, पतित, परद्वारी, वैखानस, हरद्विज, चक्री, लिङ्गी, पाषण्डी, शिपिविष्ट, अनग्निक, पूर्वसंन्यस्त, भृतक अध्यापक के लिए आतुर-संन्यास का विधान है—

षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी। पतितश्च परद्वारी वैखानसहरद्विजौ॥
चक्री लिङ्गी च पाषण्डी शिपिविष्टोऽप्यनग्निकः।
द्वित्रिवारेण संन्यस्तो भृतकाध्यापकोऽपि च।
एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम्॥

भागवतानन्द और भी उद्धरण देते हैं पर आज केवल संन्यास उपनिषदों की चर्चा करेंगे। यदि भागवतानन्द का पक्ष मानें तो 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' में स्पष्ट रूप से बालक

("बालकश्चापि") के लिए भी आतुर-संन्यास का ही विधान है, महावाक्य-उपदेश-युक्त क्रम संन्यास का नहीं। फिर तो भागवतानन्द के अनुसार आद्य शङ्कराचार्य का बाल्यकाल में लिया गया संन्यास भी 'अनुपयुक्त' था और आद्य शङ्कराचार्य महावाक्य के अधिकारी नहीं थे (ये मेरा मत नहीं है, यह भागवतानन्द के मत मानने पर प्राप्त निष्कर्ष है)। आज भी कुम्भ मेलों में बालक संन्यासी बनाए जाते हैं और कुछ ही मास पूर्व गोलोक पधारे स्वामी विश्वेशतीर्थ जी ने सात-आठ वर्ष की बाल्यावस्था में संन्यास ग्रहण किया था। तो क्या भागवतानन्द आद्य शङ्कराचार्य को, विश्वेशतीर्थ को, और अन्य सभी बाल्यावस्था में संन्यासदीक्षा लेने वाले संन्यासियों को "बालकश्चापि" के अनुसार महावाक्य के उपदेश में अनधिकृत कहेंगे ? विकलाङ्ग के संन्यासी होने के अधिकार पर वे जो प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं वही प्रश्नचिह्न "बालकश्चापि" पाठ होने से आद्य शङ्कराचार्य के अधिकार पर भी लगेंगे। इसलिए वे ध्यान से अपना पक्ष रखें।

भागवतानन्द का निष्कर्ष 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' और 'संन्यासोपनिषत्' के *अपूर्ण अध्ययन* पर आधारित है। किसी भी ग्रन्थ के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर आना चाहिये। इन दोनों उपनिषदों में आगे ('नारदपरिव्राजकोपनिषत्' के पञ्चम उपदेश में और 'संन्यासोपनिषत्' के द्वितीय अध्याय में)स्पष्ट कहा गया है यदि आतुर संन्यासी जीता रहे तो उसका क्रम-संन्यास करना चाहिये—

"आतुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः कर्तव्यः"

जिन दोनों उपनिषदों के आधार पर भागवतानन्द अपने निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उन्हीं दोनों उपनिषदों में जीवित आतुर-संन्यासी के लिए क्रम-संन्यास के विधान से भागवतानन्द का पक्ष खण्डित हो जाता है। यदि 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' के उपदेष्टा (पितामह ब्रह्मा) और 'संन्यासोपनिषत्' के उपदेष्टा को बालक, विकलाङ्ग और पूर्वोक्त अन्य द्विजों के लिए क्रम-संन्यास सर्वथा निषिद्ध करना होता तो उनके लिए प्रथम आतुर-संन्यास का विधान और फिर आतुर-संन्यास की अवस्था में जीवित रहने पर क्रम-संन्यास का विधान क्यों करते?

लगता है भागवतानन्द ने दोनों उपनिषदों का पूर्ण अध्ययन नहीं किया और यदि किया तो दोनों उपनिषदों में प्राप्त इस वाक्य की भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाटव में अन्यतम दोष के कारण उनसे अनदेखी हो गई (यह व्यक्तिगत आक्षेप नहीं हैं, भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाटव स्वाभाविक दोष हैं जो सबमें हैं)। एक अन्य संभावना यह है उन्हें इस वाक्य

का ज्ञान है पर वे एक संन्यासी-विशेष के प्रति द्वेष में इतने ग्रस्त हैं उन्होंने जानकर इसे उजागर नहीं किया। 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' और 'संन्यासोपनिषत्' के आद्यन्त अनुशीलन से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम यह आतुरसंन्यास शीघ्र (तत्क्षण) देहत्याग करने वाले के लिए ही है, ऐसा नहीं है। 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' के तृतीय उपदेश में कहा है क्रम-संन्यास हो अथवा आतुर-संन्यास, संन्यास के पूर्व अष्टश्राद्ध (आठ श्राद्ध) करना चाहिये—

"आतुरे वा क्रमे वापि तुरीयाश्रमस्वीकारार्थं कृच्छ्रप्रायश्चित्तपूर्वकमष्टश्राद्धं कुर्यात्"
यह अष्टश्राद्ध आठ दिनों में कर सकते हैं अथवा एक दिन में—
"अष्टश्राद्धान्यष्टदिनेषु वा, एकदिने वा"

आठ दिनों का अष्टश्राद्ध करने का विकल्प आतुरसंन्यास और क्रमसंन्यास दोनों के लिए है। यदि आठ दिनों में अष्टश्राद्ध करने का विकल्प दिया तो इससे स्पष्ट है आतुर-संन्यास केवल उसके लिए नहीं है जो तत्क्षण देहत्याग करने वाला हो अपितु जिसके देहत्याग में पर्याप्त समय शेष है (आठ दिन अथवा उससे अधिक भी)।

दूसरी बात यह ज्ञात होती है, आतुर-संन्यास केवल उसके लिए नहीं है जिसका देहावसान निकट भविष्य (कुछ दिनों, कुछ मासों, अथवा कुछ वर्षों में भी) में निश्चित है। ऐसा होता तो "आतुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः कर्तव्यः" की स्थिति ही नहीं आती। बालक को भी आतुरसंन्यास का विधान है ("बालकश्चापि")। और बालक के संदर्भ में तो स्वस्थ-रोगी, विकलाङ्ग-पूर्णाङ्ग का कोई भेद 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' में नहीं कहा गया है। बालक जीवित रहे ("आतुरो जीवति चेत्") तो अनेक दशकों तक जी सकता है। अतः अत्यन्त निकट मृत्यु/निश्चित मृत्यु वाले ही आतुर-संन्यास के योग्य हैं, ऐसा नहीं है।

यास्क ने निरुक्त में अनेक श्रुतियों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ दिये हैं। वैदिक मन्त्रों का अध्यात्मपक्ष भी है यह सुधी जनों को विदित ही है। 'आतुर-काल' के विषय में नारद-परिव्राजकोपनिषत् का वचन देखें —

आतुरकालः कथमार्यसम्मतः॥
प्राणस्योत्क्रमणासन्नकालस्त्वातुरसंज्ञकः। नेतरस्त्वातुरः कालो मुक्तिमार्गप्रवर्तकः॥

'प्राण' के 'उत्क्रमण' के आसन्न काल को 'आतुर-काल' कहते हैं। कोशों के अनुसार 'उत्क्रमण' के दो अर्थ हैं, 'अपसरण' ("दूर/बाहर निकल जाना") भी और 'ऊर्ध्वगमन' ("ऊपर जाना") भी। इस प्रकार प्राण का अपसरण भी 'प्राणोत्क्रमण' है और प्राण का ऊर्ध्वगमन भी 'प्राणोत्क्रमण' है। प्राण के ऊर्ध्वगमन का अर्थ क्या है ? राजयोग की प्राप्ति। राजयोग प्राप्त होने की अवस्था में योगी का प्राण ऊपर जाकर आज्ञाचक्र में स्थित रुद्रग्रन्थि को भेदकर भौहों के मध्य में स्थित शर्वपीठ अथवा ईश्वर के स्थान को प्राप्त कर लेता है।

'हठयोगप्रदीपिका' देखें (४.७६, ७७)—

रुद्रग्रन्थिं यदा भित्त्वा शर्वपीठगतोऽनिलः।
निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत्॥
एकीभूतं तदा चित्तं राजयोगाभिधानकम्। सृष्टिसंहारकर्तासौ योगीश्वरसमो भवेत्॥

'हठयोगप्रदीपिका' ४.७६ में 'अनिलः' शब्द आया है, और ज्योत्स्ना टीका में "अनिलः प्राणः" यही लिखा है। तो निष्पत्त्यवस्था इस 'प्राणोत्क्रमण' का आध्यात्मिक अर्थ हुआ। इस 'प्राणोत्क्रमण' के निकट का समय 'आतुरकाल' है। अब आप कहें ये नया अर्थ है तो कोई बात नहीं।

"त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवा मर्त्याँ आ विवेश" (ऋग्वेदसंहिता ४.५८.३) यह मन्त्र पाँच देवताओं को समर्पित सूक्त में आने के कारण पाँच अर्थों वाला (पञ्चसंधान) है, और पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'वृषभ' शब्द का शब्दब्रह्म ऐसा नया छठा अर्थ लिया है। श्रुतियों के अर्थ अनेक हैं, गूढ हैं, आध्यात्मिक हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक पक्ष में आतुरकाल वह है जब किसी का प्राण उत्क्रमण (ऊर्ध्वगमन) करके रुद्रग्रन्थि का भेदन करने वाला हो, अर्थात् राजयोग की प्राप्ति के निकट हो। ऐसी अवस्था में 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' और 'संन्यासोपनिषत्' के अनुसार बालक, विकलाङ्ग आदि का आतुर-संन्यास का विधान है यह आध्यात्मिक पक्ष है।

'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' और 'संन्यासोपनिषत्' के अनुसार बालक, विकलाङ्ग आदि आतुर-संन्यास के अधिकारी हैं और आतुर-संन्यासी जीवित रहने पर क्रम-संन्यास के अधिकारी हैं। इस आलोक में "एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम्" का अर्थ ऐसे समझना होगा, "एते आतुरेण [संन्यासेन] विना (आतुरं संन्यासं पूर्वमगृहीत्वा) क्रमं

संन्यासं नार्हन्ति"। अर्थात् ये आतुर संन्यास के बिना (पहले आतुर संन्यास लिए बिना) क्रम संन्यास के योग्य नहीं हैं, अतः प्रथम आतुर संन्यास होगा और फिर क्रम संन्यास होगा ऐसा 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' और 'संन्यासोपनिषत्' का कथन है। इससे न केवल विकलाङ्ग के महावाक्योपदेश के अधिकार सहित क्रमसंन्यास का अपितु आद्यशङ्कराचार्य सदृश बालक के महावाक्योपदेश के अधिकार सहित क्रमसंन्यास का भी समाधान हो जाता है। इस प्रकार भागवतानन्द के पक्ष का खण्डन उन्हीं के द्वारा सन्दर्भित ग्रन्थों से हुआ।

श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा श्री नित्यानंद मिश्र के खण्डन का प्रतिखण्डन

सर्वप्रथम तो यह कि चित्रकूट का दल स्वयं ही एकमत नहीं रहता है, साथ ही जिन्हें जो जो मन करता है, बोलते और लिखते हैं। हमने यहां दो मोर्चे एक साथ खोल लिए हैं। एक तो सीतात्याग आदि प्रामाणिक है या नहीं, और दूसरा चित्रकूट वाली पीठ और पीठाधीश्वर शास्त्रीय आलोक में कितने प्रामाणिक हैं। सीतात्याग वाले विषय पर तो अनेकानेक प्रकार से पूरे सन्दर्भ और कथानकों के पूर्वापर प्रसङ्गों के साथ पर्याप्त प्रमाण दिए जा चुके हैं तो अब ले देकर विपक्ष की शक्ति संन्यासाधिकार की सुई पर अटक गई है।

पहले श्रीरामभद्राचार्य जी के पक्षधर यह कहते हैं कि संन्यासोपनिषत् आदि को पूरा देख लिया, किन्तु श्लोक ही नहीं मिला। फिर श्लोक सहित प्रमाण दो तो कहते हैं कि श्लोक तो है किंतु ग्रंथ ही गलत है, संदेहास्पद है। फिर ग्रंथ को प्रामाणिक सिद्ध करो तो कहते हैं कि ग्रंथ तो प्रामाणिक है, श्लोक भी उसमें मिल गया है, किन्तु श्रीभागवतानंद गुरु का जो निष्कर्ष है, वह *अपूर्ण अध्ययन* पर आधारित है। किसी भी ग्रंथ के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर आना चाहिए।

वाह जी !! एक सप्ताह पहले तक इन लोगों को संबंधित उपनिषदों में श्लोक ही नहीं मिल रहे थे। फिर दो दिन पहले तक ये लोग उपनिषदों को अप्रामाणिक मान रहे थे। अब आज ये लोग हमें अपूर्ण अध्ययन का दोषी बता रहे हैं। यदि आपलोगों का अध्ययन इतना ही गूढ़ और पूर्ण था, साथ ही आपलोग सम्पूर्ण अध्ययन के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं तो इतना विरोधाभास क्यों है ? ये आपके दल का कैसा सम्पूर्ण अध्ययन है कि कभी

श्लोक ही नहीं मिलता, जिसे हमें ही परिश्रम करके देना पड़ता है। फिर कभी उपनिषदों की प्रामाणिकता ही ज्ञात नहीं होती, उसे सिद्ध करने के लिए भी हमें ही परिश्रम करना पड़ता है। आपलोग समाज में कर क्या रहे हैं ? केवल एक दूसरे के स्वार्थ में सहायक होकर जीवन यापन करते हैं क्या ?

इस देश में एक समय ऐसा भी हो चुका है कि एक व्यक्ति ने दूसरे को महात्मा बना दिया और दूसरे ने पहले को पंडित बना दिया। देश खण्ड खण्ड हो गया और बाकियों की चांदी हो गयी। यही कुचक्र यहां भी चल रहा है, एक गुरुजी हैं, कुछ भी बोल देते हैं, एक चेला जी हैं, कुछ भी कहकर बचाव करने लगते हैं। समाज को लगता है कि लेखक हैं, सम्पन्न हैं, और ईश्वर की कृपा से मेधाशक्ति तो है ही, वाक्चातुर्य है ही, इसीलिए सही ही कह रहे हैं। फिर यदि शास्त्रीय आधार पर कुछ कहा जाय तो नानाविध प्रपञ्च प्रारम्भ हो जाते हैं।

एक सप्ताह के भीतर ही जिन्हें कभी श्लोक मिलता है, कभी नहीं मिलता, कभी वे ग्रंथ ही नकली लगते हैं, कभी प्रामाणिक लगने लगते हैं, उन लोगों ने कैसा "सम्पूर्ण अध्ययन" किया होगा और किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व वे कितना "चिंतन" करते होंगे, यह तो सबको ज्ञात हो ही जा रहा है। अब यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिन्हें श्लोक नहीं मिल रहे थे फिर जिन्होंने प्रामाणिकता पर संदेह किया था, वे रामाधार शर्मा जी अलग हैं, और नित्यानंद मिश्र जी अलग हैं, जो पहले से ही इन उपनिषदों को प्रामाणिक मानते हैं और जिनकी दृष्टि में वे सभी श्लोक भी उपलब्ध थे।

मुझे एक बात समझ में नहीं आती। नित्यानंद मिश्र जी और रामाधार शर्मा जी भले ही अलग-अलग व्यक्तित्व हैं, किंतु दल एवं पक्ष तो एक ही है ! फिर जब उन महानुभाव ने कहा कि उन्हें अक्षरशः खोजने पर भी श्लोक नहीं मिले, तो उस समय नित्यानंद जी ने उन्हें यह क्यों नहीं कहा कि आदरणीय ! आप पुनः अवलोकन करें। श्लोक तो वर्णित हैं एवं अमुक अमुक स्थान पर इस रूप में वर्णित हैं। पुनः जब रामाधार शर्मा जी ने उपनिषदों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाया तब नित्यानंद जी उस समय यह क्यों नहीं बता पाए कि रामाधार जी ! आप प्रामाणिकता पर प्रश्न न करें, वे उपनिषत् सर्वथा प्रामाणिक हैं, ऐसा मैं जानता हूं।

क्यों उन्होंने मुझसे अतिरिक्त परिश्रम करवाया, उन बातों को सिद्ध करने के लिए, जो बातें स्वतः सिद्ध हैं। क्यों इन्होंने असत्य कहा कि उक्त उपनिषदों में श्लोक नहीं मिले ? उन्होंने उपनिषदों को अक्षरशः देखा तो भी नहीं मिले ? ऐसा प्रमाद तो प्रशंसनीय नहीं है। बात

बहुत बड़ी है, इस प्रकार से असत्य भाषण करने की क्या आवश्यकता थी ? यदि नित्यानंद जी के पास उपनिषदों वाले श्लोक पहले ही थे तो उन्होंने पहले ही यह बात सामने क्यों नहीं रखी ? क्यों जानबूझकर कर छिपाया ? क्यों मुझसे सिद्ध करवाने का प्रयास किया ? ताकि मुझे नीचा दिखा सकें ? ताकि यह मेरे प्रज्ञा की परख कर सकें या फिर मुझे अनावश्यक रूप से व्यथित करके मेरे समय की हानि कर सकें ?

यदि मान लें कि नित्यानंद जी के पास यह ज्ञान पहले नहीं था और मेरे लेखों के बाद उन्होंने स्वीकार किया है, साथ ही श्लोक एवं उपनिषदों की प्रामाणिकता भी हमारे प्रत्युत्तर के बाद ज्ञात हुई, तो हम यह कैसे मान लें मेरा अध्ययन अपूर्ण है और उनका अध्ययन सम्पूर्ण ? श्लोक भी हमें ही खोजकर देना पड़ता है, प्रामाणिकता की सिद्धि भी हमें ही करनी पड़ती है तो फिर इन्होंने सम्पूर्ण अध्ययन कर किसका दिया ? साथ ही, अचानक से इनको मेरा संदर्भ एवं निष्कर्ष ही गलत लगने लगा ?

हो सकता है कि उन्होंने शीघ्रता में अपने गुरुजी के पास जाकर सम्पूर्ण अध्ययन किया हो एवं यह सम्भव भी है क्योंकि एक तो ये स्वयं ही उच्चकोटि के संस्कृतज्ञ हैं और दूसरे, सम्बन्धित उपनिषत् बहुत बृहदाकार या क्लिष्ट नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि इन्होंने स्वयं के श्रेष्ठ संस्कृतज्ञ होने के कारण स्वयं ही अर्थ लगाया हो। तो इस सन्दर्भ में भी हम यही कहेंगे कि हमें तो ये लोग उपदेश देते हैं कि वेद अनुश्रव हैं, उन्हें गुरु की शरण में जाकर ही सुनना और समझना होता है, दूसरे ये स्वयं ही इस बात का उल्लंघन करते हैं।

अस्तु, जो भी हो, यह तो सिद्ध है कि यदि नित्यानंद जी को अपने दल के अन्य विद्वानों के ही समान उपनिषदों के श्लोक खोजने पर भी नहीं मिल रहे थे, अथवा श्लोक तो ज्ञात थे किंतु प्रामाणिकता पर आपत्ति थी, तो इनका अध्ययन भी "सम्पूर्ण" नहीं कहा जा सकता। किन्तु यदि इनका अध्ययन वास्तव में "सम्पूर्ण" है, साथ ही इन्हें श्लोक तथा प्रामाणिकता का बोध था, तो इन्होंने जानबूझकर मेरे पराजय की कामना से उनलोगों के सामने सत्य न बोलकर मौन रहना स्वीकार किया, जो प्रामाणिकता और श्लोकों के सन्दर्भ पर आपत्ति कर रहे थे। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि इनके पास वे वीडियो और लेख न गए हैं, ये तो प्रधान विपक्षी में से हैं, और निरंतर एक एक घटना एवं वक्तव्य पर दृष्टि रखे हुए हैं। महाराज हरिश्चंद्र को चांडालराज वीरबाहु ने यह कहा था -

विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण)

जो व्यक्ति सोच समझकर बोलता है, वही अभीष्ट को प्राप्त करता है। (किन्तु यहां तो इस बात का अभाव गुरु शिष्य, सबमें दिख रहा है)

सभायां यो वदेत्सत्यमश्वमेधफलं लभेत्। लोभाद्वेषान्मृषोक्त्वा च रौरवं नरकं व्रजेत्॥
जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्किञ्चित्पुण्यं त्वया कृतम्।
तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

सभा में जो व्यक्ति सत्य बोलता है, वह अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है। लोभ या द्वेष से जो झूठ बोलता है, वह रौरव नरक में जाता है। जन्म से लेकर अब तक तुमने जो जो पुण्य किये हैं, वे सभी तुम्हें छोड़कर उस व्यक्ति को प्राप्त हो जाते हैं, जिसे तुम झूठ का आश्रय लेकर हराते हो। (यहां लिखित रूप से परोक्ष सभा ही चल रही है, जिसमें सभी लोग यांत्रिक माध्यमों से उपस्थित हैं)

सत्यं साक्ष्यं ब्रुवन्साक्षी लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान्।
इह वानुत्तमां कीर्तिं वाग्येषा ब्रह्मपूजिता॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

सत्य को जानने वाला साक्षी यदि सत्य सत्य बोल देता है तो वह अत्यंत श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करता है। यह भी उसी ब्रह्मा के द्वारा सम्मानित श्रेष्ठ वाणी के माध्यम से कीर्ति मिलती है।

किन्तु सत्य जानते हुए भी नित्यानंद जी एवं उनके पक्ष के अनेकानेक विद्वान् चुप रहे, वेदनिन्दा सहते रहे। आचार्य कुमारिल भट्ट ने शपथ के समय मात्र एक शब्द कहा था "यदि" वेद प्रमाण हैं, तो मेरे प्राण बच जाएं। प्राण तो बच ही गए किन्तु शारीरिक क्षति के साथ क्योंकि उन्होंने आंशिक संदेह व्यक्त किया था। जब उनके जैसे अवतारी महापुरुष के साथ ऐसा हो सकता है, तो उपनिषदों की प्रामाणिकता पर संदेह उत्पन्न करने वाले एवं केवल मुझसे द्वेष रखने के कारण, मेरी पराजय की इच्छा से जो लोग वेदों के समर्थन में, उन्हें प्रामाणिक सिद्ध करने में रुचि न दिखाते हुए मौन रहे, वेदहत्या होती रही, वे भला किस दुर्गति को प्राप्त होंगे ? यहां ये लोग कह सकते हैं कि हमने बहुत बार असत्य लिखा है, एक सप्ताह पहले यही लोग हमें चोर और झूठा कह रहे थे। उस समय हमने अपना स्पष्टीकरण भी दे दिया था। बाद में इन लोगों ने कहा कि मैं (श्रीभागवतानंद गुरु) शास्त्र

के एक एक वचन पर निष्ठा रखता हूँ, जिससे उन्हें (विपक्ष को) निराशा हुई। शास्त्र के एक एक वचन पर मैं निष्ठा रखता हूँ, यह सत्य है। यह भी सत्य है कि मैं किसी अंश को प्रक्षिप्त न मानता हूँ, न संदेह करता हूँ। मैं पहले शास्त्र पढ़ता हूँ, सुनता हूँ, समझता हूँ, फिर पूर्वाचार्यों के मत को जानकर अपनी धारणा बनाता हूँ। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो धारणा पहले बनाते हैं और फिर उसके पोषण के लिए जहां जहां आचार्यों के मत अथवा ग्रंथों में उसका खण्डन दिखे, उसे प्रक्षिप्त घोषित करते जाते हैं।

मेरे खण्डन के असफल प्रयास में रामाधार शर्मा जी स्वयं ही मनुस्मृति का वह श्लोक दे चुके थे जो वेद शास्त्रों को सर्वथा असंदिग्ध एवं शंकाओं से परे बताता है। मैं बचपन से ही शास्त्रनिष्ठ रहा हूँ अतएव शास्त्रवाक्य को जानकर भी मैं स्वार्थवश दोषारोपण नहीं करता हूँ, न ही शास्त्रनिन्दा के समय चुप रहता हूँ। भविष्य में भी जो जो मठाधीश एवं विद्वान् सत्य को जानकर भी विवाद के भय से, सम्प्रदायवैषम्य की भावना से, राजनैतिक स्वार्थ से अथवा कुटिलतावश, शास्त्रीय विषयों की निंदा होते देखकर भी, वेदनिन्दा होते देखकर भी और सत्य जानते हुए भी सामने आकर शास्त्र एवं धर्म की रक्षा नहीं करेंगे, वे भी रौरवगामी ही होंगे।

मैं सबको नहीं कह रहा, केवल समर्थ होने पर भी मौन धारण करने वालों को कहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि आप मेरे पक्ष में बोलें या विपक्ष में बोलें। मैं बस यह कहता हूँ कि जब शास्त्रीय विषयों में द्वंद्व होने पर सनातनी समाज उचित मार्गदर्शन के लिए आपकी ओर देखे, तो आप चुप न रहें। जो भी शास्त्रज्ञान आपके पास है, जिसके कारण आप सबों की प्रतिष्ठा है, उसके आधार पर ही आपने धर्म को जैसा जाना और समझा है, वैसा वक्तव्य अवश्य दें, बस मौन न रह जाएं। जब स्थिति ठीक थी, धर्मपरायण शासन में देश चल रहा होता तो अलग बात थी, किन्तु धर्म के इस आपत्तिकाल में आपसबों के मौन का परिणाम बहुत बीभत्स होने जा रहा है।

आद्यशंकराचार्य जी, रामानुजाचार्य जी, रामानन्दाचार्य जी आदि महापुरुषों ने स्वयं त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए इसीलिए धर्म की रक्षा एवं पुनर्स्थापना नहीं की थी कि उनके उत्तराधिकारी शिष्य, उनके द्वारा स्थापित मठों में गद्दी जमाये रहें, सनातनी समाज उन्हें दान दक्षिणा देता रहे और वे बड़ी बड़ी गाड़ियों में घूमें, वातानुकूलित महलों में रहें, भण्डारे खाते रहें, भाट चारणों के समान नेताओं के गुण गाते रहें और धर्मरक्षा के समय, शास्त्रसिद्ध वाक्यों के सम्पोषण के समय श्वानवत् दुबक जाएं। ये बहुत दिन चलने वाला

नहीं है। विधर्मी पहले ही हिंसक हो रहे हैं, साथ ही अनधिकृत लोग शास्त्रीय बातों के खण्डन में लगे हैं। यदि इस समय सभी धर्माधिकारी मुखर नहीं हुए, तो भविष्य में खोने के लिए भी कुछ न बचेगा। कोई साथ दे या न दे, मैं अपने हिस्से का कार्य कर रहा हूँ। आप शास्त्र नहीं पढ़ते, शास्त्र आपके सामने स्वयं को प्रकाशित करते हैं। यही कारण है कि एक ही शास्त्र को पढने वाले भिन्न भिन्न लोग उसमें भिन्न भिन्न गति रखते हैं। शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान का ऋण होता है, वह शास्त्ररक्षा से ही समाप्त होता है। मैं भी शास्त्र के उसी ऋण से मुक्त होने के लिए यह समीक्षा कर रहा हूँ, न कि किसी निजी द्वेष या स्वार्थ के कारण। जितने भी पूर्वाचार्य हुए, वे सभी करोड़ों की सम्पत्ति एवं लाखों का जनबल लेकर जन्म नहीं लिए थे। उन्होंने केवल शास्त्रों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा भौतिक लोभ के परित्याग के बल पर ही धर्मसंस्थापन किया था।

मुझ पर मेरे पक्ष एवं विपक्ष वाले आरोप लगाते हैं कि मेरी शैली में कटुता है, उसमें शब्दावली कठोर है। मैं स्वसिद्धान्त की सार्वजनिक उद्घोषणा करता हूँ आज ...

शास्त्रसंरक्षणं कर्म मेऽस्त्येकं जगतीतले। न मन्ये गणये नैव विना शास्त्रं चतुर्मुखम्॥

शास्त्र की रक्षा करना ही इस पृथ्वी पर मेरा एकमात्र कार्य है। शास्त्र के बिना यदि ब्रह्मा भी आ जाएं तो मैं उनको न मानता हूँ, न गिनता हूँ। किसी को मैंने कोई अभद्र गाली तो नहीं दी न, बस शब्दावली कठोर है। तो इससे हुआ क्या ? यहां शास्त्र के टुकड़े टुकड़े किये जा रहे हैं, वेदों के वाक्यों पर प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं, लोगों को शैली की पड़ी है। उधर बाप मरा जा रहा है, बेटों को चाय में चीनी कम लग रही है।

श्रीराम और लक्ष्मण के परशुरामजी के साथ हुए सम्वाद में दोनों की शैली समान ही है क्या ? सहोदर अवतारी दुर्वासा एवं दत्तात्रेय की सहनशीलता का स्तर समान ही था क्या ? युधिष्ठिर और भीम का व्यक्तित्त्व समान ही था क्या ? कोई किसी के जैसा नहीं हो सकता। सबकी अलग अलग शैली है। आपत्ति उस पर कीजिये, अगर कुछ अशास्त्रीय, अप्रामाणिक कहा हो तो। प्रमाणों पर चर्चा करेंगे नहीं, शैली पर मरे जा रहे हैं। कुछ बातें स्मरण रखिये -

१) शैली की सौम्यता वहीं उचित है जहां शास्त्र की "चर्चा" हो रही हो। चर्चा तभी सम्भव है जब दोनों पक्षों को शास्त्र प्रामाणिक लगें, दोनों की शास्त्रनिष्ठा समान हो एवं दोनों निजी प्रतिष्ठा से अधिक धर्म की प्रतिष्ठा को महत्व दें, जैसे शंकर-मण्डन सम्वाद।

२) यदि कोई पक्ष शास्त्रों को ही एक स्वर से प्रक्षिप्त बताता जाए, पुराणों - वेदों को ही प्रामाणिक न माने तो वहां चर्चा नहीं "युद्ध" है। युद्ध लड़ने गए हैं तो ताली से नहीं, तलवार से काम चलता है।

३) जब शूद्रों ने सेवा से, वैश्यों ने धन से, क्षत्रियों ने शस्त्र से धर्म की रक्षा की, तो ब्राह्मण शास्त्र से धर्म की रक्षा क्यों न करे ? क्या समाज के अन्य तीन वर्णों ने केवल मठाधीशों के सुखोपभोग के लिए अपनी शांति, धन और प्राण तक त्याग दिए थे ?

४) मैं सत्य बोल रहा हूँ क्योंकि मुझे किसी बात का भय नहीं। यदि विपक्ष कुचक्र करके हमें मार भी दे, जैसा कि मुझे 'भूतपूर्व' करने की चर्चा तुलसी पीठ से सम्बन्धित कुछ कथावाचक कर ही रहे थे, तो क्या बिगड़ेगा ? तन्मे क्षेमतरं भवेत्। कम से कम इस कुटिल संसार से छूट तो जाएंगे ही, फिर भले ही स्वर्ग जाएं या नरक। दोनों ही स्थान पर कोई वेदनिन्दा तो नहीं करता है। मैं सभी सुखों से परिपूर्ण किन्तु वेदनिन्दकों से भरे स्वर्ग में रहने की अपेक्षा अत्यंत कष्टदायी रौरव नरक में जाने को श्रेयस्कर मानता हूँ। दिनकर जी सत्य ही कह गए हैं -

जो सत्य जान कर भी न सत्य कहता है या किसी लोभ के विवश मूक रहता है।
उस कुटिल राजतन्त्री कदर्य को धिक् है यह मूक सत्यहन्ता कम नहीं बधिक है।

पहले वैष्णवमताब्जभास्कर एवं उपनिषदों से प्रमाण दे चुका हूँ। उस पर नित्यानंद जी ने जो आपत्ति की है, उसका समाधान अब प्रारम्भ करता हूँ। इससे पूर्व यदि इच्छा हो तो पाठक गण लेख के ऊपरी भाग में नित्यानंद जी के द्वारा लिखित लेख एक बार पुनः पढ़ लें ताकि प्रसङ्ग एवं बिंदुओं की स्पष्टता दृढ़ हो जाये। एक बात तो मैं समझ गया हूँ कि केवल अपने गुरु एवं दल की रक्षा के लिए ये लोग जोड़-तोड़ वाले विरोधाभासी तर्क दे रहे हैं। इन्हें शास्त्र की निष्पक्ष रक्षा और सत्य के प्रकाशन से कोई मतलब नहीं है।

मैं समझ गया हूं कि ये लोग केवल अपने मत की रक्षा करने के लिए घुमाफिरा कर कैसा भी तर्क और उत्तर दे सकते हैं, जो सर्वथा हास्यास्पद और आपस में ही विरोधाभासी होता है। चूंकि नित्यानंद जी के द्वारा बहुत ही गंभीर प्रश्न खड़े किए गए हैं, जिन्हें पढ़कर शास्त्रज्ञान से वंचित समाज पुनः भ्रमित हो सकता है, अतएव मैं लिख रहा हूं। नित्यानंद जी ने जो बातें कहीं हैं, उन्हें बड़ी ही सतर्कता से कहने का प्रयास किया है। अतएव बहुत सी बातें स्वतः शास्त्रसिद्ध तो हैं ही। जैसे कि -

१) उपनिषदों में आपस में अनेकानेक भेद हैं।
२) प्रस्तुत उपनिषदों में कहीं पर यतिधर्म के लिए विहित उपस्करों का ग्रहण निषिद्ध है तो कहीं मान्य है।
३) प्राजापत्य इष्टि के संदर्भ में भी कहीं समर्थन है, कहीं निषेध है।
४) कहीं आश्रम क्रम से संन्यास हेतु कहा है, कहीं सीधे भी ले सकते हैं।
५) महाभारत के वन पर्व का उदाहरण देते हुए इन्होंने श्लोक लिखा है, जिसका सामान्य अर्थ है - वेदों के वाक्यों में संदिग्धता का तर्क नहीं किया जा सकता, अलग अलग श्रुतियों में भिन्न बातें भी मिलती हैं, किसी भी एक ऋषि की बात को प्रमाण नहीं माना जा सकता। धर्म का तत्व अत्यंत गूढ़ एवं गुप्त रहता है, इसीलिए श्रेष्ठ जन जिस मार्ग का अनुसरण करते आये हैं, उसका ही अनुसरण करना चाहिए। उपर्युक्त प्रधान बिंदुओं में से मैं सभी बातों से सहमत तो हूँ, किन्तु कुछ वैशिष्ट्य के साथ। जैसे कि -

उपनिषदों में आपस में इसीलिए अनेकानेक भेद हैं, क्योंकि वे सभी भिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसा ही भेद गृह्यसूत्रों में भी मिलता है जिसमें स्वशाखा के अनुसार विहित सूत्रों का अनुसरण, संस्कार एवं वर्णाश्रम के निर्वाह का विधान है। मुक्तिकोपनिषत् में शाखाओं के निश्चित उपनिषत् भी हैं। हालांकि आपने जो कहा कि उपस्कर को धारण करे या छोड़ दें, इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि वह दृढ़ वैराग्य में है या मात्र वैराग्यलोलुप है। यदि मात्र वैराग्यलोलुप है तो सुविधा के उपस्करों को तब तक धारण करके जब तक कि दृढ़ वैराग्य न हो जाए।

इसी पक्ष में महामोक्ष/निर्वाण तन्त्र में शिव जी संन्यासाधिकार का उपदेश करते हुए यहां तक कहते हैं कि दृढ़ वैराग्य के बाद बारह वर्षों तक अक्षुण्ण संन्यास को स्थापित करने वाला स्वदण्ड का विसर्जन भी गंगादि में कर सकता है। इसीलिए उपनिषदों एवं पुराणों में ज्ञानसंन्यासी, कर्मसंन्यासी, वेदसंन्यासी, वैराग्यसंन्यासी आदि कई भेद बताए गए हैं। विकल्प से प्राजापत्य एवं आग्नेयी का भी वर्णन है।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः। ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनः परे।
कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः॥
(कूर्मपुराण, उत्तरभाग, अध्याय – २८, श्लोक - ०५)

इसमें कुछ सकर्म होते हैं, कुछ अकर्म होते हैं। सकर्म आदि तो धूना जलाकर हवन आदि भी करते हैं और अकर्म तो एक स्थिति के बाद दण्ड कमण्डलु तक को परिग्रह का प्रतीक

समझ कर छोड़ देते हैं। तो यह विचारणीय है कि व्यक्ति की स्थिति और परम्परा क्या है ! शास्त्र में सशिखी सोपवीती वाले वैष्णव संन्यासी भी विहित हैं तो शिखोपवीतोत्सर्जक शैव संन्यासी भी हैं। दोनों ही सही और मान्य हैं। किन्तु यहां पर प्रश्न इसका नहीं कि किन मन्त्रों से या किन कर्मकाण्डीय विधियों से संन्यास ले, किस स्वरूप से ले या न लें। प्रश्न यह है कि क्या अमुक व्यक्ति संन्यास लेने के योग्य है भी या नहीं। योग्यता के निर्धारण के बाद ही न विधि एवं वेश का निर्धारण होगा ? पहले बहाली तो हो, उसके बाद देखेंगे कि प्रशिक्षण क्या देना है और वर्दी क्या पहनेगा। यहां प्रश्न तो बहाली पर ही खड़ा हो जाता है। महाभारत का जो श्लोक नित्यानंद मिश्र ने दिया है, उसका सन्दर्भ समझना बड़ा ही क्लिष्ट है। समाज भ्रमित न हो, इस उद्देश्य से मैं (हालांकि देवताओं का ये रहस्य बहुत ही गुप्त है एवं अनधिकारी के समक्ष प्रकाशन नहीं करना चाहिए, किन्तु कार्यगौरव से) उल्लिखित कर रहा हूँ।

पहली बात कि वेद अतर्क्य हैं, यह बात स्वयं कह कर नित्यानंद जी लम्बा चौड़ा तर्क दे रहे हैं। ठीक वैसे ही, जैसे मनुस्मृति के श्लोक के आधार पर वेदवाक्य को शंकाओं से परे बताकर रामाधार जी स्वयं ही संन्यासोपनिषत् की प्रामाणिकता पर शंका कर रहे थे। *दूसरी बात सबसे अन्त में बताऊंगा।*

तीसरी बात यह कि धर्म का तत्व जब एकदम गुप्त है, गूढ़ है तो उसे ऐसे लोग कैसे समझ सकते हैं जो कल तक उपनिषदों को प्रामाणिक ही नहीं मान रहे थे। चौथी बात यह कि जब श्रेष्ठ महापुरुषों के ही मार्ग का अनुसरण करना चाहिए तो चित्रकूट के बाबा जी विदेश गमन के दोष से क्यों नहीं आरूढ़पतित हो गए हैं ? यदि संन्यास का अधिकार है किन्तु संन्यासी होकर समुद्रपार गमन करके म्लेच्छपरक विदेश यात्रा किये हैं तो आरूढ़पतित होने से वे पातकलिप्त हो गए हैं और यदि वे संन्यास के अधिकारी ही नहीं हैं तो फिर छद्मयतिवेश बनाकर यतिसम्मत सम्मान के उपभोग के दोषी होने से ब्रह्महत्यातुल्य दोष के भागी हैं। दोनों ही स्थिति में, संन्यासी हों या नहीं, उनका आचरण ही उनकी धार्मिक प्रामाणिकता को संदिग्ध बनाता है।

जब पूर्व के श्रेष्ठ महापुरुषों ने, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, आदि अनेक मान्य अवतारी आचार्यवर्यों की परम्परा के पूर्वाचार्य एवं वर्तमान आचार्यगण समुद्रपारगमन को निषिद्ध एवं संन्यास हेतु पातककारक मानते हैं तो उनके आचरण का अनुसरण चित्रकूट वाले क्यों नहीं करते ? न इन्होंने अवधूत वृत्ति धारण की है और न ही ये आकाशगमन आदि यौगिक

शक्तियों से युक्त हैं। यदि ऐसा होता तो विदेश क्या, स्वर्ग भी जाएं तो आपत्ति नहीं। किन्तु ऐसा जब नहीं है तो पूर्व के महापुरुषों को उपेक्षित करके धर्मविमुख आचरण का अर्थ क्या समझा जाए ? अथवा पूर्व में कब कब हीनांग, पतित, देवद्वेषी आदि जनों को किन महापुरुषों ने संन्यासाधिकार से युक्त किया है ? क्या यहाँ महाजनों के पथ का अतिक्रमण नहीं हो रहा है ?

इस विषय पर विपक्ष यदि कुछ कुतर्क करना चाहता है तो मैं कोई उत्तर नहीं दूंगा। इसीलिए नहीं दूंगा कि पूज्य स्वामी करपात्री जी दशकों पहले इसपर एक लम्बा-चौड़ा, वेद, स्मृति, पुराण, मीमांसा एवं तर्कसम्मत विवेचन करीब सौ पृष्ठों का लिख गए हैं। उनकी परम्परा वालों से "विदेश यात्रा - करपात्री स्वामी" नाम का वह विवेचन प्राप्त करके पढ़ लें। बहुत अधीर हो रहे हैं तो इसी नाम को गूगल में खोज लें, सनातनियों ने पीडीएफ बनाकर उपलब्ध कराया हुआ है।

कोई अत्यंत शठबुद्धि का व्यक्ति ही होगा जो उस अद्भुत गाम्भीर्य से युक्त विवेचन एवं निर्णय पर संदेह करेगा। यदि करपात्री स्वामी जी को भी तुलसीपीठ के लोग *शास्त्रज्ञान से रहित अथवा अपूर्ण अध्ययन वाला* मानते हैं, तो फिर तुलसीपीठ के बाबा स्वयं क्यों उनसे विद्याध्ययन करने गए थे ? साथ ही, यदि बाबाजी ने उनसे शास्त्रज्ञान लिया है तो उनके द्वारा समुद्रपारयात्रा-विदेशगमन सम्बन्धी निषेधवाक्यों को क्यों नहीं मानते हैं ?

यदि चित्रकूटीय बाबा उन निषेधवाक्यों को मानते हैं तो विदेशगमन क्यों किये थे, और यदि उन्होंने ऐसा करके कुछ गलत किया है तो फिर उनकी इतनी वकालत क्यों ? आपलोग लङ्कागमन प्रसङ्ग, वेद - पुराण आदि के कतिपय वचन इस बात पर प्रस्तुत करें, उससे पूर्व ही मैं बता दूं कि सभी संभावित तर्कों को स्वामी करपात्री जी के सामने भी रखा गया था और ये सब बात वे निरस्त कर चुके हैं, उनका विवेचन प्राप्त करके पहले पढ़ लें।

विवेकानंद आदि का नाम मत लीजियेगा, उन्हें संन्यासी के रूप में प्रचारित किया गया है। उनके गुरु स्वयं गृहस्थ योगी थे, स्थिति देवात्मभाव से एकता की थी, किन्तु वर्णाश्रम के अनुसार से गृहस्थ ही थे। विवेकानंद ने न किसी मान्य परम्परा से दण्ड संन्यास लिया था और न ही उन्हें उनके गुरु ने इसकी अनुमति दी थी। इससे सिद्ध हुआ कि चित्रकूट वालों का पक्ष केवल वाणी से ही महापुरुषों का अनुसरण करने कहता है, वस्तुतः व्यवहार में इसकी पुष्टि उनमें दृष्टिगोचर नहीं होती है।

श्रीमद्देवीभागवत महापुराण का जो श्रुतिद्वैधपरक वचन नित्यानंद मिश्र के द्वारा दिया गया, वह सर्वथा सही है, कोई दोष नहीं है। दोनों श्रुतियों की मान्यता है उसमें मैं कहूंगा कि जब दोनों को मान्यता है तो क्या करना चाहिए ? दोनों को एक साथ तो मान नहीं सकते। तो वहां उस बात पर स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि क्या कहते हैं, इसका विवेचन भी करना ही चाहिए।

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शंकर। ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥
यस्त्वेतौ लङ्घयेन्मोहात्कदाचिदपि मूढ़धीः।
सोऽधः पतति हस्ताभ्यां गलितो नात्र संशयः॥
तावेव श्रेयसां हेतू दुरूहावतिदुर्घटौ। सुधीभिरतिदुर्ज्ञेयौ पारावारविवर्जितौ॥
यश्चागमं वा वेदं वा समुल्लङ्घ्यान्यथा भजेत्।
तमुद्धर्तुमशक्ताऽहं सत्यमेव न संशयः॥
विविच्य चानयोरैक्यं मतिमान्धर्ममाचरेत्। कदाचिदपि मोहेन भेदयेन्न विचक्षणः॥
(महाभागवत उपपुराण, अध्याय ०८, श्लोक - ७७-८१)

देवी महाकाली कहती हैं - हे शंकर ! आगमशास्त्र एवं वेद, ये दोनों मेरे हाथ हैं। मैंने इस स्थावर जंगम जगत् को इन्हीं के द्वारा धारण किया हुआ है। कभी भी मूढ़बुद्धि व्यक्ति भी, मोह से भी इन दोनों का उल्लंघन न करे, क्योंकि ऐसा करने से वह मेरे इन हाथों से भ्रष्ट होकर नीचे गिर जाता है, गलित हो जाता है, "इसमें संशय नहीं है"। यही दोनों कल्याण के निमित्त हैं, दोनों के रहस्य को समझना अत्यंत कठिन है, बुद्धिमान भी इनमें भ्रमित हो जाते हैं, तथा ये दोनों आदि और अंत से रहित हैं। जो व्यक्ति आगमशास्त्र एवं वेद को छोड़कर दूसरे मार्ग का आश्रय लेता है, मैं स्वयं भी उसका उद्धार करने में असमर्थ हूँ, "यह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है।" इन दोनों में अभेदत्व समझते हुए ही बुद्धिमान् व्यक्ति को धर्म का आचरण करना चाहिए, इन दोनों में विद्वान् को कभी भी, मोह से भी, भेद नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, एक देववाक्य का प्रमाण और देखें -

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणं वै द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति।

इतिहासपुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा ॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु न दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः ।
उभयोर्यत्र दृष्टं च तत्पुराणेषु गीयते ॥
यो वेद चतुरो वेदान्सांगोपनिषदो द्विजः ।
पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः ॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अध्याय - ०२, श्लोक - ९०-९३)

हे ब्राह्मणों ! पुराण को मैं वेदों की ही भांति "निश्चल" मानता हूँ। सभी वेद पुराणों में ही प्रतिष्ठित हैं, "इसमें संशय नहीं हैं।" ऊपरी अध्ययन (श्रौतकर्म) से, यह व्यक्ति मुझे कम्पित कर देगा, इस बात से वेद भयभीत रहते हैं। इसीलिए मेरे द्वारा इतिहास (रामायण, महाभारत आदि) एवं पुराणों के द्वारा इन्हें निश्चल (कूटस्थ) कर दिया गया है। जो बातें वेदों में नहीं मिलती हैं, जिनका वर्णन स्मृतियों में भी नहीं है, अथवा जो बातें उन दोनों में मिलती हैं, वे सभी बातें पुराणों में बताई गई हैं। जो व्यक्ति चारों वेदों को उनके उपनिषदों का साथ जानता है, वह यदि पुराण नहीं जानता है, तो उसे विद्वान् नहीं समझना चाहिए।

अतएव यह सिद्ध हुआ कि जैसे पुराण, स्मृति एवं तन्त्रवाक्यों में विरोधभाव दिखने पर हम वेदों की शरण ग्रहण करते हैं, श्रुतिसम्मत अर्थ को ही सही कहते हैं, श्रुतिविरुद्ध मत को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार से श्रुतिवाक्यों में विरोधभाव के दर्शन होने पर भी अपनी सुविधा वाले वाक्यों को ग्रहण करने की अपेक्षा, स्मृति, तन्त्र एवं पुराणों से उनका अभेदत्व जानकर, उन शास्त्रों की सम्मति का पक्ष समझते हुए ही किसी निर्णय पर पहुंचना चाहिए। अब हम उस बिन्दु पर आते हैं जिसे ऊपर छोड़ दिया था। (जिसे हमने कहा था, कि *दूसरी बात* बाद में बताऊंगा) "नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्" ... इस तर्क में नित्यानंद जी ने इसका भाव स्पष्ट नहीं किया कि वे इसका क्या अर्थ लगा रहे हैं, अतएव मैं इसका शोधन करता हूँ।

इस श्लोकांश के कुछ प्रधान सम्भावित अर्थ निकलते हैं -
१) एक भी ऋषि ऐसा नहीं है, जिसके वचन को हम प्रमाण मानें, (मतलब सब के सब अप्रामाणिक हैं)।
२) किसी एक ही ऋषि के वचन को प्रमाण नहीं मानना चाहिए, (अपितु सबकी बातों को

समझकर ही निर्णय करना चाहिए)
३) एक ही ऋषि नहीं है जिसका वचन प्रामाणिक हो,(मतलब सबके वचन प्रामाणिक हैं)

इन तीन में से पहले अर्थ में पूरी अशास्त्रीयता है, इसीलिए वह अग्राह्य हैं। दूसरे अर्थ में लोकव्यवहार की दृष्टि से तो बल है किंतु उसमें पारमार्थिक बल नहीं है, क्योंकि ऋषियों के वचन की तुलना करके निर्णय देना सरल नहीं। तीसरा अर्थ मेरी दृष्टि में सर्वथा उचित है कि सभी प्रामाणिक हैं। क्योंकि ऋषयो मन्त्रद्रष्टार: .. जो मन्त्रों का दर्शन करे, वह ऋषि है। कैसे मन्त्रों का दर्शन सम्भव है ? जो अपौरुषेय हों। सिद्ध बात है कि वेद अपौरुषेय हैं, तथा देवी के वचन से वेदागमैकत्व सिद्ध होने के कारण आगम के मन्त्र भी अपौरुषेय ही हैं। अतएव वेदागम के मन्त्रों का दर्शन करने वाला ऋषि है, ऐसा समझना चाहिए।

अब बात यह है कि जिस व्यक्ति की प्रज्ञा ऋषिपद के स्तर की हो, जो वेदागम के अप्रत्यक्ष मन्त्र का भी दर्शन करने की क्षमता रखती हो, वह अप्रामाणिक वचन का उत्सर्जन कैसे कर सकती है ? और यदि कर सकती है, तो फिर उसके द्वारा दृष्ट वेदागम ही अप्रामाणिक हो जाएंगे, जो स्वयं ही असंगत है। अतएव तीसरा अर्थ ही ग्राह्य है कि एक ही ऋषि के वचन प्रामाणिक हैं, ऐसा नहीं है, अपितु सबके वचन प्रामाणिक हैं।

ध्यान रहे कि सभी संन्यास-संज्ञक उपनिषदों में अधिकारी का विवेचन नहीं है, अपितु लगभग सबों में संन्यासी बनने की विधि एवं विहित कर्म अथवा स्थिति का वर्णन है। नारदपरिव्राजकोपनिषत् और संन्यासोपनिषत् में विशेषकर अधिकारी का विवेचन है। इनकी सूची के विपरीत भाव रखने वाले औपनिषदिक वाक्य मेरे संज्ञान में नहीं हैं, जो हीनांग आदि को भी स्पष्ट समर्थन देते हों। यदि एक दो हों भी, तो भी उपर्युक्त स्कान्दमत से, निषेधपरक वाक्य को स्मृति एवं पुराणागम का बल मिलने से वही पुष्ट होगा।

साथ ही समुद्रपारगमन के सन्दर्भ में *समुद्रयात्रास्वीकारः* इस नारदीय पुराणोक्त वचन से विदेशगमन कलिवर्ज्य की श्रेणी में आ जाता है अतः इससे भी ऐसे बाबाओं के अधिकार संदिग्ध हो जाते हैं। स्मरण रहे कि इलाहाबाद (प्रयागराज) एवं उड़ीसा के उच्च न्यायालयों में इन उपनिषदों के आधार पर ही शांकर पीठ सम्बन्धी विवाद का निर्णय सुनाया गया है, जिसे भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी समर्थित किया, जिसमें समुद्रपारगमननिषेध, विकृतांग के अनधिकृत होने आदि की बात विशेष रूप से उल्लिखित की गई है। यहाँ

समाज ध्यान दे कि दो प्रकार के संन्यासोपनिषत् उपलब्ध हैं। उसमें सामवेदीय वाले पर उपनिषद्ब्रह्मयोगी जी का १७५० ई० में लिखा गया भाष्य है तथा अथर्ववेदीय वाले पर १८७२ ई० में श्रीनारायणतीर्थ के द्वारा लिखी गयी दीपिका है। मैंने दोनों को ही पढ़ा है। यहां सामवेदीय उपनिषत् पर चर्चा की जा रही है, अथर्ववेदीय उपनिषत् का वर्ण्य विषय भिन्न होने से वह यहां प्रासङ्गिक नहीं है।

मैंने (दूसरे बिंदु का, जिसका वर्णन अधूरा छोड़ दिया था) नैको ऋषिर्यस्य मतः प्रमाणम् के संदर्भ में यह कहा था कि इसका जो समाधान है, वह देवताओं के एक गुप्त एवं दिव्य रहस्य से भरा हुआ है। सामान्य बुद्धि वालों के सामने इसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए, किन्तु कार्यगौरव से मैं लिख रहा हूँ, क्योंकि यह विषय शास्त्रों की प्रामाणिकता का ही है। आखिर क्यों अलग अलग शास्त्रों, पुराणों, दर्शनों, तंत्रों एवं वेदों में परस्पर विरोधी या द्वेषपूर्ण बातें मिलती हैं ? वस्तुतः उनमें कोई विरोध या द्वेष है नहीं, अपितु सर्वत्र एक ही सत्य को भिन्न भिन्न विधियों से कहा गया है। उसे जानबूझकर इस शैली में लिखा गया है कि भ्रम उत्पन्न करे, ताकि विशेष प्रज्ञा और योग्यता वाले ही इसे समझ सकें तथा केवल विशिष्ट गुण एवं शास्त्र-श्रद्धान्वित जन ही कल्याण के भागी बनें। अस्तु, कारण पर आता हूँ। भगवान् श्रीअक्षोभ्यरुद्र भगवती तारा से यह रहस्य बताते हुए कहते हैं -

कलौ कादिमतं पुण्यं पूर्वमेकं स्थितं प्रिये॥

हे प्रिये ! पहले कलियुग में पुण्यदायक केवल एक कादिमत ही था। (कादिमत श्रीविद्या का एक वर्णमातृका समूह है, जो बीजाक्षरों के आधार पर ब्रह्मतत्व का निरूपण करता है)

एवं संसारसिद्ध्यर्थं प्रपञ्चो निर्मितः पुरा। आगमे बहवो भेदाः षड्दर्शनप्रकारजाः॥

फिर इस संसार को चलाते रहने के लिए, इसकी व्यवस्था की सिद्धि के लिए पहले कुछ प्रपञ्चों को बनाया गया। जिसमें कई प्रकार के आगमशास्त्र और छः प्रकार के दर्शनशास्त्र हैं। (यहां बनाया गया, से तात्पर्य है कि उन शास्त्रों के अपौरुषेय रूप को एक पौरुषेय योजना के अनुसार प्रदर्शित किया गया)

अन्येऽपि कोटिशो भेदाः सन्त्येव प्रियवादिनि।
धर्मशास्त्रं चतुर्वेदाः पुराणव्याहृतिस्तथा॥

इनके और भी करोड़ों भेद हैं। हे प्रिय वचन बोलने वाली ! कई प्रकार के धर्मशास्त्र,चार वेद, पुराणों के वाक्य हैं। (व्याहृति = व्याहार = वाक्य - अमरकोश)

न्यायमीमांसावेदान्तसाङ्ख्यपातञ्जलं तथा।
काव्यादि बहवो भेदाः प्रपञ्चा एव कीर्तिताः॥

न्याय, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, पातंजल (योगदर्शन) एवं बहुत प्रकार के काव्य (जैसे कि आदिकाव्य रामायण) को प्रपञ्च कहा गया है। (यहां प्रपञ्च का अर्थ मिथ्या या षड्यंत्र नहीं, अपितु मेदिनीकोश के अनुसार इसका अर्थ संग्रह या सञ्चय है। वेदान्त आदि दिव्य ज्ञान के ही संग्रह हैं)

यदारभ्य धृतं रूपं सुन्दरं परमेश्वरि। तदारभ्य प्रपञ्चोऽयं सर्वत्र परिवर्तते॥

जब से (निर्गुण निराकार ने) सुंदर (सगुण साकार) रूप धारण किया। हे परमेश्वरि ! तभी से ये सभी प्रपञ्च सभी स्थानों में व्याप्त हो गए।

यदि कादिमतञ्चैकं वर्तते सत्यवादिनि। तदा पुमांसो देवेशि महाकालस्वरूपिणः॥

यदि पहले की ही भांति (बीजाक्षर रूपी सूत्रात्मक) केवल एक कादिमत ही रहता तो हे सत्य बोलने वाली ! सभी पुरुष महाकाल के स्वरूप वाले हो जाते।

स्त्रियः श्रीकालिकारूपा भवन्त्येव न संशयः।
इत्येवं हि प्रपञ्चार्यं शाक्तं वैष्णवशाम्भवम्॥

सभी स्त्रियां भी सीधे कालिका का रूप धारण कर लेतीं, "इसमें कोई संशय नहीं है"। (ये सम्पूर्ण जगत्, वेद, तन्त्र एवं पुराणों के अनुसार शिवशक्त्यात्मक है। ऐसे में सभी अपने मूल रूप को प्राप्त कर जाते, इसी बात को रोकने के लिए) इस श्रेष्ठ प्रपञ्च ऐसा वैष्णव, शैव एवं शाक्त आदि भेदों से युक्त है।

गाणपं सौरबौद्धञ्च षड्दर्शनमितीरितम्। मतानि बहुसङ्ख्यानि सञ्जातानि सुरेश्वरि॥

गाणपत्य, सौर, बौद्ध, ये (पिछले श्लोक के वैष्णव, शाक्त एवं शैव को मिलाकर) षड्दर्शन कहे गए हैं।

वैदिके शास्त्रनिंदा स्यात् शाक्ते वैष्णवनिंदितम्।
वैष्णवे शैवनिंदा स्यात् सौरे गणपतेस्तथा॥

वेदों में (लौकिक) शास्त्रों की निंदा दिखती है, शाक्तों में वैष्णवनिंदा है। वैष्णवों में शैवों की एवं सौर में गणपति वालों की निंदा है।

गाणपत्ये सौरनिंदा सौरे वीरस्य निंदनम्। चीने जैननिंदास्यात् जैने कापालिकस्य च॥

गाणपत्य में सौर की तथा सौर में वीराचारियों की निंदा है। चीनाचार वाले जैनियों की और जैनी कापालिकों की निंदा करते हैं।

कापालिके बौद्धनिंदा बौद्धा नानाविधा मताः।
एवं भिन्नमतान्याहुः पुराणाद्येषु शाम्भवि॥

कापालिकों के पास बौद्धों की निंदा होती है और अनेक प्रकार के बौद्ध तो सबकी ही निंदा करते हैं। इस प्रकार से पुराण आदि में, हे शाम्भवी ! अलग अलग मत बताए गए हैं।

वेदानां चैव शाखाः वै बहवः परिकीर्तिताः। एवं निंदासमापन्ने भेदे जाते महेश्वरि॥
नैकत्र तु मनो लग्नं न कस्य प्रियवादिनि। सर्वत्रान्योन्यनिन्दा तु प्रपञ्चेन प्रकाशिता॥

वेदों की भी बहुत सी शाखाएं बताई गई हैं। इस प्रकार से एक दूसरे के प्रति निंदा का भाव आ जाने से भेदबुद्धि उत्पन्न हो जाती है। हे महेश्वरी ! उस भेद के उत्पन्न होने पर. हे प्रियवादिनी ! किसी का भी मन एक स्थान पर नहीं लग पाता है। प्रपञ्च के द्वारा सर्वत्र ही एक दूसरे की निंदा प्रदर्शित कर दी गयी है।

भिन्नं भिन्नं प्रशंसन्ति निंदन्ति च परस्परम्।
न विद्या सिद्धिमाप्नोति सम्भ्रमन्ति पिशाचवत्॥

कभी लोग अलग अलग मतों की प्रशंसा करने लगते हैं तो कभी परस्पर निंदान करने लगते हैं, इस कारण उनकी विद्या सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाती है और वे पिशाचों के समान भटकते रहते हैं।

अन्योन्यं यदि निन्दा न तदैवेक्यं प्रजायते।
तस्मादैक्यसुसिद्ध्यर्थं कालिका भवतारिणी॥
(शक्तिसङ्गममहातन्त्रराज, ताराखण्ड, अक्षोभ्यतारासम्वाद, पञ्चम पटल, श्लोक – ४७-६१)

जब (अत्यंत श्रेष्ठ तपोबल एवं सौभाग्य से) दूसरे मतों की निंदा न करके सभी मतों एवं शास्त्रों में एकत्व का भाव आ जाता है, तब उस एकत्व की सिद्धि के लिये (सभी शास्त्रों और मतों में एकत्व है, इस बात के ज्ञान से जो लाभ होता है, उसे प्रदान करने के लिए) कालिका देवी उसके लिए संसार से उद्धार करने वाली हो जाती है (उसे मोक्ष देती हैं। तात्पर्य है कि मोक्ष हेतु सभी मतों एवं उपर्युक्त प्रपञ्चसंज्ञक शास्त्रों में तत्वतः एकत्व एवं अभेद की भावना होनी चाहिए।

स्मरण रहे, यहां प्रपञ्च का अर्थ पाखण्ड नहीं, अपितु वेदादि के सिद्धांत, अपरा विद्या है। यह तन्त्र का प्रमाण है, इसीलिए इसके अर्थ में दृष्टि भी तांत्रिक होनी चाहिए। जैसे तन्त्र में जब पञ्च-प्रेत कहते हैं तो वहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव का बोध होता है। ऐसे ही जब तन्त्र में सप्त-वेश्या कहते हैं तो निरुत्तर तन्त्र के अनुसार वहां अयोध्या, काञ्ची, हरिद्वार आदि तीर्थों का संकेत होता है। ऐसे ही प्रपञ्च का अर्थ यहां सिद्धांत सङ्ग्रह से है। आद्यशङ्कराचार्य जी ने भी प्रपञ्चसारतन्त्र की रचना की है)

यही कारण है कि शास्त्रों में विरोधी वचन दिखते हैं, किन्तु उसमें भ्रमित होना मूर्ख का ही लक्षण है। विद्वान् उनमें अभेद का चिंतन करके उस विरोध का भी समन्वय कर लेते हैं। अब हम पुनः संन्यासाधिकार पर आते हैं। पहले हम आतुर संन्यास पर और फिर बालक के संन्यासाधिकार पर चर्चा करेंगे। सर्वप्रथम तो जो नित्यानंद जी ने कहा कि उपस्करों के धारण में विरोधी वाक्य उपनिषदों में मिलते हैं तो उसमें यही समाधान है कि दण्ड संन्यास में कई भेद हैं, कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस आदि अनेक हैं। फिर ज्ञान, कर्म, वेद, आदि संज्ञक भी भेद हैं। सबके लिए सब नहीं है, इसीलिए भेद मिलता है। किसी के लिए छोड़ने का विधान है तो किसी के लिए नहीं। यहां विरोधाभास नहीं है अपितु आचार धर्म है। जैसे किसी व्यंजन को बनाने में चीनी पड़ती है तो किसी में नमक। किसी में दूध तो किसी में तेल। वैसे ही किसी संन्यास में धारण करना है, किसी में नहीं।

अयं धर्मः कुटीचकादीनां समः।
कुटीचकस्य तु चमसोपानहपवित्रभिक्षापात्राणि विशेषः॥
(कुण्डिकोपनिषत्, उपनिषद्ब्रह्मयोगिभाष्य)

जलपात्र, खड़ाऊं, भिक्षापात्र उपस्करों के धारण के समर्थक नियम विशेषकर कुटीचक एवं उनके जैसे के लिये हैं। इसीलिए उपनिषदों में विरोधाभास है, ऐसी बात नहीं है। अपितु अलग अलग स्तर एवं स्थिति के लिए नियमभेद हैं। अब आतुर शब्द का शास्त्रों में क्या

और कैसा वर्णन है, इसके कुछ प्रमाण देखते हैं। नित्यानंद जी का तर्क है कि आतुर व्यक्ति कब मरेगा इसका कोई निश्चित समय नहीं है। कितने दिन, कितने मास या वर्ष बाद मरेगा इसीलिए वह आतुर संन्यास लेकर फिर क्रम संन्यास ले सकता है।

जबकि ऐसी बात नहीं है। आतुर वही है जिसकी स्थिति ऐसी हो कि प्राणों का निकलने का काल एकदम ही निकट हो। जैसे हम गजेंद्र और ग्राह के प्रसंग में गजेंद्र की स्थिति आतुर वाली कह सकते हैं किंतु शाल्व के सेनापति के द्वारा मूर्छित किये गए प्रद्युम्न को आतुर नहीं कह सकते। अनेकानेक रोगों के लक्षण एवं शरीर पर उनके प्रभाव को बताने के बाद आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं कि रोगों के कारण आतुरावस्था को प्राप्त व्यक्ति जीवित नहीं रहता है।

आतुरो न स जीवति

(अष्टांगहृदयम्, शारीरस्थान, अध्याय ५, श्लोकांश - ११७)

आतुर व्यक्ति बिल्कुल मृत्यु के सन्निकट रहता है, अतः उसे प्राण छोड़ने में यदि कष्ट हो, प्राण निकलते ही न हो तो उसके लिए परलोक के द्वार खोलने के उद्देश्य से गरुड़पुराण में नमक का दान करके का निर्देश है -

आतुरस्य यदा प्राणा न यान्ति वसुधातले। लवणञ्च तदा देयं द्वारस्योद्घाटनं दिवः॥

(गरुडपुराण, प्रेतकाण्ड (धर्मकाण्ड), अध्याय ०४, श्लोक - १५)

पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्ति प्रकरण में भगवान् धन्वन्तरि का वचन द्रष्टव्य है।

यो वा मयूरकण्ठाभं विधूमं वह्निमीक्षते।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात्॥

(सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय - ३०, श्लोक - २३)

जिस व्यक्ति को बिना धूम के ही मोर के कंठ के समान रंग की अग्नि दिखाई दे, वह यदि पहले आतुर है तो मर जाता है और यदि स्वस्थ है तो बीमार पड़ जाता है।

(रासायनिक गैस आदि के जलने में बिना धुंए के ही हरी-नीली ज्वाला दिखाई पड़ती है। अब ऐसी रासायनिक अभिक्रिया वाले क्षेत्र में आतुर व्यक्ति रहेगा तो शरीर के पहले से ही क्षीण होने के कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा और यदि स्वस्थ व्यक्ति भी है तो बीमार पड़ जायेगा)

विद्या प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः। आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥
(महाभारत, वन पर्व, यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद)

प्रवासी के लिए विद्या ही मित्र है। घर में रहने पर पत्नी ही मित्र है, आतुर व्यक्ति के लिए औषधि एवं मृतप्राय के लिए दान ही औषधि है। यहां शंका हो सकती है कि आतुर भी मर रहा है और मृतप्राय भी, तो अन्तर क्या हुआ ? याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका में आतुरो रोगी कहा है। आतुर की अवस्था रोग से आती है। जबकि मृतप्राय व्यक्ति किसी दुर्घटना, युद्ध में घातक प्रहार, राजदण्ड आदि के कारण भी मृत्यु के निकट पहुंच सकता है। उत्तर है कि आतुर को जीने की इच्छा होती है और मृतप्राय आत्मसमर्पण कर चुका होता है। इसीलिए आतुर के लिए औषधि उसकी रक्षा हेतु एवं मृतप्राय के लिए दान, उसके सुकृत वृद्धि हेतु कहा है। हालांकि आतुर व्यक्ति के परिजन भी उसकी रक्षा तो करना चाहते ही हैं तो उसके दुष्कृतक्षय करने और पापजनित व्याधि के नाश हेतु भी दान करना चाहिए।

आतुरस्य व्याधिनाशार्थे दानादौ
(संस्काररत्नमाला, द्वितीय प्रकरण)

एक वैदिक संकेत देखें -
आतुरस्य निषङ्गधिः
यजु० १६। १०

आतुर व्यक्ति खड्ग का चिंतन करता है। निषङ्गः खड्गः स धीयतेऽस्मिन्निति निषङ्गधिः। क्यों करता है ? आतुर व्यक्ति तो मरने ही वाला है, फिर वह दो कारणों से खड्ग का चिंतन कर रहा है। या तो प्राण रक्षा के लिए खड्ग का चिंतन कर रहा है अथवा उसे खड्ग से ही मारा जा रहा है इसीलिए भय से उसका चिंतन कर रहा है।

आतुरस्य पितुः पुत्रो यस्तु कुर्यात्प्रतिक्रियाम्।
सोक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते॥
मुमूर्षोरपिता तस्य पश्यतो मृत्युलक्षणम्।
कृत्वा च यजनं पुत्रो देवानां तुल्यतां व्रजेत्॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ५०, श्लोक २३९- २४०)

जो पुत्र आतुरावस्था को प्राप्त अपने पिता के प्रति प्रतिक्रिया देता है (उसकी इच्छाओं की पूर्ति करता है) वो अक्षय पुण्य के साथ स्वर्ग में देवताओं के साथ निवास करता है। मरते हुए पिता को मृत्युलक्षण से ग्रस्त देख कर उसकी सेवा करने वाला पुत्र देवताओं के ही समान हो जाता है।

यहां आतुर व्यक्ति के देह में मृत्युलक्षण का प्रकट होना यह सिद्ध करता है कि हम यह नहीं कह सकते कि वह वर्षों के बाद मरेगा अपितु आचार्य वाग्भट्ट ने तो कह ही दिया कि आतुर जीवित नहीं बचता है। आतुर व्यक्ति को बचाने का प्रयास तो किया ही जा रहा है, इस बीच अन्य लोग, जो चिकित्सकीय ज्ञान से रहित हैं वे क्या करें ? तब कहते हैं -

छन्दज्ञा मतिसम्पन्नाः शास्त्रज्ञानेषु कोविदाः ॥
ते वदेयुः कथाश्चित्रा धर्मकामार्थसंहिताः। आतुरस्य विनोदार्थं तन्द्राशोकविनाशनाः ॥
(भेल संहिता, चिकित्सास्थानम्, प्रथम अध्याय, श्लोक - ३८-३९)

जो वेदादि के ज्ञान से युक्त हों, बुद्धिमान् हों, शास्त्रज्ञान में निपुण हों, वे आतुर व्यक्ति के (व्याधिजन्य) पीड़ा एवं शोक को दूर करने के लिए धर्म, अर्थ एवं कामादि से सम्बंधित विचित्र कथाओं को उसके सामने कहें।

अब स्वाभाविक है कि आतुर व्यक्ति ऐसे ही व्यथित है कि सारा किया कराया जमा पूंजी अब यहीं छूट जाने वाला है, मेरी मृत्यु निकट है, ऐसे में यदि उसे शास्त्रज्ञान से युक्त व्यक्ति कथाएं सुनाएं तो उसे अपने जीवन की नश्वरता पर खिन्नता होगी। यह खिन्नता उसके मन में धीरे धीरे वैराग्य उत्पन्न कर देगी और इस प्रकार वह स्वयं को इस बन्धन से मुक्त कराना चाहेगा।

इस प्रसङ्ग में नित्यानंद जी का तर्क विरोधाभास से युक्त है। पहले तो नित्यानन्द जी कहते हैं कि आतुर व्यक्ति कब मरेगा, कितने दिन, मास या वर्षों में मरेगा, कुछ ज्ञात नहीं। पुनः स्वयं ही यौगिक ग्रंथ का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि प्राणोत्क्रमण का निकट का समय आतुरकाल है। जब प्राण निकलने का ही समय आतुरकाल है तो फिर यह आपने कैसे कह दिया कि वह वर्षों तक भी जीवित रह सकता है ? (यहां केवल रोगी वाले आतुर की बात है, बालक शब्द पर आगे चर्चा होगी) वैसे जो व्यक्ति योगबल में इतना ही दक्ष हो कि इच्छानुसार राजयोग को सिद्ध करके शर्वपीठ पर स्थापित हो सके, वो वैकल्पिक आतुर संन्यास लेगा ही क्यों ? वह तो स्वतः परम सिद्ध है। आपने स्वयं प्रमाण दिया कि

राजयोगी को सृष्टिसंहारकर्तृत्वशक्ति से युक्त बताया गया है। ऐसा व्यक्ति तो निश्चय ही देहाभिमान से सर्वथा परे होगा और फिर देहजन्य स्थितियों से उसकी समीक्षा सम्भव नहीं है। जो स्वयं देहातीत हो चुका हो, वो भला आतुर संन्यास क्यों लेगा ? आतुर संन्यास का कार्य तो आपत्तिकाल या अनधिकारी को किसी प्रकार से अधिकारी बनाने के लिए, वो भी ठीक प्राणों का उत्सर्ग काल प्राप्त होने के समय किया जाता है। यदि प्राणों के उत्सर्ग का अर्थ मृत्यु से लें तो फिर उसके जीवित होने की आशा वर्षों तक है, आपका यह तर्क खण्डित हो जाता है।

यदि आपके द्वारा बताये गये अनुसार इसका आध्यात्मिक अर्थ यह लें कि उसके प्राण शर्वपीठ पर स्थापित हैं तो ऐसे दिव्य योगी को आतुर संन्यास की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि जो स्वयं हनुमान् हो, वो कराटे क्लास क्यों जायेगा ? उसका स्तर तो अत्यंत श्रेष्ठ हो चुका है, वह तो पहले से अवधूत हो गया है। साथ ही उसमें सृष्टि एवं संहार की शक्ति आ गयी है, इसका अर्थ है कि उसकी सिद्धि ब्रह्मांश, वैष्णवांश अथवा रुद्रांश में हो गयी है। फिर भला वह आतुर संन्यास क्यों लेगा ? अब यदि हम दोनों ही अर्थ चित्रकूटीय पक्ष में अध्यस्त कर दें, तो भी आपके किसी भी तर्क से बात बनेगी नहीं।

सभी जानते हैं कि चित्रकूट वाले बाबाजी ने जब दण्ड संन्यास लिया था तो वे प्राणोत्सर्ग (मृत्यु) की स्थिति में नहीं थे। साथ ही यदि प्राणोत्सर्ग का अर्थ योगबलीय लें तो भी उनमें सृष्टि अथवा संहार, अथवा कम से कम देहाभिमान से परे होकर प्राणों को शर्वपीठ पर स्थापित करने के फलस्वरूप प्राप्त परकायाप्रवेशादि सिद्धियां दृष्टिगोचर होती ही नहीं हैं। इस प्रकार नित्यानंद जी के प्रस्तावित दोनों मत सादर खण्डित होते हैं। वैसे यहां राजयोग का प्रसङ्ग ठीक था भी नहीं, व्यर्थ ही स्वयं को पुष्ट करने के लिए यह तर्क दिया गया था क्योंकि आतुर संन्यासाधिकार केवल उसे है जो विधिपूर्वक सीधे मार्ग से संन्यासाधिकार न रखता हो और राजयोगी में तो ऐसी अयोग्यता नहीं होती। इसीलिए यहां आतुर एवं प्राणोत्सर्ग का अर्थ सीधे सीधे मरणासन्न व्यक्ति से ही है। इसका अर्थ आचार्यों ने निश्चित किया है -

प्राणस्योत्क्रमणासन्नकालः प्राणोत्क्रमणपूर्वभाविकाल एवेत्यर्थः।
(नारदपरिव्राजकोपनिषत्, उपनिषद्ब्रह्मयोगिभाष्य)

प्राण के उत्क्रमण की स्थिति में, प्राण निकलें, उससे ठीक पहले का समय ... ऐसा ही अर्थ है।

एक तो जो व्यक्ति हीनांग, अधिकांग, षंड, पतित आदि हो उसे संन्यासाधिकार नहीं है। फिर यदि वह मरने की स्थिति में आ गया, उसे वैराग्य हुआ एवं उसे संन्यास की इच्छा हो गयी तब वह अपने आप को सभी वृत्तियों से उपसंहृत करके ब्रह्मचिन्तन का प्रयास करता है। अब इस कारण से कि वह मुमुक्षु हो गया है, साथ ही स्वभावतः बन्धन से छूटने को कटिबद्ध है, उसके लिए विधान है कि स्वयं ही मैं काम्य कर्मों का न्यास (संवरण) करता हूँ, इस भाव से संन्यास की स्थिति का चिंतन करे, क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता के -

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

एवं

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।

इन भगवद्वाक्यों से यह पुष्ट होता है कि द्वेष, इन्द्रियगत इच्छा (राग) और फलतः काम्य कर्मों का उपसंहार ही संन्यास की मूल भावना है। (योगदर्शन के सुखानुशयी रागः एवं दुःखानुशयी द्वेषः सूत्र के अनुसार भौतिक विषय में ही राग द्वेष अधिक आरोपित होते हैं। भगवान् के प्रति राग एवं जगज्जाल के प्रति द्वेष अनुचित नहीं है।) साथ ही,

अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे। तत्रैव संन्यसेद् विद्वाननिष्ठाऽपि द्विजोत्तमः ॥
(कूर्मपुराण, पूर्वभाग, अध्याय - ०३, श्लोक -०६)

जब वैराग्य के वेग से, व्यक्ति घर में रहने में असमर्थ हो जाये, तभी संन्यास ले, भले ही उसने इस समय तक (गृहस्थोचित) यज्ञों का अनुष्ठान किया हो या न किया हो।

आतुर व्यक्ति, प्राणोत्सर्ग काल में, तीव्र वैराग्य से युक्त होकर जो संन्यास लेता है, वही आतुर संन्यास है। साथ ही जो संन्यासाधिकार से रहित हैं, उन्हें यदि संन्यास लेना हो तो आतुर संन्यास की स्थिति आने पर ही लें। यह प्रारम्भ में तो अमंत्रक ही होता है किन्तु इसमें भी आतुरसंन्यास के बाद गृहत्याग ही बताया गया है -

विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान् सरक्तस्तु गृहे वसेत्। सरागो नरकं याति प्रव्रजन् हि नराधमः ॥
(नारदपरिव्राजकोपनिषत्)

जब एक बार विरक्ति हो जाए और बुद्धिमान् व्यक्ति संन्यास ले ले, फिर यदि उसके बाद भी रागयुक्त होकर, आसक्त होकर घर में ही रह जाता है, तो बिना दृढ़ वैराग्य के ही संन्यास लेने के कारण वह नरक में जाता है।

हां, यदि व्यक्ति आतुरसंन्यास लेने के बाद मर जाये तब अलग बात है। यदि तत्काल घर से निकलने में असमर्थ हो तब सामान्य स्वस्थ होने तक रुक सकता है, फिर थोड़ी स्थिति सुधरने पर तुरंत गृहत्याग करे।

आतुरो जीवति चेत् क्रमसंन्यासः कर्तव्यः .. इस वाक्य का नित्यानंद जी ने जो अर्थ लगाया है, वह भ्रम में डाल सकता है। उनका कहना है कि आतुर संन्यास लेकर फिर क्रम संन्यास की विधि से अमुकामुक इष्टि आदि समन्त्रक करे। अस्तु, बात तो ठीक है, किन्तु कब करे ? यदि आतुर संन्यास लेने के बाद दैववश बच गया, नहीं मरा, "जीवति चेत्" यदि जीवित् बच गया, तब चूंकि आतुर संन्यास ले चुका था, अब वापस लौटेगा तो नरक में जायेगा तो उससे अच्छा कि विधिपूर्वक ही ले ले। इसीलिए इस निर्णय पर कहते हैं,

यद्यातुरो जीवति तदा तेन यथोक्तलक्षणं दण्डादिकं स्वीकार्यमिति।
(संन्यासोपनिषत्, उपनिषद्ब्रह्मयोगिभाष्य)

'यदि' आतुर व्यक्ति जीवित रह गया (जैसा कि सामान्यतः होता नहीं है) '*तब*' उसके द्वारा जैसा शास्त्रों में बताया गया है, उस विधान से दण्डधारण आदि किया जाना चाहिए। आतुर संन्यास में भी पहले दण्ड नहीं मिलता है, क्रम संन्यास से ही लेना पडता है।

अतएव यह सिद्ध होता है कि आतुर संन्यास (१) केवल मरणासन्न स्थिति में, (२) यदि तीव्र वैराग्य हो, तभी लेने का विधान है। और साथ ही, "यदि" उसके बाद जीवित बच गया, तो ही क्रम संन्यासाधिकार मिलता है। यदि ऐसा न हो, तो वर्षों बाद मरने की संभावना पर भी, आज ही कई अनधिकृत लोग आतुर संन्यास के नाम पर पहले संन्यासी हो जाएंगे फिर '*जीवति*' और *'कर्तव्यः'* शब्द के आधार पर क्रम संन्यास लेकर यतिधर्म की दुर्गति करते फिरेंगे। एवं यह भी कि चित्रकूटीय बाबा जी के सन्दर्भ में आतुर संन्यास नहीं, सीधे क्रम संन्यास ही लिया गया था, जो औपनिषदिक निर्देश की स्पष्ट अवहेलना है।

अब यहां बालक के आतुर संन्यास पर आते हैं। बालक के सन्दर्भ में यह अर्थापत्ति की जा सकती है कि सामान्यतः बालक का जीवन आगे कई वर्षों तक चलने की संभावना रहती है तो यहां प्राथमिक दृष्ट्या आतुर का अर्थ मरणासन्न से नहीं लेना चाहिए। मैं इस बात से आंशिक सहमत हूँ। बालक अपनी चपलता एवं अदूरदर्शिता के लिए भी प्रसिद्ध होते हैं। इसीलिए आतुर का अर्थ अधीरता से भी ले सकते हैं। क्योंकि आतुरता से व्यक्ति अधीर होकर हठी भी हो जाता है। बालक के लिए कहीं कहीं अर्भक या बाल शब्द भी आता है।

शब्दरत्नावली आदि इसका समर्थन करते हैं, इसीलिए हम इन सभी पर्यायों को एक सा ही मानते हुए चर्चा करेंगे। बालक या बाल शब्द से सामान्य अर्थ अपरिपक्वता या न्यूनता का होता है। दैहिक वय की अपरिपक्वता भी बाल्यावस्था है और बौद्धिक चिंतन की अपरिपक्वता भी बाल्यावस्था ही कहलाती है। स्मृतियों का वचन है -

आषोडशाद्भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते।

बाल आषोडशाद्वर्षात्।
(याज्ञवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा टीका)

सोलह वर्ष तक की अवस्था को बाल्यावस्था कह सकते हैं। दूसरे,

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥
(मनुस्मृति, अध्याय – २, श्लोक - १५३)

जो मन्त्र (कल्याणकारी परामर्श) दे, वह पिता कहाता है और जो अज्ञानी है, वह बाल कहलाता है।

वैशब्दोऽवधारणे अज्ञ एव बालो भवति नत्वल्पवयाः (कुल्लूकभट्टः)

यहां बाल का अर्थ अर्थ बौद्धिक मूर्ख है, न कि कम उम्र वाला, ऐसा भाष्यकार ने अर्थ स्पष्ट किया है। दोनों के ही संन्यास का निषेध है। हां, यदि देह से बालक होने पर भी बुद्धि से बालक न हो, फिर अत्यंत ही तीक्ष्ण वैराग्य से युक्त हो तो आतुर संन्यास ले सकता है, फिर समुचित विधि से क्रम संन्यास ले सकता है। क्योंकि दो बातें ऊपर प्रमाणित हो चुकी हैं -

* जब दृढ़ वैराग्य हो, तभी संन्यास ले ले।
* बालक होकर संन्यासाधिकार नहीं है, चाहे देह से बालक हो या बुद्धि से। किन्तु देह से बालक हो किन्तु बुद्धि से प्रौढ़ तो (स्मृतियों एवं उपनिषदों में शिशुआंगिरस का वचन स्मरण करते हुए) पहले आतुर और बाद में क्रम संन्यास ले सकता है।

दैहिक अवस्था से बालक होना तो सामान्य बात है। बौद्धिक बाल्यावस्था के कुछ प्रमाण देता हूँ -

पराचः कामाननुयन्ति बाला
(कठोपनिषत्, द्वितीय अध्याय, प्रथम वल्ली)

श्रीरंगरामानुजमुनिकृतभाष्ये पराच इति - बालाः अल्पप्रज्ञाः इत्यर्थः

बालक का अर्थ कम बुद्धि वाले से लिया गया है।

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
(श्रीमद्भगवद्गीता, ५/४)

सांख्य एवं योग में भेद देखने वाले को भी बालक (मूर्ख) की संज्ञा दी गयी है।

सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥
(श्रीवेंकटाचलमाहात्म्यम्)

जो व्यक्ति पगड़ी पहनकर पवित्र करने वाली कथा को सुनते हैं, वे मनुष्यों में अधम, पापी, बालक हो जाते हैं। यहां ज्ञानापमान से श्रोता के मूर्ख हो जाने का ही संकेत है।

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि बालक का अर्थ दैहिक और बौद्धिक, दोनों में हीन अवस्था वाला होना है। दोनों ही संन्यासाधिकार नहीं रखते, किन्तु यदि दृढ़ वैराग्य हो ही जाए तो पहले आतुर और फिर क्रम संन्यास ले सकता है। कुछ लोग अष्टावक्र जी का नाम ले रहे थे। अष्टावक्र को विकलांग होने का श्राप और उससे मुक्ति का वरदान, दोनों उनके पिताजी ने ही दिया था। वे गर्भ में आने से पूर्व ही ब्रह्मज्ञानी थे अतएव देहगत स्थितियों से परे थे। उन्होंने शरीर में आने के बाद कुछ नहीं सीखा। वे सब सीख कर ही गर्भ में आये थे। अष्टावक्र जी की गिनती परमहंस संन्यासी में होती है। सृष्टि में एक ही अष्टावक्र हुए, रोज सौ पचास नहीं हो रहे। इसीलिए उनका उदाहरण मान्य नहीं है। उन्होंने गर्भ में ही वेदज्ञाता होकर अपने पिताजी को ही टोक दिया था। कोई दूसरा ऐसा करे तो हम आपत्ति नहीं करेंगे उसके संन्यास पर।

। इति शम्।

सप्तम भाग

मेरे खण्डन में नित्यानंद मिश्र जी ने आद्यशंकराचार्य जी (जिन्होंने बाल्यावस्था में ही संन्यास लिया था) और विश्वेशतीर्थ जी (उन्होंने भी बाल्यावस्था में ही संन्यास लिया था) का उदाहरण देकर कहा कि क्या इन महापुरुषों ने गलत किया ? वेदविरुद्ध आचरण किया ? यदि नहीं तो चित्रकूटीय बाबा गलत कैसे ? और यदि इन्होंने भी गलत किया तो क्या केवल आप ही सही हैं ? मैं इसका उत्तर क्रमशः दूंगा। कालक्रम से श्री आद्यशंकराचार्य जी पूर्ववर्ती हैं, इसीलिए पहले उनकी ही चर्चा करेंगे। कुछ बातें सर्वविदित हैं,

१) आद्यशंकराचार्य जी स्वयं शिवावतार थे और उनका अवतार एवं कार्य पूर्वनिर्धारित था।
२) उनकी सामान्य आयु ही कुल सोलह वर्ष थी तो चाहे जब भी संन्यास लेते वह बाल्यकाल ही में कहाता।
३) उन्होंने आतुर संन्यास लेकर ही क्रम संन्यास लिया था। उनकी माताजी स्नेहवश अनुमति नहीं दे रही थीं, और इनके अवतार का उद्देश्य खण्डित हो रहा था। इसलिए उन्होंने योगबल से मायाग्राह बनाकर स्वयं को मृत्युग्रस्त सिद्ध करते हुए कहा कि आतुरावस्था आ गयी, अब तो अनुमति दे दो। फिर माता ने अनुमति दे दी और इस प्रकार से आतुर संन्यास लेकर फिर उन्होंने श्रीगोविंदपाद जी के पास जाकर क्रम संन्यास लिया।

एक बात और है कि शंकराचार्य जी के अवतरण के विषय में कई भिन्न तिथियां मिलती हैं। लोगों की बुद्धि इसमें भी तर्क कुतर्क करती है किंतु मेरी बुद्धि इस बात में भ्रमित नहीं होती। मैं सभी तिथियों को सही मानता हूँ। अब आप कहेंगे कि एक ही व्यक्ति अलग अलग काल मे अनेकों बार कैसे हो सकता है ? तो उत्तर है, कि वो कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे अपितु साक्षात् शिवजी के ज्ञानावतार थे। जो बाल्यावस्था में ही नवीन माया ग्राह की सृष्टि करने के में दक्ष थे, फिर आगे परकाया प्रवेश आदि इच्छानुसार करते थे, उनके लिए क्या असम्भव है ? उनके अलग अलग काल में बारम्बार आने की भविष्यवाणी पुराणों में वेदव्यास जी बहुत पहले ही कर चुके थे।

आचार्यः शङ्कराख्यो हि कृत्वा संन्यासमाश्रमम्।

..... (इसके बाद शास्त्रार्थ वर्णन)
तान्निवार्य ततो बौद्धानाचार्यः शङ्करः स्वयम्।
देवतानां स्तवान्दिव्यान्कवचानि करिष्यति॥
मृतसञ्जीवनीविद्यां समाश्रित्य पुनः पुनः॥
भिन्नभिन्नशरीरैस्तु काव्यव्याकरणादिकान्।
करिष्यति शुभान् ग्रन्थान् पुण्यांश्च पठतां नृणाम्॥
(बृहद्धर्म पुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - १९, श्लोक – २३-२७)

स्वयं शिव जी शंकराचार्य नाम को धारण करके, संन्यस्त होकर, बौद्धों को शास्त्रार्थ में हराएंगे। पुनः देवताओं की स्तुति में बहुत से स्तोत्र और कवच आदि की रचना करेंगे। मृतसंजीवनी विद्या का आश्रय लेकर अलग अलग शरीरों को धारण करके वे लोगों के पढ़ने के लिए काव्य व्याकरण आदि (से युक्त) पुण्यदायक शुभ ग्रंथों की रचना करेंगे। इसीलिए उनके विषय में अलग अलग तिथियों का मिलना भी स्वाभाविक है। वे अलग अलग शरीर एवं कुछ भिन्न नामों से बारम्बार आये हैं। ऐसे उनके आगमन की भविष्यवाणी पहले ही पुराणों में की जा चुकी थी। शिवपुराण में रुद्रगणों में नीललोहित को प्रधान बताया गया है - रुद्राणां नीललोहितः। एकलिङ्गपुराण में शङ्कराचार्य जी को सविता एवं विष्णु का दिव्यांश बताया है।

निन्दन्ति वेदविद्याञ्च द्विजाः कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवो महादेवः शङ्करो नीललोहितः॥
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः। ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम्॥
कलिदोषान्विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्।
(लिङ्गपुराण, पूर्वभाग, अध्याय – ४०, श्लोक – २०-२१.१/२)

जब (अधर्मी गण) वेदों एवं ब्राह्मणों की निंदा करने लगेंगे, तब कलियुग में नीललोहित संज्ञक महादेव शंकर, धर्मापत्तियों का निवारण करके धर्म की प्रतिष्ठा करेंगे। जो उन शंकर की जिस किसी भी प्रकार से शरण में रहेगा वो कलियुग जन्य दोषों को जीत कर परमपद को प्राप्त हो जायेगा। कुछ कुछ इसी भाव की भविष्यवाणी करते हुए कूर्मपुराण में भी वर्णन है -

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः। न देवता भवेन्नृणां देवतानां च दैवतम्।
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः। श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्।
सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्।
सर्ववर्णान् समुद्धिश्य स्वधर्मा ये निदर्शिताः।
ये तं प्रीताः निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्।
(कूर्मपुराण, पूर्वभाग, अध्याय ३०)

उपर्युक्त प्रमाण को स्वयं ध्यान से देखें - वर्णन है कि भगवान् शंकर का नीललोहित अवतार शंकराचार्य के रूप में होगा जो वेद में निर्दिष्ट धर्म का उपदेश करेगा। किसी भी प्रकार से उनकी शरण में रहने वाले व्यक्ति का कल्याण होगा। ये वही शंकराचार्य जी का प्रताप है, जिनके वेदसम्मत उपदेश को कथित जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी 'कुपथ' के नाम से सम्बोधित करते हैं, और इस प्रकार से पुराण एवं वेदों की ही अवमानना करते हैं।

इतना ही नहीं, शक्तिसंगम महातन्त्रराज के छिन्नमस्ता खण्ड में तो पञ्चप्रेतावतार प्रकरण में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव के अंश से शंकराचार्य एवं उनके चार सनातन शिष्यों के अवतार की भविष्यवाणी भी है। उसमें यह भी उल्लेख है कि कहाँ कहाँ किस सम्प्रदाय एवं आम्नाय के आधार पर किस किस शांकर पीठ की स्थापना करेंगे। शंकराचार्य जी किन किन नामोपाधि वाले दशनामी संन्यासियों की परम्परा को स्थापित करेंगे और उनमें कितने भेद प्रभेद होंगे, इत्यादि एक एक बात की भविष्यवाणी बहुत स्पष्ट रूप से की गई है। विस्तारभय से पूरा तो नहीं बताऊंगा किन्तु एक सांकेतिक प्रमाण देखें -

बौद्धोत्सादनकार्यार्थं शङ्करो मर्त्यरूपधृक्। अवतीर्णो महेशानि पञ्च प्रेतसमन्वितः॥
यदा यदा सतां हानिर्धर्मग्लानिर्महेश्वरि। तदावतारो देवेशि हरेर्भवति पार्वती॥
हरिगर्वापहारार्थं भक्तानुग्रहणाय च। धर्मसंस्थापनार्थं हि शङ्करोऽवतरिष्यति॥
वाराहवक्त्रनृहरी यथा गर्वेण तर्पितान्। तथा कलियुगे प्राप्ते शङ्करः कलिशङ्करः॥
चतुर्दिक्षु चतुःप्रेता मध्यरूपेण पार्वति। मध्ये स्वयं शङ्करो हि सदा तिष्ठति पार्वति॥
एवं

महानीलोपासको हि पूर्वव्यासः प्रकीर्तितः।
कलौ युगे शङ्करो हि दिव्यसाम्राज्यदीक्षितः॥
एवं
चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शङ्करोऽवतरिष्यति।
शङ्करः शङ्करः साक्षाद्व्यासो नारायणो हरिः॥
एवं
शङ्करश्च महेशानि हस्तामलक एव च। सुरेश्वरस्ततः प्रोक्तस्त्रोटकस्तदनन्तरम्॥
पद्मपादः पञ्चमः स्यात् पञ्चप्रेतानुकल्पनम्।
मुख्या परम्परा देवि मया प्रोक्ता हिताय च॥
(शक्तिसङ्गममहातन्त्रराज, छिन्नमस्ताखण्ड, अष्टम पटल)

वायुपुराण के खिलभाग एकलिङ्गपुराण में वर्णन है कि राजर्षि बाष्प के विरक्त होने पर उनके पुत्र महाराज भोज ने शासन सम्भाला। उस समय गुरुपूर्णिमा के दिन पूजन के समय उन्होंने आथर्वण ऋषि से पूछा कि गुरु कौन है, उसके पूजा की विधि क्या है ? को गुरुः पूजनं कीदृग्विशेषेण प्रशंस मे। तब आथर्वण ऋषि ने उन्हें कलियुग में शंकराचार्य को गुरु बताते हुए गुरुपूजा का निर्देश किया है। पूरा प्रसङ्ग विस्तारभय से नहीं दे रहा हूँ, सांकेतिक प्रमाण देखें -

ततः श्रीशङ्कराचार्यः कलावाचार्य ईरितः। तच्छिष्याश्चैव चत्वारः सम्प्रदायप्रवर्तकाः॥
विश्वरूपः पद्मपादस्त्रोटकाचार्य एव हि। हस्तामलकसंज्ञश्च चतुर्थः परिकीर्तितः॥
(एकलिङ्गपुराण, अध्याय - २०, श्लोक – ६४-६५)

इसके बाद श्रीशंकराचार्य हुए, जो कलियुग में आचार्य कहे गए हैं। उनके चार सम्प्रदायप्रवर्तक शिष्य हुए जिनके नाम - विश्वरूप, त्रोटक, पद्मपाद एवं हस्तामलक कहे गये हैं। (कुछ उपाधियों के भेद से स्वरूपाचार्य या सुरेश्वर नाम भी मिलता है) इसके बाद शंकराचार्य जी के द्वारा अलग अलग दिशाओं में स्थापित पीठ, आम्नाय, सम्प्रदाय, उपाधि का वर्णन करके आथर्वण ऋषि ने कहा -

कृते ज्ञानप्रदः सत्यस्त्रेतायां दत्त एव च। द्वापरे व्यासनामा तु कलौ शङ्करनामधृक्॥
(एकलिङ्गपुराण, अध्याय - २०, श्लोक – ८१)

'सत्ययुग में सत्य (ब्रह्मा) ज्ञानप्रदायक होते हैं। त्रेतायुग में दत्तात्रेय, द्वापरयुग में वेदव्यास एवं कलियुग में ज्ञानप्रदायक शंकराचार्य होते हैं।' इस प्रकार से जब शंकराचार्य जी का अवतरण, उनके द्वारा सम्भावित कार्य आदि सब देवताओं और ऋषियों के द्वारा पहले ही निश्चित थे तो यहां संदेह करना निरर्थक ही है। शंकराचार्य जी ने स्वयं आतुर संन्यास ही पहले लिया था क्योंकि प्रज्ञा से प्रौढ़ होने पर भी वय से बालक ही थे इसीलिए शास्त्रानुसार मायामय ग्राह के व्याज से अपने को आसन्नकाल दिखाकर माता से आतुर संन्यास की अनुमति भी लेकर मर्यादा की रक्षा ही की।

अब जो यह कहें कि उन्होंने माया से मिथ्या ग्राह बनाकर ऐसा किया जो न्यायोचित नहीं, तो स्मरण रखें कि चूंकि उन्होंने ऐसा किया, इससे यही सिद्ध होता है कि वे योगबल से नवीन सृष्टि करने में सक्षम थे इसीलिए राजयोगी होने से उनको कोई दोष नहीं लगेगा। पुनश्च, शंकराचार्य जी स्वयं ही सम्पूर्ण जगत् की स्थिति को मायामय एवं मिथ्या कहते हैं, इसीलिए सिद्धांत दृष्टि से भी मिथ्या में पुनः एक मिथ्या का अध्यारोपण सम्भव नहीं है। अतः आद्यशंकराचार्य जी का उदाहरण, जो नित्यानंद जी ने दिया था वह शास्त्रीय आलोक में निरस्त होता है।

अब एक और तर्क जो श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज के रूप में दिया गया था, उसका प्रतिखण्डन करते हैं। सर्वप्रथम तो यह बता दूं कि वे द्वैतवादी माध्व सम्प्रदाय के श्री अधोक्षज मठ, पेजावर के बत्तीसवें आचार्य थे। देश के अग्रणी विद्वानों और साधकों में उनका विशेष स्थान था। दिसंबर, २०१९ में वे गोलोकवासी हो गए तथा उनके सम्मान में उन्हें देहावसान के अनन्तर पद्मविभूषण सम्मान भी दिया गया था। इनके गुरु श्री विद्यामान्यतीर्थ जी थे। यतिकुलचक्रवर्ती श्री विश्वेशतीर्थ जी ने सात वर्ष की अल्पायु में ही संन्यास लिया था। यहां स्मरण रहे कि आद्यशंकराचार्य जी की भांति इन्होंने बाल्यावस्था में पहले आतुर और फिर क्रम संन्यास नहीं लिया था, अपितु सीधे क्रम संन्यास ही ग्रहण किया था। नित्यानंद जी के पूछे गए प्रश्नों के आधार पर -

१) क्या विश्वेशतीर्थ जी का बाल्यावस्था में संन्यास लेना गलत है ?
मेरा उत्तर - हां, यह उपनिषदों की मर्यादा के अनुरूप न होने से अनुचित ही है।
२) क्या आप विश्वेशतीर्थ जी को दोषी मानते हुए उनपर आरोप लगाते हैं एवं उनके संन्यासाधिकार पर भी प्रश्न लगाते हैं ?

मेरा उत्तर - बिल्कुल नहीं। मैं विश्वेशतीर्थ जी के संन्यासाधिकार कर कोई आपत्ति नहीं करूंगा।

यहां विपक्ष हमारे उत्तर में विरोधाभास एवं सिद्धांतों में पक्षपात का आरोप लगाकर प्रसन्न हो सकता है, किन्तु जब मैं इसका कारण सप्रमाण दूंगा तो पुनः एक बार सत्य ही आलोकित होगा। हालांकि यह रहस्य भी गोपनीय ही है और इसका प्रकाशन भी जनसामान्य के सामने नहीं करना चाहिए, किन्तु चूंकि बात एक महान् यतिराज के धर्मसम्मत कृत्यों का है, तो यह रहस्य न चाहते हुए भी मुझे प्रकाशित करना पड़ रहा है।

श्रीविश्वेशतीर्थ स्वामी जी स्वयं श्रीमध्वाचार्य जी के सम्प्रदाय से संबंधित है। मध्वाचार्य जी का अवतरण जब नहीं हुआ था तो द्वापरांत में ही सूत आदि पुराणवक्ताओं ने वेदव्यास जी रचित गरुडपुराण (ब्रह्मकाण्ड में) तथा सौर उपपुराण आदि में इनके सम्प्रदाय के विषय में कुछ भविष्यवाणी की थी। अब विपक्ष सर्वदा की भांति सौर उपपुराण की प्रामाणिकता पर ही प्रश्न करे, इसीलिए पहले इसकी प्रामाणिकता ही सिद्ध करता हूँ और फिर सम्प्रदायोक्त रहस्य बताऊंगा। उपपुराण की सूची के अंतर्गत सौर उपपुराण के नाम का समर्थन अन्य श्रेष्ठ सिद्ध पुराण इस प्रकार करते हैं -

माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्। पराशरोक्तं परमं मारीचं भार्गवाह्वयम्॥
(कूर्मपुराण, पूर्वभाग, प्रथम अध्याय – २०) एवं
(स्कन्दपुराण, प्रभास खण्ड, द्वितीय अध्याय – २०)

वारुणं कालिकाह्वानं माहेशं साम्बमेव च। सौरं पाराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम्॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ११५, श्लोक – ९६)

अब मुख्य प्रसङ्गों पर आते हैं। कलियुग की घटनाओं की भविष्यवाणी के अंतर्गत मध्वाचार्य जी के प्रसङ्ग में यह भविष्यवाणी कुछ प्रकार है। कुछ भूतकाल परक एवं कुछ भविष्य परक वचन हैं तो भ्रमित न हों, क्योंकि आगामी कल्कि का पूरा चरित्र कल्कि पुराण में भूतकाल की शैली में ही किया गया है। आगामी कल्पों की कथा बताने वाले ब्रह्माण्ड पुराण की शैली भी भूतकाल के वर्णन जैसी ही है। किंतु त्रिकालदर्शी महात्मागण भविष्य का वर्णन भी भूतवत् करते हैं, इसीलिए भ्रमित न होंगे।

घटना उस समय की है, जब अद्वैतमत के प्रखर वेदांती श्री स्वामी पद्मपादुकाचार्य जी अपने शिष्यों को वेदान्त पढ़ा रहे थे। उस समय मध्वाचार्य जी की भौतिक आयु पांच वर्ष की थी। उन्होंने पद्मपादुकाचार्य जी के पास जाकर विद्या की याचना की ...

पद्मपादुकमाचार्यं परं वेदान्तवादिनम्। अद्वैतागमबोद्धारं प्रणम्य प्रार्थयिष्यति॥

वे (मध्वाचार्य जी) अद्वैतागम के वक्ता, श्रेष्ठ वेदान्तवादी पद्मपादुकाचार्य जी के पास जाकर प्रणाम करके प्रार्थना करेंगे।

आचार्यः करुणामूर्तिः विनयेन परिप्लुतम्।
करिष्यति च शिष्याणामग्रण्यं प्रेमवत्सलः॥

करुणामय आचार्य, विनय से भरे उस बालक को देख प्रेमभाव से उन्हें अपने शिष्यों में प्रधान बना लेंगे।

फिर एक दिन मध्वाचार्य जी ने बाल्यावस्था के कारण बिना स्नान के ही भोजन कर लिया। इस बात से उनके गुरुजी ने क्रोधित होकर उन्हें डांटा तो प्रत्युत्तर में मध्वाचार्य जी ने उनसे कुछ वाद विवाद कर दिया। बाद में बात वेदान्त के द्वैत और अद्वैत मत पर आ गयी। मध्वाचार्य जी द्वैत का आश्रय लेकर पूर्वपक्ष बन गए और पद्मपादुकाचार्य जी अद्वैत का आश्रय लेकर उत्तरपक्ष बन गए। कुछ समय बाद तर्क वितर्क से गुरुजी और भी क्रुद्ध हो गए। आगे की भविष्यवाणी देखिए -

शापं दास्यत्यथाचार्यः सिद्धांतो मा स्फुरत्यलम्।
सिद्धांते जड़ता तेऽस्तु परमद्वैतदर्शने॥

उसके बाद पद्मपादुकाचार्य जी उस बालक (मध्वाचार्य) को यह श्राप देंगे कि बस, अब बहुत हो गया। तुम्हारी सिद्धांत (अद्वैत) में जड़ता हो जाये (यानी मैंने जो तुम्हें अद्वैत वेदान्त पढ़ाया है, वह स्फुरित नहीं होगा, तुम भूल जाओ), साथ ही पूर्वपक्ष में जो तुम द्वैतमत का आश्रय लेकर तर्क दे रहे हो, वह भी विस्मृत हो जाएगा।

कथं त्वदीया सेवा मे निष्फला स्याद्वद प्रभो।
इत्यादि बहुनिर्वेदं यदा त्वेष करिष्यति॥

जब मध्वाचार्य जी उनसे बहुत प्रार्थना करेंगे कि मैंने आपकी इस प्रकार से जो सेवा की है, वह भला सर्वथा निष्फल कैसे सकती है कि मैं द्वैत और अद्वैत दोनों ही भूल जाऊं ....

पश्चाद्गदिष्यति स्वामी पूर्वपक्षोऽस्तु ते दृढ़:।
सिद्धांते सर्वथैवाऽऽन्ध्यं मम वाक्यं न चान्यथा॥
(सौर उपपुराण, अध्याय ३९)

तब स्वामी पद्मपादुकाचार्य जी कहेंगे कि ठीक है फिर, तुम्हारे अंदर पूर्वपक्ष का द्वैतमत पुनः दृढ़ हो जाये, किन्तु मेरे पढ़ाये गए अद्वैत सिद्धांत के प्रति तुम्हारी दृष्टि समाप्त हो जाएगी, मेरा यह वचन मिथ्या नहीं होगा।

वायुदेव का तो मध्वाचार्य जी के रूप में अवतार हुआ ही इसीलिए था कि द्वैतमत का प्रकाशन करके भक्तिमार्ग को पुष्ट कर सकें। त्रिविक्रम पंडिताचार्य को उन्होंने वायु, हनुमान्, भीम और मध्व, चारों रूपों में दर्शन दिया था और त्रिविक्रम जी ने हरिवायु स्तुति लिखकर उनका पूजन किया था।

यः सन्धत्ते विरिञ्चिश्वसनविहगपानन्तरुद्रेन्द्रपूर्वे।
स्वाध्यायंस्तारतम्यं स्फुटमवति सदा वायुरस्मद्गुरुस्तम्॥

बाद में वेदव्यास जी से ब्रह्मसूत्र पढ़ने के लिए मध्वाचार्य जी सूक्ष्म रूप से बद्रीनाथ चले गए थे।

पारिव्राज्याधिराजः पुनरपि बदरीं प्राप्य कृष्णं च नत्वा ...

मध्व सम्प्रदाय में निम्न नामस्मरण प्रसिद्ध है कि वायुदेव के अंश से तीन युगों में ये तीन अवतार, पहले हनुमानजी, दूसरे भीमसेन और तीसरे पूर्णप्रज्ञ (आनन्दतीर्थ मध्वाचार्य) स्वामी जी हुए हैं।

प्रथमो हनुमान्नामा द्वितीयो भीम एव च। पूर्णप्रज्ञ तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः ॥

अपना वास्तविक परिचय और उद्देश्य छिपाकर मध्वाचार्य जी ने पद्मपादुकाचार्य जी से ज्ञान लिया और फिर उनसे वाद विवाद किया इसीलिए उन्हें श्राप मिला -

कपटेन यतः शास्त्रं मत्तोऽधीतं दुरात्मना।
तेन सिद्धांतमर्यादा कदाचिन्मा स्फुरत्वियम् ॥

गुरु ने कहा - हे दुरात्मन् ! तुझ दुरात्मा के द्वारा उन्मत्त होकर कपट से शास्त्र को ग्रहण किया गया है, इसीलिए मेरी बताई गई सिद्धांत की मर्यादा तुझमें स्फुरित न हों।

भविष्यति महाभाग वचनं तव नान्यथा। पूर्वपक्षो मम हृदि प्रादुर्भवतु निश्चलः ॥

इस श्राप को सुनकर मध्वाचार्य जी ने कहा - हे महाभाग ! आपका वचन सत्य होगा, यह मिथ्या नहीं होगा। किन्तु मुझमें जो मेरा पूर्वपक्षीय ज्ञान था, वह पुनः निश्चल होकर प्रकट हो।

अन्धता तव सिद्धांते पूर्वपक्षे च पाटवम्।
भवत्वेव परंत्वेकं पापाः शिष्याः भवन्तु ते ॥
(सौर उपपुराण, अध्याय ४०, श्लोक – ४१-४३)

मध्वाचार्य जी के वचन को सुनकर पद्मपादुकाचार्य जी ने कहा - ठीक है फिर, मेरे सिद्धांत के प्रति तुम्हारी दृष्टि समाप्त हो जाये और अपने द्वैतवादी पक्ष में तुम्हें निपुणता प्राप्त हो जाये। ऐसा ही हो, किंन्तु तुम्हारे शिष्यों में पाप के लक्षण दिखाई दें।

इस प्रकार से मध्वाचार्य जी के प्रति अपने श्राप को सीमित करके पद्मपादुकाचार्य जी ने उनके सम्प्रदाय को ही इस श्राप से युक्त कर दिया। अब मध्वाचार्य जी के शिष्यों में ये श्रापजन्य किस रूप में दिखता है, इसका संकेत समझें -

जातमात्रं नरं कञ्चिन्मुंडयित्वा मठाधिपम्। काषायवस्त्रमात्रेण करिष्यन्ति नराधमाः ॥
(सौर उपपुराण, अध्याय - ३९, श्लोक ७१)

'वे नराधम, किसी किसी नवजात व्यक्ति का मुंडन करके, उसे काषाय वस्त्रादि देकर मठाधीश बना देंगे।' चूंकि पद्मपादुकाचार्य जी के विवाद के समय मध्वाचार्य जी की अवस्था पांच वर्ष की थी, ऐसा प्रसिद्ध है, तो

पञ्चवर्षं यतिं कृत्वा क्रमेणाऽऽदाय बालकम्।
माठापत्यं विधास्यन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिकाः ॥
(सौर उपपुराण, अध्याय ४०, श्लोक ६४)

क्रमानुसार बालकों का चयन करके, पांच वर्ष की अवस्था में ही, वे नास्तिकगण, धनलोभ से, संन्यासी बनाकर मठाधीश बना देंगे।

यहां ध्यातव्य है कि ये जो निन्दापरक शब्द, जैसे कि नराधम, दुष्टात्मा, नास्तिक आदि हैं, इससे मध्व संप्रदाय के महानुभाव जन अपमान न समझें क्योंकि पद्मपादुकाचार्य जी उस समय क्रोधित होकर श्राप दे रहे थे, और श्राप देने वाला व्यक्ति सम्मानजनक सम्बोधन तो करता है नहीं ... इसीलिए ये शब्द उनके क्रोध के कारण कहे गए हैं, ऐसा समझना चाहिए। इस श्राप को स्वयं श्रीमध्वाचार्य जी ने सहर्ष स्वीकार किया था, इसमें कोई अपमान या हीनता की बात नहीं है, इसलिए शेष को आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। यह ध्यान में रखें कि प्रथमावतार में हनुमानजी के रूप में भी बाल्यकाल में ऋषियों ने उन्हें बल के विस्मृत हो जाने का श्राप दिया ही था, इसमें कोई अपमान या हीनता की बात नहीं है। उसी प्रकार तृतीयावतार में मध्वाचार्य जी को उनके गुरुजी ने ज्ञान के विस्मरण का श्राप दे दिया, इसमें भी कोई हीनता या अपमान की बात नहीं है।

राजा यदु को मिले ययाति-श्राप के कारण उनकी परम्परा में प्रकट हुए श्रीकृष्ण भगवान् पैतृक राज्यसिंहासन के लिए अनधिकृत थे सो उन्होंने महाराज उग्रसेन जी को राजा बनाया। इसमें श्रीकृष्ण जी का कोई अपमान न हुआ और न कोई हीनता की बात है। ऐसे ही याज्ञवल्क्य मुनि को उनके गुरु ने वेद विस्मरण का श्राप देकर ज्ञान का तात्त्विक वमन करा दिया था, बाद में याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेव से अप्रकाशित ऋचाओं को प्राप्त किया था, इसमें उनका कोई अपमान या हीनता का भाव ग्रहण नहीं करना चाहिए। वाद विवाद के कारण लोमश मुनि ने अपने शिष्य भुशुण्डि को काक हो जाने का श्राप दे दिया था। इसमें काकभुशुण्डि जी की कोई हीनता प्रदर्शित नहीं हो गयी।

तो इस प्रकार से सौर पुराण की भविष्यवाणी के अनुसार घटित घटनाओं का रहस्य बताकर मैंने सिद्ध किया कि श्रीमध्वाचार्य जी के सम्प्रदाय में जो बालकों को भी संन्यास देने की बात दिखती है, वह औपनिषदिक मर्यादा का उल्लंघन है। यह उल्लंघन पद्मपादुकाचार्य जी के श्राप की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए आवश्यक भी है, क्योंकि श्राप को स्वयं मध्वाचार्य जी ने ही अनुमोदित किया था और कहा कि गुरुदेव ! आपका यह श्राप मिथ्या नहीं होगा।

पद्मपादुकाचार्य जी के श्राप (मठ में धनसंग्रह होगा) का ही परिणाम है कि आज भी माध्व मठों में अभूतपूर्व वैभव दिखाई पड़ता है। अतः विश्वेशतीर्थ जी महाराज ने बाल्यकाल में जो संन्यास लिया वह पद्मपादुकाचार्य के द्वारा प्रोक्त एवं मध्वाचार्य जी के द्वारा स्वीकृत श्राप के कारण औपनिषदिक मर्यादा के उल्लंघन से जन्य पाप को दिखाने के लिए ही है जिसे अन्य व्यक्ति अथवा सम्प्रदायों में आरोपित नहीं किया जा सकता है। अतएव नित्यानंद जी का यह तर्क भी शास्त्रीय आधार पर खण्डित होता है।

विपक्ष मुझपर यह आरोप भी लगा रहा है कि मैं वैष्णवाचार्यों को गाली देता हूँ। यह सर्वथा निराधार है। मैंने चित्रकूट वाले बाबा के विषय में कोई "अपशब्द" नहीं लिखा है। ये लोग यह नहीं बताते कि क्या गाली दी है, बस हल्ला करते हैं। ये लोग यह भी नहीं बताते कि और कहाँ, कब कब, किस किस स्थान पर, किस किस वैष्णव को, किन किन शब्दों में लिखित या मौखिक गाली दी ! किसी और ने यह आरोप भी नहीं लगाया है, इनको छोड़कर, वरन् देश के अन्य मान्य वैष्णवाचार्यों का समर्थन ही मिला है।

मैं छद्मवेशी वैष्णव को वैष्णव नहीं मानता। यहां तो पौंड्रक स्वयं ही भगवान् के वैष्णव स्वरूप की नकल बनाकर बैठा हुआ था, वैसे ही कुछ लोग दम्भ वैष्णव का रूप बनाकर बैठे हुए हैं, जिन्हें शास्त्रोक्त वैष्णवता का कोई ज्ञान ही नहीं। केवल वेश बनाने से कोई वैष्णव हो जाता तो हनुमानजी कालनेमि का प्रतिकार नहीं करते। मैंने चित्रकूट वाले बाबा को कोई अपशब्द नहीं कहा, बस ये कहा कि इस-इस बिंदु एवं अयोग्यता के कारण, वे इस इस कर्म में, अमुक अमुक *प्रमाण के आधार पर* अनधिकृत हैं। उल्टे, चित्रकूटीय पक्ष वाले हमें ही कुत्ता, कौवा, गधा, चांडाल, वैष्णवद्रोही, आदि और न जाने क्या क्या स्पष्टरूप से कहते रहे।

मेरे माता पिता स्वयं वैष्णव हैं। विष्णु भगवान् मेरे परिवार के सर्वोच्च इष्ट हैं। किंतु समाज जानता है कि मैं कभी भी शास्त्रीय ग्रंथों में, देवताओं में, आचार्यों में, सम्प्रदायों में एवं तीर्थों में तुलना या भेद नहीं करता। पुनः दोहराता हूँ, मेरी बुद्धि इतनी अशास्त्रीय नहीं है कि मैं तुलना करके देवापराध करूं। मेरे परम्परागत पाठक जानते हैं कि जब श्रीरामानुज सम्प्रदाय के कुछ लोग पद्मपुराण के एक श्लोक के आधार पर शंकराचार्य जी की निंदा कर रहे थे और समुचित उत्तर के अभाव में अनेकानेक मान्य शांकर विद्वानों ने भी उस श्लोक को प्रक्षिप्त ही कह दिया, तब भगवान् ने मुझे, उस श्लोक को बिना प्रक्षिप्त घोषित किये, बिना रामानुज सम्प्रदाय के प्रति आपत्ति किये ही शांकर मत की रक्षा का निमित्त बनाया था।

जब शांकर सम्प्रदाय के कुछ लोग रामानुज एवं रामानंद सम्प्रदाय की निंदा कर रहे थे तब उनके विरुद्ध खड़े होकर, स्वयं अपशब्द सुनते हुए श्रीराम जी की प्रेरणा से मैंने उनका विरोध करते हुए दोनों वैष्णव सम्प्रदायों के पक्ष का संरक्षण किया। जब शांकर और रामानुज, दोनों सम्प्रदाय के लोग मिलकर लिंगायत एवं वीरशैवों को असनातनी कह रहे थे, तब मैंने कहा कि उनका सम्प्रदाय शास्त्रीय है। हां, उनका आजकल का आचरण अपने ही सम्प्रदाय एवं ग्रंथों की नियमावली के विरुद्ध हो गया है किन्तु उनका आचरण अशास्त्रीय है, उनके सम्प्रदायोक्त नियम एवं सिद्धांत नहीं। फिर शास्त्रीय प्रकरणों, उपनिषदों, पुराणों, तंत्रग्रंथों के आधार पर लिंगायतों को सनातनी सिद्ध किया।

मैं किसी मठ या सम्प्रदाय के वैषम्य के कारण सनातन को तोड़ता नहीं, अपितु मात्र शास्त्रीय वाक्यों के आधार पर उसका समन्वय करता हूँ। मेरी उपस्थिति वैष्णव से अघोर तक, शांकर से माध्व तक है। कोई भी हो, कहीं से भी हो, यदि वह सनातन वृक्ष की किसी भी शाखा या पत्र पर टिका है तो मैं उसके पक्ष में हूँ, उनका निंदक नहीं। मैंने किसी वैष्णवाचार्य की निंदा नहीं की है, केवल चित्रकूट वाले बाबा पर कुछ शास्त्रीय आपत्ति की है। शास्त्रों में जो बातें हैं, उसके विवेचन के आधार पर उनके मत को मानने वाले अधिकांश लोगों में भी, दूर दूर तक सम्प्रदायोक्त वैष्णवता नहीं दिखती है।

जिन भगवान् शिव की आराधना स्वयं श्रीरामानंद सम्प्रदाय के परमेष्ट श्रीराम जी ने की, स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने की, उनके ही ज्ञानावतार शंकराचार्य जी के प्रति निंदनीय भाव रखना, निश्चित रूप से वैष्णवता की हानि करता है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सप्तमाचार्य

वेदव्यास जी प्रसन्न होकर जिन्हें अतिरिक्त आयु प्रदान करते हैं, उन शङ्कराचार्य के पथ को कुपथ कहने वाले लोग जगद्गुरु बने घूम रहे हैं, किं वैकल्यमतः परम् ? जिन विष्णु एवं शिव में अभेदत्व का बखान सहस्रों श्लोकों में वेद, तन्त्र, पुराण आदि में हैं, उनमें दोषबुद्धि देखना वैष्णवता को खण्डित ही करता है। एक उदाहरण देखें -

शम्भोराराधनसमं नास्ति कर्म कलौ युगे।
शाक्तो वा वैष्णवः शैवः पूर्वं सम्पूज्य शङ्करम्॥
पश्चात्प्रपूजयेत्स्वेष्टदेवतां भक्तिभावतः।
(महाभागवत उपपुराण, अध्याय ८१, श्लोक - १३)

शिव जी की पूजा के समान कलियुग में कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं है। शाक्त हो, वैष्णव हो या शैव, अपने इष्टदेव के पूजन से पूर्व, भक्तिभाव से युक्त होकर पहले भगवान् शिव का पूजन कर ले।

शिवविद्वेषणेनैव विद्विष्टोऽस्मि संशयः। अहं शिवः शिवो विष्णुर्भेदो नास्त्यावयोर्यतः॥
(महाभागवत उपपुराण, अध्याय १०, श्लोक – ४२)

(विष्णु जी कहते हैं) शिव से द्वेष रखने वाले व्यक्ति मुझसे भी द्वेष रखते हैं। क्योंकि मैं ही शिव हूँ एवं शिव ही विष्णु हैं, हम दोनों में कोई भेद ही नहीं है।

उमाशङ्करयोर्योगः स योगो विष्णुरुच्यते।
(रुद्रहृदयोपनिषत्)

जब देवी पार्वती एवं शिवजी अभिन्न रूप धारण करके एकाकार हो जाते हैं, उस योग को विष्णु कहा जाता है।

ऐसे नारायणभक्त एवं नारायणइष्ट, नारायणरूपी भगवान् शिव की कही आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण आदि पर संदेह करके उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करके शिववाक्य से द्रोह करने वाले को मेरी बुद्धि कैसे वैष्णव मान ले ? क्या केवल वेश से, व्याकरण से तर्क अथवा मेधाशक्ति से ही हम किसी को वैष्णव मान लेंगे ? क्योंकि वेदादि का ज्ञान तो दैत्यों ने भी कश्यप जी से लिया ही था। वेश से तो कालनेमि भी वैष्णव ही था एवं स्वयं को उसने त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ, ब्रह्मवेत्ता के रूप में ही प्रस्तुत किया था। जब उसके मायाजाल और मोहनी वाणी से ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजी तक भ्रमित होकर उसे अपना गुरु मान बैठे थे

तो भला आज का समाज ऐसे लोगों को क्यों न अपना गुरु मानने की भूल करेगा ? वैसे भी वायुदेव के अवतार श्रीमध्वाचार्य जी ने सैकड़ों वर्ष पूर्व सीतात्याग आदि प्रामाणिक हैं, ऐसा लिखित ग्रंथ निर्णय देते हुए भविष्यवाणी की थी कि इन प्रसङ्गों पर सन्देह करने वाले कुछ मायामयी आसुरी प्रवृत्ति के लोग ही हैं जो अन्य आसुरी लोगों को मोहित करते रहते हैं (ताकि उनकी संख्या बढ़ती रहे)

बहुकल्पानुसारेण मयेयं सत्कथोदिता। नैकग्रन्थाश्रयात्तस्मान्नाऽशङ्क्याऽत्र विरुद्धता।
क्वचिन्मोहायासुराणां व्यत्यासः प्रतिलोमता।
उक्ता ग्रन्थेषु तस्माद्धि निर्णयोऽयं कृतो मया।
(महाभारततात्पर्यनिर्णय, अध्याय – ०९, श्लोक - १२४-१२५)

अब हम ग्रंथों में कुछ पाखण्डी वैष्णवों के प्रति भविष्यवाणी देखते हैं। आप सभी जन मात्र लक्षण मिलाते जाएं और इस घटनाक्रम में जो पक्ष, जैसी प्रतिक्रिया और तर्क देकर अपनी वास्तविकता का प्रदर्शन कर रहा है या जैसा विचार प्रस्तुत कर चुका है, उसपर भी दृष्टि बनाये रखें।

भविष्यन्ति यदा विप्राः पापानां प्रभवः कलौ।
तदा तदा भविष्यन्ति ह्युदीच्यां दम्भवैष्णवाः॥
शिवसामान्यवक्तारं शिवसामान्यदर्शिनम्।
दृष्ट्वा स्नायात्सचैलः सञ्शिवसामान्यसंगिनम्॥
(सौर उपपुराण, अध्याय - ३९, श्लोक - ७५-७६)

जब ब्राह्मणों में कलियुग के कारण पाप की वृद्धि होने लगेगी, तो उत्तरदिशा में नकली वैष्णव उत्पन्न हो जाएंगे। (अब उनकी पहचान कैसे होगी ?) वे लोग शिव जी के वाक्यों को सामान्य बताएंगे और शिव जी को सामान्य समझेंगे। ऐसे लोगों को देखकर सवस्त्र स्नान करके शुद्धिकरण करना चाहिए। आपको बता दूँ कि रामभद्राचार्य जी के वक्तव्य एवं आचरण की शास्त्रीय आलोक में समीक्षा करने पर तुलसी पीठ के समर्थकों ने मुझे यह तक कह दिया था कि प्रातःकाल मेरा स्वरूप देखने वाले को भी पातक लग जायेगा, यद्यपि श्रीरामानुजाचार्य जी जैसे परम वैष्णवाचार्य को अंधा कहने वाले श्रीरामभद्राचार्य जी का स्वरूपावलोकन इन्हें उद्धारकर्ता लगता है।

स्वर्गलोकं समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालकः। अद्वैतं शिवमीशानमज्ञात्वा नैव मुच्यते॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते श्रीशङ्करपराङ्मुखाः। भविष्यन्ति नरास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥
(सौर उपपुराण, अध्याय ४०, श्लोक – ९-१०)

मुनियों की आज्ञा का पालन करने वाला व्यक्ति स्वर्गलोक को जाता है। अद्वैतरूपी शिव जी की बातों की अवहेलना करके, न जानकर वह मुक्ति से वञ्चित रहता है। घोर कलियुग आने पर लोग शिवविमुख हो जाएंगे, ऐसा वेदव्यास जी ने कहा है।

पुराणों को संदिग्ध बताने वाले लोग केवल अपनी कुतर्की बुद्धि के कारण ऐसा करते हैं। ब्रह्मराक्षस तक को वेदवाक्य का ज्ञान होता है किंतु पुराण को वे भी नहीं जान पाते। वेदादि में दक्ष व्यक्ति की बुद्धि पुराण में ही फंसती हैं इसीलिए पुराण के पक्षधरों का विशेष होना सिद्ध है। नीचे श्रीराम जी के प्रति शिव जी का वचन द्रष्टव्य है, आप देखें कि हमारे पक्ष को शिववाक्य का समर्थन है। यहां व्यक्तिगत रूप से मेरी और उनकी बात नहीं, दो आचरणों एवं विचारधारा की बात है, चाहे जो भी व्यक्ति करे।

पुराणजीवी पूजार्हः स्वशाखाध्ययनः शुचिः।
मीमांसातत्त्वविज्ञानः श्रोत्रियोऽनृतदूषकः॥
देवेषु च समस्तेषु समदृष्टिः शिवे रतः॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय - १०४, श्लोक - ४२-४३)

'जो पुराण के आधार पर जीवन जीता है, अपनी शाखा के अध्ययन में रत है, पवित्रता का पालन करता है, मीमांसा आदि के तत्व को जानता है, वेदज्ञ है और "असत्य की निंदा" करने वाला है। सभी देवताओं में समदृष्टि रखता है, और शिवपरायण होता है, वह पूज्य है।' मैं वैष्णवों की निंदा नहीं करता, असत्य की निंदा करता हूँ। कोई असत्य और भ्रम का प्रसार वैष्णव वेश की आड़ में करे, वह तो कालनेमि के समान दण्डनीय हैं। मैं उस असत्य की निंदा करके शास्त्रवचन का ही पालन कर रहा हूँ।

ये त्यजन्ति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषन्ति च।
हरिं निन्दन्ति ये पापा ब्रह्मद्वेषकराः सदा ॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड, अध्याय – ६७, श्लोक - ३५)

जो व्यक्ति शिवाचार को छोड़कर शिवभक्तों की निंदा करता है और विष्णुनिंदा करता है, ब्रह्मनिन्दा करने वाले वे पापी हैं।

यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति। न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यते॥
(नारद पुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय – १५, श्लोक - ५२)

केवल भक्ति के आधार पर अपने वर्णाश्रमसम्बन्धी आचार का परित्याग करके जो जीवन यापन करता है, उस पर विष्णु भगवान् प्रसन्न नहीं होते क्योंकि वे आचारप्रिय हैं। (अज्ञानतावश आचार छोड़ दे तो बात अलग है किन्तु मैं भक्त हूँ, ऐसा मानकर उपेक्षापूर्वक आचार के त्याग का निषेध है) आजकल लोग स्वयं को वेशमात्र से कहते हैं कि मैं बहुत बड़ा वैष्णव हूँ, किन्तु तत्त्वतः वैष्णवता से युक्त नहीं होते। बिना परीक्षण किए, बिना शास्त्रीय आलोक में परखे हुए वेषधारी वैष्णवों को ही गुरु मान लेते हैं और एक बार गुरु मान लिया तो उनके सही गलत, झूठ सच, सबको आंख मूंद कर मानते जाते हैं।

गुरुर्मंत्रस्य मूलं स्यान्मूलशुद्धौ तु तच्छुभम्।
सफलं जायते यस्मात्तस्माद्यत्नेन वीक्षयेत्॥
(कालिका पुराण)

गुरु ही मंत्र के मूल हैं। मूल के शुद्ध होने पर मंत्र भी शुभ एवं सफल होता है। इसीलिए यत्नपूर्वक गुरु बनाने से पहले उसके गुण दोषादि का विचार कर लेना चाहिये।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥
(महाभारत, उद्योगपर्व)

कार्य तथा अकार्य में ज्ञानरहित तथा उत्पथगामी गर्वित अभिमानी गुरु का त्याग उचित है।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्यकार्यमजानतः। कामाचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड)

कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से रहित मनमानी करने वाले गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए।

गृहीतमंत्रस्त्यक्तो गुरुश्चेद्दोषसंयुतः।
महापातकयुक्तो वा गुरुदेवविनिंदकः। त्यक्त्वा सर्वं प्रयत्नेन पुनर्ग्राह्यं यथाविधि॥
(यामल तंत्र)

'यदि गुरु दोष से युक्त है अथवा महापातकयुक्त है अथवा अपने गुरु तथा देवताओं की निंदा करने वाला हो, तो उस स्थिति में प्रयत्न करके उसका त्याग करके पुनः यथाविधि नए गुरु का चयन करना चाहिए।' हालांकि मुण्डमाला तन्त्र आदि के अनुयायी यह कहते हैं कि गुरु चाहे उचित हों या अनुचित हों, अथवा पातकी ही क्यों न हों, एक बार उनमें आस्था बन जाने पर अविश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि गुरु में दोषदर्शन की प्रवृत्ति वाला व्यक्ति अन्य योग्य गुरुओं में भी दोषदर्शन करेगा। अतएव गुरु के ऊपर विश्वास की हानि न होने दे। इस मत का विस्तृत परिमार्जन स्कन्दपुराण एवं यामल तन्त्र में इस प्रकार किया गया है :- 'यदि गुरु दोष से युक्त है अथवा महापातकयुक्त है अथवा अपने गुरु तथा देवताओं की निंदा करने वाला हो, तो उस स्थिति में प्रयत्न करके उसका त्याग करके पुनः यथाविधि नए गुरु का चयन करना चाहिए। क्योंकि जो स्वयं ब्रह्मज्ञान से रहित हो वह शिष्य को ब्रह्मबोध कैसे करा सकता है ? भला कहीं तैरने में असमर्थ पाषाण भी किसी के पारगमन का निमित्त बनेगा ?'

व्यङ्गाङ्गहीना बधिराः कुयोनिषुरताश्च ये।
तेषां मन्त्रो न सुखदः प्रोक्तः कविभिरेव च ॥
(जैमिनीय महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, द्वितीय अध्याय)

हीनांग, अधिकांग, बधिर और अनुचित आचरण वाले वाले व्यक्ति से गुरुमन्त्र लेने पर वह मन्त्र सुखदायी नहीं होता, ऐसा विद्वानों का मत है।

पाशब्देन त्रयीधर्मः पालनाज्जगतः स्मृतः।
तं खण्डयन्ति यस्मात्ते पाखण्डास्तेन हेतुना॥
(माहेश्वरतन्त्र, अष्टादशपटल)

जो वेदत्रयी को न माने, वह पापाचारी ही पाखण्डी है। पालन शब्द जगत् का वाचक भी है। ('पा' शब्द से वेदत्रयी के धर्मानुसार लोकव्यवहार करना बताया गया है।) जो उसका खण्डन करे वही पाखण्डी बताया गया है। चित्रकूटीय पक्ष कई बार उपनिषदों की मनमौजी व्याख्या कर चुका है, यहाँ तक कि उनकी प्रामाणिकता पर ही प्रश्न खड़े कर चुका है। वेदविरुद्ध वचनों को बोलने वाले पाखण्ड के उन्मूलन हेतु ही तो श्रीवैष्णवाचार्यों का दिव्यावतरण हुआ था, हम भी उन्हीं के निर्देशों पर चल कर छद्म वैष्णवों का षड्यन्त्र समाप्त कर रहे हैं।

पाखण्डैर्बहुभिर्दुष्टैस्त्यक्तवेदैः कुबुद्धिभिः।
प्राप्तैरासुरशास्त्राणि कल्पितानि कुयुक्तिभिः॥
सर्वतः सङ्कुलं लोकं विनष्टहरिवैभवम्।
उद्धर्तुं लक्ष्मणो योगी कृत्वा श्रीभाष्यमुत्तमम्॥
पाखण्डबौद्धचार्वाकमायावाद्यार्हतादिकान्।
सम्भित्वा कुमतान्सर्वान्पाराशर्यमुनेर्मतम्।
लोकेऽस्मिन्प्रकटीचक्रे विष्णोः प्रियतमं महत्॥
(भार्गव उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय – ३८, श्लोक - ५१-५४)

जब बहुत से पाखण्डवादी दुष्टों के द्वारा वेदों का त्याग करके कुबुद्धि के कारण इस लोक में परम पवित्र वैष्णव मत को नष्ट करके आसुरी शास्त्रों को कपोलकल्पित रीति से फैलाया जाने लगा, तब श्रीलक्ष्मण (रामानुज) योगिराज ने श्रीभाष्य लिखकर उन पाखण्डवादी बौद्ध, चार्वाक एवं मायावादी अर्हत (जैनी) आदि के कुमत का नाश करके वेदव्यास जी के द्वारा प्रणीत भगवान विष्णु के प्रिय मत को इस संसार में प्रकाशित किया।

अब पीठ विवेचन पर आते हैं। कोई भी व्यक्ति कहीं भी इच्छानुसार पीठ बना नहीं सकता। शक्तिसंगम महातन्त्रराज के अनुसार किसी भी अभिनव पीठ का नाम पहले "धर्मादि" होता है, क्योंकि वहां से धर्म के रक्षा एवं पालन की एक नवीन परम्परा का प्रारम्भ होता है। किंतु यहां तो उल्टा ही हो रहा है। पहले से विधर्मियों के आक्रमण से सनातन पीड़ित है, ऊपर से जो मान्य ग्रंथ हमारे आचार्यों ने प्राण देकर भी बचाये रखा, उन आचार्यों के बलिदान का मानो उपहास सा करते हुए कोई भी व्यक्ति वैष्णव वेश बनाकर कभी उपनिषदों को अप्रामाणिक कहने लगता है तो कभी पुराणों को प्रक्षिप्त।

यदि शास्त्रीय प्रमाणों से उसका विरोध करो, तो फिर मूल विषय से हटकर "तुम वैष्णवाचार्यों से द्वेष करते हो, उन्हें गाली देते हो" आदि आरोप लगाए जाते हैं। स्मरण रखें कि सीता हरण के लिए आया हुआ रावण और हनुमानजी को वाग्जालीय प्रवचनों से मोहित करके भ्रम में डालने वाले कालनेमि भी वेश से वैष्णव ही थे जिसका नाश स्वयं श्रीराम एवं हनुमानजी ने किया। मैं भी इन्हीं की कृपा और प्रेरणा से छद्म वैष्णवों का विरोध करता हूँ। ऐसे प्रतापभानुओं का विनाश निश्चित है जो स्वविवेक का परित्याग करके एकतनुओं को गुरु बनाकर बिना परीक्षण के ही उनपर अंधश्रद्धा रखते हैं।

मठाधीशों के विषय में स्वयं श्री विष्णु भगवान् का क्या मत है, यह पांचरात्रों में देखें, क्योंकि सभी पांचरात्रों को उन्होंने ही कहा है।

पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्
(श्रीपाञ्चरात्ररक्षा)

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा यतिर्वा लक्षणैर्युतः।
स्थानाचार्यो भवेत्सत्यमिति (शास्त्रविनिश्चयः) शास्त्रेषु निश्चयः॥

स्थानाचार्य (मठ के अधिपति) के लिए ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा "लक्षणों से युक्त" संन्यासी का चयन करना चाहिए, यह सत्य है और शास्त्रों में सिद्ध है। (स्मरण रखें, लक्षणों से युक्त में, वेश नहीं, आचरण प्रधान है।)

यतिश्चेदुत्तमः प्रोक्तो गृहस्थुर्मध्यमस्मृतः।
अधमो ब्रह्मचारी स्यात् स्थानाचार्यविनिश्चये॥

स्थानाचार्य के लिए ब्रह्मचारी को अधम, गृहस्थ को मध्यम एवं संन्यासियों को उत्तम बताया गया है।

स्थानाधिपो यतिर्यदिस्यात्तन्निवेशार्धमादरात्। द्वितीयावरणेवापि तृतीयावरणेऽपि वा॥

यदि संन्यासी को मठाधीश बनाया जाना है, तो उसके अधिकारों को आधा ही रखे। उसे दूसरे या तीसरे आवरण में स्थान दे। (यहां भाव है कि चूंकि संन्यासी विरक्त प्रधान आचरण करेगा तो फिर मठ की व्यवस्था, प्रबंधन, आय-व्यय, गुरुकुल, अन्नक्षेत्र, उत्सव आदि की व्यवस्था में यदि उलझा रहे तो उसका संन्यस्त होना बाधित होगा। इसीलिए उसे मात्र शास्त्रीय मार्गदर्शक बनकर रहना चाहिए, शेष कार्यभार का कर्तव्य दो तीन स्तरों में अन्य लोग निभाएं। जैसे राष्ट्रपति देश का प्रमुख है, किन्तु सारा कार्यभार प्रधानमंत्री और विधायिका के हाथों में होता है। हालांकि राष्ट्रपति का महत्व कम नहीं होता, साथ ही कुछ गलत दिखने पर वह इन्हें निरस्त भी कर सकता है, ऐसी ही बात मठ, प्रबंधक और मठाधीशों के बारे में भी समझनी चाहिए।

मठमेकन्तु निर्माय दातव्यंकर्तुरिच्छया। मठस्यसांप्रदायेन मुख्यशिष्यो भवेद्गुरुः॥
(परमपुरुष संहिता, अध्याय ०२, श्लोक - ४८-५१)

धर्मसंबंधी उदार चरित्र (ज्ञानोपदेश) के निर्वाह हेतु एक मठ का निर्माण करे। मठ के सम्प्रदायोक्त विधानानुसार जो प्रधान शिष्य होता है, वही अगला गुरु बनता है। किन्तु यहां उल्टी ही धारा है। मठाधीश शास्त्रोन्मुखी** व्याख्या में लगे हैं और चेलों के दो समूह हैं। एक समूह खण्डन के नाम पर बिना शास्त्रीय प्रमाणों के, केवल अश्रद्धाजन्य आशंका और अज्ञान के कारण, बिना पूर्वापर कारणों एवं प्रसङ्गों पर विचार किये ही विवाद करता है और दूसरा दल केवल यह सिद्ध करने में लगा रहता है कि मैं वैष्णवाचार्यों का विरोधी हूँ।

बन्धु, मैं वैष्णवाचार्यों का नहीं, **तुम्हारा** विरोधी हूँ, क्योंकि वैष्णव का वेश बनाकर तुम जैसे लोग हम वैष्णवों की निंदा कर रहे हो। अब कोई व्यक्ति पुलिस की वर्दी अनधिकृत रूप से पहनकर घूमता रहे, लोगों पर कार्रवाई करता रहे और संविधान के आधार पर सप्रमाण, कोई वास्तविक पुलिस वाला उसके विरुद्ध कुछ कहे तो वह नकली व्यक्ति कहेगा कि तुम पुलिस के विरुद्ध जाकर सही नहीं कर रहे हो ? यह क्या प्रपञ्च चल रहा है ? मैं अपने वचनों के प्रमाण में अनेकानेक वैष्णव ग्रंथ, वैष्णवाचार्यों एवं स्वयं भगवान् विष्णु के ही वाक्य बता चुका हूँ। वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ, भगवान् शिव के वाक्य बता चुका हूँ।

**यहाँ शास्त्रोन्मुखी का तात्पर्य शास्त्र के प्रति ऊपरी दृष्टि रखना है। उत् मुख का अर्थ ऊपरी दृष्टि है। शास्त्रों की ओर देखते तो हैं, किन्तु ऊपरी भाव से देखते हैं, इसीलिए उसके गूढ़ भाव को न समझते हुए उसे प्रक्षिप्त कह देते हैं।

अब थोड़ा इनकी प्रामाणिकता पर शास्त्रवाक्य देखते हैं। सम्बन्धित विवाद में वैष्णव शब्द का अर्थ प्रधानता से श्री रामानंद सम्प्रदाय से लिया जाता है। रामानंद सम्प्रदाय क्या एक प्रामाणिक वैष्णव सम्प्रदाय है ? हां। बिल्कुल है। हालांकि इसमें तो किसी प्रकार का कोई सन्देह किसी को है ही नहीं, किन्तु प्रचलित प्रमाणों को तो सभी जानते हैं, इसीलिए मैं रहस्यमय अप्रचलित प्रमाण देता हूँ जिसे विशेष गुरुकृपा वाले ही जानते हैं।

वैष्णवे त्वष्टभेदाः स्युस्त्वादौ वैखानसः स्मृतः ॥
श्रीराधावल्लभो देवि गोकुलेशस्तृतीयकः ।
वृन्दाख्यस्तु चतुर्थः स्यात् पाञ्चरात्रस्तु पञ्चमम् ॥
वीरवैष्णवनामाख्यस्तदन्यः परिकीर्तितः ।
रामानन्दी हरिव्यासी निम्बार्कश्चाष्टमः स्मृतः ॥
(शक्तिसंगम तन्त्र, सुन्दरी खण्ड, प्रथम पटल, श्लोक - १८५-१८७)

वैष्णव सम्प्रदायों के आठ प्रधान प्रकार होते हैं। इनके नाम हैं, वैखानस, राधावल्लभ, गोकुलेश, वृन्दा, पांचरात्र, रामानंदी, हरिव्यासी और निम्बार्क। इसके अतिरिक्त एक वीरवैष्णव सम्प्रदाय भी होता है। (जैसे वीरशैव होते हैं, वैसे ही वीरवैष्णव भी होते हैं। गोकुलेश, वृन्दा आदि में ही गौड़ीय, वल्लभ, मध्वादि सभी इष्टस्वरूपभेद से आ जाएंगे)

वैखानस और पांचरात्रों में ही रामानंदीय एवं रामानुजीय श्रीवैष्णवादि की गणना हो जाएगी। हालांकि रामानन्द सम्प्रदाय का स्पष्ट नाम वैष्णवों के छठे प्रकार के रूप में आया है, साथ ही आराधना पद्धति से वे वैखानस मत से चलते हैं इसीलिए प्रथम प्रकार, वैखानस में भी वे ख्यापित हो सकते हैं। इसीलिए रामानंदीय लोग वैष्णवधर्म के प्रामाणिक अनुयायी तो हैं ही। किन्तु कुछ लोग अपने ही सम्प्रदायोक्त आचारों से भ्रष्ट होकर दम्भ के कारण धर्महानि करते हैं, मैं उनके विरोध में खड़ा हूँ। शास्त्रों में श्रेष्ठ वैष्णवों के जो लक्षण बताए हैं, वह तो सर्वविदित हैं ही। किन्तु जो लक्षण दम्भ और छद्मवेशी वैष्णवों के बताए गये हैं, जिससे उनका नकली होना सिद्ध होता है, हम उसकी चर्चा करेंगे। चूंकि ये लोग वैखानस मत वाले हैं तो पहले उसका ही प्रमाण देखें -

श्रुतिस्मृती उभे तस्य परमाज्ञां वदन्ति हि।
(वैखानसीय भृगु संहिता, अध्याय - ३४, श्लोकार्द्ध - १६)

वेद और स्मृति को उनकी (नारायण की) आज्ञा कहते हैं।

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्तामुल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥
(वैखानस गृह्यसूत्र)

भगवान् विष्णु कहते हैं, वेद एवं स्मृति दोनों मेरी आज्ञा हैं, जो उनका उल्लंघन करके व्यवहार करता है, वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने से मेरा द्रोही है। वह कितनी भी भक्ति कर ले, मैं उसे वैष्णव नहीं मानता।

इतना ही नहीं, श्रुति और स्मृति, भगवान् विष्णु से तात्त्विक अभेद रखने वाले भगवान् शिव की भी आज्ञा हैं, इसीलिए इनके पालन का कर्तव्य केवल वैष्णव ही नहीं, सभी सम्प्रदायों के लिए आवश्यक है।

पातित्यं जायतेऽस्माकं श्रुतिस्मृतिविगर्हितम्।

श्रुतिस्मृती हि रुद्रस्य यस्मादाज्ञाद्वयं महत् ॥
कस्तदुल्लंघयेन्मूढः प्राणैः कंठगतैरपि ॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड, अध्याय - २४, श्लोक - ८६-८७)

ऋषिगण कहते हैं - वेद और स्मृति के विरुद्ध जाने पर हमलोग पतित हो जाएं। वेद और स्मृति, दोनों शिव जी की महान् आज्ञा है। कौन मूर्ख होगा जो मृत्यु के भय से भी इनका उल्लंघन करेगा ?

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्। एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ११, प्रथम अध्याय, श्लोक - २१)

भगवान् नारायण कहते हैं - वेद और स्मृति नेत्र हैं, तथा पुराण हृदय है। इन तीनों में जो बताया गया है, वही धर्म है, अन्यत्र वर्णित को धर्म नहीं कहा गया है (यदि वे इन तीनों से विरोध करें तो..)

वेदव्यास जी ने जैमिनी को वैष्णवों के लक्षण बताते हुए कहा है -
ये पुराणकथां श्रुत्वा निन्दन्त्युपहसन्ति वै। तेषां करस्था नरका बहुक्लेशकराः सदा॥
(पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड, प्रथम अध्याय, श्लोक ११)

जो लोग पुराणों की कथा बताने पर, उसकी निंदा या उपहास करते हैं, वे बहुत कष्टदायी नरकों को मानो जानबूझकर ग्रहण करना चाहते हैं।

विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः। महादेवार्चनरतो वैष्णवः पङ्क्तिपावनः ॥
(कूर्मपुराण, उत्तरभाग, अध्याय २१, श्लोक - ०९)

जो श्रेष्ठ ब्राह्मण आसक्ति से मुक्त हो, धैर्यवान् हो, "महादेव की पूजा करता हो" ऐसा वैष्णव जहां बैठता है, वहां पूरी पंक्ति को पवित्र कर देता है।

विष्णु भगवान् कहाँ रहते हैं इसपर भेदवादी जन बहुत विवाद करते हैं, कोई कहता कि अमुक लोक में अमुक तीर्थ में ... आदि आदि ... किन्तु तत्त्वदर्शी जन क्या कहते हैं ?

शिवं देहगतो विष्णुः
(एकाम्र पुराण)

भगवान् विष्णु तो शिव जी के अंदर रहते हैं।

गणेश जन्मोत्सव में परशुरामजी भी आये थे, उन्हें भी देवी पार्वती ने बड़े ही प्रेम से पुत्रवत् स्नेह किया। इस घटना को देखकर वहां गोलोक से पधारी हुई श्रीराधिका जी ने कितनी सुंदर बात कही है -

त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः।
गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः॥
एतयोरावयोः प्रभवोश्चापि भेदो न दृश्यते।
(ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग, अध्याय - ४२, श्लोक - ४८-५१)

राधा जी ने देवी पार्वती को कहा - हे देवि ! मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं है। आप विष्णु हैं और मैं शिव हूँ। शिव जी के हृदय में विष्णु जी, आपके (पार्वती) रूप से निवास करते हैं एवं मेरा (राधा) का रूप धारण करके शिव जी, विष्णु भगवान् के हृदय में निवास करते हैं। ये राम (परशुरामजी) वैष्णव होकर आज शैवत्व को प्राप्त कर गए हैं एवं शिवात्मज गणेश जी वैष्णवत्व में प्रतिष्ठित हो गये हैं। इन दोनों में भी हमलोगों की ही भांति कोई भेद नहीं दिखता है।

महाभागवत आदि में शिव जी के किसी कल्प में राधिकावतार का वर्णन है। याज्ञवल्क्य जी के पास जब भरद्वाज जी रामरहस्य समझने गए तो याज्ञवल्क्य जी ने उन्हें पहले शिव जी का चरित्र सुनाकर उनकी योग्यता की परीक्षा ली, क्योंकि शिवद्रोही कभी भी रामभक्त हो ही नहीं सकता। धूर्तजन हमें कहते हैं कि मेरा पक्ष गलत है। मैं अपनी वेदनिष्ठा एवं देवताओं में अभेदबुद्धि सिद्ध कर चुका हूँ। यह बुद्धि हरिहरब्रह्म एवं गुरुजनों की कृपा, वास्तविक वैष्णवों के आशीर्वाद के बिना सम्भव नहीं है, इसीलिए मुझे छद्म वैष्णवों के द्वारा की जा रही भर्त्सना की कोई चिंता नहीं है। क्योंकि भगवान् शेष जी ने वात्स्यायन ऋषि को रामायण सुनाते हुए शत्रुघ्न शिक्षा प्रकरण में उस समय का एक प्रासंगिक देववाक्य कहा है -

येषां वेदाः प्रियतमा न च संसारजं सुखम्।
स्वधर्मनिरता ये च तान्नमस्कुर्विहान्वितान्॥
शिवे विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः।
तेषां पादरजः पूतं वहाम्यघविनाशनम्॥
गौरी गङ्गा महालक्ष्मीर्यस्य नास्ति पृथक्तया।
ते मन्तव्या नराः सर्वे स्वर्गलोकादिहागताः॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय १०, श्लोक – ६८-७०)

जो लोग वेदों को सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं, जो लोग संसार के सुख की परवाह छोड़कर अपने धर्म के पालन में तत्पर रहते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। जो लोग शिव एवं विष्णु में अथवा ब्रह्मा एवं शिव में भेद नहीं देखते, उनका चरणरज पवित्र होता है, पापनाशक होता है, जिसे मैं धारण करता हूँ। जिनकी दृष्टि में गंगा, गौरी एवं महालक्ष्मी में कोई भेद नहीं है, वे लोग स्वर्गलोक से ही अवतरित हुए हैं, ऐसा समझना चाहिए।

जब दिव्यावतार ऐसा कहते हैं तो फिर मैं जब वेदनिष्ठा, स्वधर्मपालन, अभेदबुद्धि आदि का परिचय देते हुए शास्त्रीय प्रमाणों को रखता हूँ तो वेदों को, उपनिषदों को अप्रामाणिक कहने वाले, पुराणों में अपनी कुबुद्धिजन्य विसंगतियों के कारण आक्षेप करने वाले और देवताओं में भेददर्शन करने वाले लोग किस अधिकार से हमें गलत कहते हैं, अथवा किस आधार पर उन्हें वैष्णव एवं हमें वैष्णवद्रोही माना जाय ?

वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेत्पश्चात्तु वैष्णवः॥
(नारद पुराण - उत्तरार्द्ध, अध्याय - ५८, श्लोकार्द्ध - ०८)

पहले वेद और शास्त्र के अर्थ को जानने के बाद ही ब्राह्मण वैष्णव बनता है। यहां तो वेद शास्त्रों के वचन ही प्रक्षिप्त बताने वाले लोग स्वयं को वैष्णव घोषित करके घूम रहे हैं।

पुराणेषु रता नित्यं यज्ञेषु चरताः सदा। ते नरा वैष्णवा ज्ञेयाः सर्वधर्मेषु सम्मताः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - ८२, श्लोक - ०७)

जो स्वयं पुराणों के अध्ययन, चिंतन, पालन आदि में लगे रहते हैं, यज्ञादि का आचरण करते हैं, उन्हें ही सभी धर्मों के द्वारा समर्थित वैष्णव जानना चाहिये। ऐसी ही मर्यादा शैवों के लिए भी है।

यथा विष्णुस्तथा शर्वो नान्तरं वर्त्तते क्वचित्।
एवं ज्ञात्वा तु भो देवि ह्युभयोर्मूर्तिकल्पनम्॥
शिवपूजां प्रकुर्वाणो विष्णुनिंदासु तत्परः। रौरवेषु नरकेषु वसते नात्र संशयः॥
अहं विष्णुरहं रुद्रो ह्यहं ब्रह्मा पितामहः। सर्वभूतेषु सततं संवसामि पुनः पुनः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - ८२, श्लोक - २८-३०)

शिव जी कहते हैं - हे देवि ! जैसे विष्णु हैं, वैसे ही शिव भी हैं। दोनों में कोई अंतर नहीं है। ऐसा समझकर ही दोनों के स्वरूप का चिंतन करना चाहिए। जो व्यक्ति शिव जी की पूजा तो करता है, किन्तु विष्णु निंदा करता है, उसे रौरव नरक में वास करना पड़ता है। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ, मैं ही पितामह ब्रह्मा हूँ। सभी प्राणियों में मैं ही व्याप्त हूँ। आज कल के स्वघोषित वेशनाममात्रधारी वैष्णवों को मैं किसी निजी द्वेष के कारण पाखण्डी नहीं कह रहा हूँ, अपितु मैं तो बस धर्म के ही निर्णय को प्रस्तुत कर रहा हूँ -

श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं यो न सेवेत वैष्णवः। स च पाखण्डमापन्नो रौरवे नरके वसेत्॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २५३, श्लोक - ३६)

वेद एवं स्मृति में वर्णित आचारों का जो वैष्णव पालन नहीं करता है, वह पाखण्ड से युक्त समझा जाना चाहिए, तथा उसे रौरव नरक में वास करना पड़ता है। यहां तो कई लोग वेदोक्त संन्यासाधिकार को भी नहीं मानते हैं, उल्टे उनकी प्रामाणिकता पर ही प्रश्न करते हैं, साथ ही वेदों और शास्त्रों में संशय का स्थान नहीं, ऐसे स्मृतिवाक्य का उल्लंघन करते हुए पुराणादि में शंका करते हैं और फिर स्वयं को वैष्णव भी कहते हैं।

एक तो पहले से सनातन धर्म के ग्रंथों पर क्रूर प्रहार होता आ रहा है, ऊपर से ये नये पीठाधीश्वर लोग, इन्हें जब बातें समझ नहीं आती तो उन बातों को ही नाटकीय प्रस्तुति के माध्यम से रोते-गाते हुए प्रक्षिप्त घोषित कर देते हैं। मूल ग्रंथों की ही हत्या कर दी है और शास्त्रों के नाम उन लोगों को मूर्ख बनाने का कार्य करते हैं, जो शास्त्र के गूढ़ अध्ययन से दूर हैं। इनके लिए ही शाक्तानंद तरंगिणी में स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती कौलाचार्य, शिव जी के निम्न वचन को लिखते हैं :-

कलौ च भारते देवि! निंदका बहवो जनाः।
शिवनिंदापराः केचिद् विष्णुनिंदापराः परे॥
सर्वेषां देवतानां च देवीनां च तथैव च। सततं कुर्वते निन्दां नात्र कुर्युः विचारणाम्॥

हे देवि ! कलिकाल में भारत के अधिकतर लोग निंदापरायण होते हैं। कोई शिव निंदा में तत्पर है तो कोई विष्णु निंदा में। कोई कोई तो समस्त देवता एवं देवियों की ही सर्वदा निंदा में तत्पर हैं, इस विषय में कोई विचार नहीं करता।

आत्मानं वैष्णवं मत्वा अधमा भारते कलौ। कर्णे कण्ठे तथा हस्ते हृदये नगनन्दिनि॥
विधृत्य तुलसीमालां तिलकं हरिमंदिरम्। गृह्णीयुर्हरिनामानि सुस्वराणि गृहे गृहे॥
अन्नस्य सञ्चयं कुर्युः पाखण्डा मानवाधमाः।
तेषां पापं महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते॥
(महिषमर्दिनीतन्त्र)

कलियुग में भारत के अधम व्यक्ति स्वयं को वैष्णव मानकर कान, कण्ठ, हाथ तथा हृदय में तुलसीमाला, श्रीतिलक आदि चिह्न धारण करके घर घर मात्र उदरपूर्ति के लिए भगवान का नाम गाते हुए घूमेंगे। हे महेशानि ! मैं उन लोगों के पापों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ।

जो रक्षात्मक शासन करे, वह शास्त्र है। शासन शोषण या स्वार्थ का आधार न हो एवं रक्षा के क्रियान्वयन हेतु कर्तव्यविमुखता अथवा कार्पण्यदोष का अवलंबन न लेना पड़े, इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए जो आचार का मार्ग प्रशस्त करे, वह शास्त्र है। जिनके नेताओं से अच्छे संबंध हैं और बहुत सी सुविधा मिली हुई है, ऐसे कथित वैष्णवाचार्य यह भूल गये हैं कि,

जीवो रहस्येव विधाय पापं न निष्कृतिं प्रैति हि विश्वमूर्तेः।
सदात्मरूपोऽन्तरतो हि शश्वत् पापञ्च पश्यत्यथ पुण्यकृत्यम्॥
(सनत्कुमार पुराण, अध्याय – ०१, श्लोक – ०३)

यदि मनुष्य छिपकर भी पाप कर ले तो विश्वमूर्ति ईश्वर से निष्कृति प्राप्त नहीं करता है क्योंकि वह आत्मरूप अंतःकरण में स्थित होकर निरन्तर पाप और पुण्यों को देखता है। भगवान् की वैष्णवी भक्ति कैसे प्राप्त होती है, इस विषय में कहते हैं -

ये तु वै विष्णुभक्ताश्च शङ्करार्चनतत्पराः॥
शिवप्रसादात्सुलभा वैष्णवी भक्तिरुत्तमा। वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम्॥

कर्मभूम्यां समागम्य न पूजयति नारकः।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड, अध्याय - ०४, श्लोक – ४३-४४)

जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के प्रति भक्तिभाव रखकर शिवजी की पूजा करता है, उसे शिवकृपा से अत्यंत उत्तम वैष्णवी भक्ति मिलती है। जो इस कर्मभूमि में वैष्णव होकर भी लोककल्याणकारी भगवान् शंकर की पूजा नहीं करता है, उसे नारकीय समझना चाहिए।

इस प्रकार से शिवावतार श्रीशंकराचार्य जी के प्रति, उनके गूढ़ एवं कल्याणकारी वचनों का पूर्वापर प्रसङ्ग समझे बिना ही, आचार्यनिन्दा करने वाले स्वघोषित ज्ञानीजन, आनन्द रामायण एवं अध्यात्म रामायण में श्रीराम कथानक सम्बन्धी शिववाक्य पर आक्षेप करने वाले तथा उपनिषदों को अप्रामाणिक कहने वाले वेदः शिवः शिवो वेदः के अनुसार शिवद्रोही ही हैं। ऐसे लोगों को तो धर्मशास्त्र ही वैष्णव नहीं मानते हैं, फिर हम कैसे मान लें ? पद्मपुरस्कार तो वैष्णवता का परिचायक है ही नहीं।

अब मैं यदि फिर कुछ कहूंगा तो धूर्त लोग और भी आक्षेप करेंगे। इसीलिए अब मैं श्रीरामानंद सम्प्रदाय के अत्यंत प्राचीन सप्तम आचार्य, सर्ववेदशास्त्रविशारद, श्री वेदव्यास जी के मुख से कलियुग के नकली वैष्णवों के लक्षण उल्लिखित करवा रहा हूँ, ताकि पक्षपात की बात ही समाप्त हो जाये। केवल लक्षण और भविष्यवाणी मिलाते जाईएगा, वेदव्यास जी ने स्वयं यह सब जाबालि के प्रति कहा है।

अदृष्टा शास्त्रकथनं ब्रह्महत्यैव गीयते। देवानां भेदनिन्दे च देवतावध उच्यते॥
आत्महत्या हि सा प्रोक्ता जाबाले नात्र संशयः॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २०, श्लोक - ०६)

जो व्यक्ति बिना शास्त्रों को ठीक से देखे ही उनके विषय में कथन दे देता है, उसके पाप को ब्रह्महत्या के समान समझना चाहिए। देवताओं में भेद देखने वाले एवं उनकी निंदा करने वाले को देवतावध का पाप लगता है, जो आत्महत्या के ही समान है "इसमें संशय नहीं है"।

शास्त्रार्थमन्यथा यस्तु व्याख्यायति सुमन्दधीः।
स चापि ब्रह्महत्यायाः पातकी परिगीयते॥

यः पुराणेषु चार्थेषु स्वयं श्लोकादि कल्पयेत्।
स चापि ब्रह्महत्यायाः पातकी परिगीयते॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय २०, श्लोक - ९-१०)

जो शास्त्रों का मनमाना अर्थ लगाता है और जो मूर्ख ऐसा ही व्याख्यान देता है, उसे भी ब्रह्महत्यारे के समान पातकी जानना चाहिए। जो पुराणों के अर्थों में अपनी कल्पना से ही श्लोकों को बताता है, (अथवा श्लोकों को ही काल्पनिक बताता है) उसे भी ब्रह्महत्या का ही दोषी बताया गया है। ये सब बातें वेदव्यास जी ने बृहद्धर्म पुराण में कही हैं जिसका माहात्म्य वैसा ही है जैसा महापुराण के मध्य श्रीमद्भागवत का है।

महापुराणे सर्वस्मिन् श्रीमद्भागवतं यथा। तथा ह्युपपुराणेषु इदमेव कृतं मया॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २०, श्लोक - २०)

बृहद्धर्म उपपुराण के वाक्य वैष्णव, शाक्त, शैव आदि सबों के लिए मान्य हैं तथा जो निंदक हो, अश्रद्धालु हो एवं देवताओं में भेदभावपूर्ण बुद्धि रखता हो उसे तो इस महान् एवं पवित्र पुराण के पठन या श्रवण का अधिकार तक नहीं है।

इदं हि वैष्णवं शास्त्रं शैवं शाक्तं तथैव च।
.....
अयं ह्युपपुराणैकः श्रीमद्भागवतं यथा॥
.....
अशुश्रूयमभक्तं च देवभेदकरं तथा।
न श्रावयेदिदं शास्त्रं परमज्ञानदायकम्॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २१, श्लोक - ०५-०७)

अब श्रीवेदव्यास कलियुगी धर्मगुरुओं के लक्षण के विषय में कहते हैं -

कल्पयिष्यन्ति शास्त्राणि स्वबुध्या देवता अपि।
त्यक्ष्यन्ति धर्मशास्त्राणि निंदयिष्यन्ति तान्यपि॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय १९, श्लोक - १३)

'अपने मन से शास्त्रों एवं देवताओं की कल्पना करके व्याख्या करेंगे। मान्य धर्मशास्त्रों को

छोड़कर, उनकी निंदा भी करेंगे।' रामाधार शर्मा जी के वाक्य तो स्मरण ही होंगे सबको - "इतनी सारी विसंगतियाँ ही शम्बूक वध कथानक को अनर्गल प्रलाप सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं"। वायु के अंश से हनुमानजी के तृतीयावतार श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने जिसका बात का स्पष्ट प्रमाण देते हुए निर्णय लिखा था, उस बात को बिना समुचित शास्त्र चिंतन किये, बस आशंका और अश्रद्धा के कारण ये लोग अनर्गल प्रलाप की संज्ञा दे रहे हैं। अब वेदव्यास जी किसी संदेह का कोई स्थान ही न छोडते हुए नकली, पाखण्डी वैष्णवों के लक्षण स्पष्ट बताते हुए कहते हैं -

अन्तःशठा महाक्रूरा परद्रव्याभिलिप्सवः। भ्रमन्ते वैष्णवैर्वेशधारयिष्यन्त्यसज्जनान्॥
पुराणार्थविदां साधुशीलानाञ्च द्विजन्मनाम्। देवताद्वेषकास्ते वै द्वेषयिष्यन्ति सर्वदा॥
(बृहद्धर्म उपपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय १९, श्लोक - १७-१९)

अंदर से शठबुद्धि वाले, अत्यंत क्रूर स्वभाव वाले, तथा दूसरे के धन के अपहरण की इच्छा रखने वाले लोग, केवल वैष्णव वेश धारण करके और अयोग्य लोगों को वैष्णव वेश धारण करा कर भ्रमण किया करेंगे।

(इसके आगे के श्लोक का अर्थ ध्यान से पढ़ें)

जो ब्राह्मण पुराणों के अर्थ को जानने वाले होंगे, अच्छा और शीलयुक्त आचरण करने वाले होंगे, उन लोगों से, तथा देवताओं से भी ये लोग द्वेष करेंगे। साथ ही,

अन्य वर्णाश्रमेश्चिह्नरन्येऽधिष्यन्ति लोभिनः।
(बृहद्धर्म पुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय १९, श्लोकार्द्ध - ४१)

बिना शास्त्रोक्त अधिकार के ही अन्य वर्ण या आश्रम के चिह्न को (प्रतिष्ठा आदि के) लोभ से धारण कर लेंगे।

हमारे पास आप शास्त्र प्रमाण के आधार पर वक्तव्य देते हुए, आचरण करते हुए आएंगे तो हम अवश्य ही आपको दण्डवत् करेंगे, किन्तु यदि इसके विपरीत मार्ग का आश्रय लेकर आएंगे तो पूरी क्षमता से प्रतिकार होगा। संन्यासाधिकार है नहीं, ऊपर से आतुर संन्यास भी नहीं लिया, किसी प्रकार से जोड़ तोड़ करके दण्डी संन्यासी बन गए तो फिर विदेशगमन करके दण्ड भी भ्रष्ट कर लिया। इतने के बाद भी स्पष्ट शास्त्र एवं आचार्य वाक्यों की उपेक्षा एवं निंदा करते हुए शास्त्रविमुख वार्ता करने लगे, फिर भी यदि लोग

ऐसे व्यक्तियों को जगत् का छोड़िए, अपना भी गुरु, संन्यासी, यहां तक कि सामान्य कथावाचक या वैष्णव धर्म का सदस्य तक मानते हैं तो उनकी अज्ञानता है। आरूढ़पतित का सभी प्रकार से सम्प्रदायोक्त मठ एवं कार्यों से बहिष्कार का आदेश स्वयं श्री रामानन्दाचार्य जी ही देते हैं।

उपर्युक्त सभी शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध होती है कि छद्म वैष्णवों का मैं विरोधी हूँ क्योंकि वे स्वयं ही वैष्णव धर्म के विरोधी हैं। मैं तो स्वयं ही वैष्णव धर्म का अनुयायी हूँ अतएव विष्णुरूप शास्त्रनिष्ठ वाक्यों पर निष्ठा रखते हुए कभी उनपर प्रहार नहीं करता। मैंने अपने पक्ष के समर्थन में, एक एक वचन के पीछे, पुष्ट शास्त्रीय वाक्यों का सम्बल प्रदान किया है किंतु विपक्षी दल ने केवल अपनी आशंका एवं कुतर्क के आधार पर बिना कोई ठोस प्रमाण दिए केवल काल्पनिक संभावनाओं की चर्चा करते हुए मेरे खंडन का निरर्थक प्रयास किया है।

आखिर क्या कारण है कि यह लोग शास्त्रीय वाक्यों पर तो बहुत आसानी से प्रश्न लगा देते हैं, सीधे सीधे रामजी की न्यायशीलता पर भी प्रश्नचिन्ह खड़े कर देते हैं, आचार्यसिद्ध प्रसङ्गों को "अनर्गल प्रलाप" की संज्ञा देते हैं किंतु स्पष्ट रूप से शास्त्रीय बातों की अवहेलना करने वाले कथित वैष्णवों को ये लोग सर्वथा प्रामाणिक एवं सत्यवक्ता सिद्ध करने के पीछे पूरी तत्परता से लग जाते हैं। इन लोगों की तो भौतिक अवस्था मुझसे बहुत अधिक है, साथ ही ये लोग गुरुजनों एवं शास्त्रों की संगति का हमसे बहुत अधिक अवसर प्राप्त किए होंगे, किंतु क्या कारण है कि यह लोग उन्हें शास्त्रों में फंसकर, आशंका ग्रस्त होकर, उहापोह से व्यथित रहते हैं और हमारी बुद्धि इस २३ वर्ष के शरीर में रहते हुए भी कभी शंकित या भ्रमित नहीं होती।

इसमें मेरा कुछ बल नहीं है। बलं मे महद्भाष्यकारानुबन्धः। इसका एकमात्र कारण है कि मैं शास्त्रों के प्रति एवं पूर्वाचार्यों के प्रति अगाध श्रद्धा रखता हूँ, किंतु यह लोग अश्रद्धापूर्वक शास्त्र को पढ़ते हैं इसीलिए शास्त्र अपने रहस्यों का प्रकाशन इनके समक्ष नहीं करते एवं न ही इनकी बुद्धि उन विषयों को ग्रहण कर पाती है। अन्यथा आप शास्त्रों के पास श्रद्धा से युक्त होकर जाएं और फिर भी संशय रहे, यह सम्भव ही नहीं।

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥

लेकिन इन्हें रामकथा में ही संशय हो जाता है। हो भी क्यों न, गरुड़ जी, देवी सती, वात्स्यायन, भरद्वाज, भुशुण्डि जी आदि भी भ्रमित होकर रामजी के ही ऊपर संदेह करने लगे थे, किंतु श्रद्धा से युक्त थे, तो भगवान् ने कृपा करके उनका सन्देह नानाविध उपायों से दूर किया। श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् ... किन्तु

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ०४, श्लोक - ४०)

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १८, श्लोक - ३२)

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि जो मूर्ख है, अश्रद्धालु है और संशयात्मा है, उसको कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, वह कल्याण का भागी ही नहीं होता और उसका नाश हो जाता है। साथ ही यह भी कहा कि अधर्म को ही जो धर्म मान बैठे और सब कुछ उल्टा ही करें, ऐसे व्यक्ति की बुद्धि तामसी हो गई है, ऐसा समझना चाहिए।

मैं पहले ही पर्याप्त से बहुत अधिक लेखन कर चुका हूं, प्रमाणों से अपने मत का पोषण कर चुका हूं। बिना शास्त्र के संपूर्ण और श्रद्धायुक्त अध्ययन के, यह लोग जिस भांति के कुतर्क हमारे प्रमाण के खंडन के नाम पर करते हैं, वे समझ लें कि मेरे लेखों का उद्देश्य किसी व्यक्ति का अपमान या उपहास करना कदापि नहीं है, मैं केवल आचरण और वक्तव्य की समीक्षा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर कर रहा हूँ, एवं केवल शास्त्रीय मर्यादा की प्रतिष्ठा ही मेरा एकमात्र स्वार्थ है।

रामो विग्रहवान् धर्मः

| इति शम् |

अष्टम भाग

श्री रामाधार शर्मा (एवं इस प्रसङ्ग के कुछ स्वतन्त्र पाठकों) का आक्षेप

श्रीरामचन्द्र जी स्वयं भगवान् हैं। उत्तरकाण्ड में अगस्त्य जी ने उन्हें रावण का वृतान्त सुनाया है। हम सभी रामकथा सुनते हैं, न कि रावणकथा। फिर स्वयं रामजी को रावण की कथा सुनने की आवश्यकता क्यों पड़ गयी ? उत्तरकाण्ड का यह प्रसंग भी असंगत प्रतीत होता है।

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शङ्क्यतमः प्रजानां न नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात् ॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग – १०९, श्लोक – ३४)

उपर्युक्त श्लोक में बुद्ध शब्द आया है। बुद्ध का काल श्रीराम जी के बहुत बाद का है। यहाँ चोर और बुद्ध को समान मानकर दण्डित करने का अर्थ निकलता है, जो असंगत प्रतीत होता है। भारत में उपलब्ध अनेकों भाषाओं की प्राचीन पांडुलिपियों में कहीं कहीं 'बुद्ध' शब्द आया है और कहीं कहीं 'लुब्ध' शब्द है। लुब्ध शब्द की संगति चोर शब्द के साथ बन भी जाती है और तथागत का अर्थ *भली प्रकार से आया हुआ* भी होता है, अतः कालक्रम तथा अर्थक्रम की दृष्टि से इस श्लोक में बुद्ध नहीं, लुब्ध ही होना चाहिये। इससे यह भी सिद्ध होता है कि रामायण में शब्दों को प्रक्षिप्त किया गया है।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

श्रीराम जी ने रावण की कथा नहीं सुनी है। जैसे हम भगवान् की प्रीति अथवा सकाम उद्देश्य से दिन-मुहूर्त का विचार करके ब्राह्मणों को बुलाकर कर्मकाण्ड आदि की विधि के बाद संकल्पपूर्वक कथा का श्रवण करते हैं, उस प्रकार से श्रीराम जी ने रावण की कथा का श्रवण नहीं किया है। अगस्त्य ऋषि ने उन्हें बस रावण आदि का पूर्ववृत्तान्त सुनाया है

जिससे समाज को रावण वध की आवश्यकता और उस कार्य की दुष्करता का बोध हो सके। किसी महान् कार्य के घटित होने पर हम सभी उसकी आवश्यकता एवं कठिनता पर चर्चा करते ही हैं। युधिष्ठिर के राजसूय दिग्विजय अथवा शिशुपाल वध के समय श्रीकृष्ण भगवान् ने भी जरासन्ध तथा शिशुपाल के पूर्ववृत्तांत का वर्णन किया है। अगस्त्य मुनि का संवाद प्रक्षिप्त भी नहीं है क्योंकि अग्निपुराण में संक्षिप्त सांकेतिक भाव से रामायण के उत्तरकाण्ड सहित सातों काण्डों की कथावस्तु का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें अगस्त्य जी के द्वारा इस वृत्तान्त के कथन का भी उल्लेख है।

राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः।
धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः॥
(अग्निपुराण, अध्याय – ११, श्लोक - ०१)

अब हम बुद्धावतार की बात करते हैं। यह प्रसंग यद्यपि मूल विषय से थोडा भिन्न है और विवादित भी, किन्तु मैं पाठकों के लाभार्थ अवश्य ही कहूँगा। श्लोक में केवल चोर ही नहीं है, बुद्ध के अतिरिक्त तथागत एवं नास्तिक शब्द भी आये हैं। तथागत एवं नास्तिक शब्द की पूरी संगति बुद्ध शब्द के साथ बन जाती है। मैं जैसा कि कह चुका हूँ कि कई कल्पों में कई वाल्मीकि हुए, कई बार रामायण को ऋषियों ने लिखा है तो लुब्ध या बुद्ध दोनों शब्द मेरे मत से पाठभेद के अन्तर्गत ग्राह्य हैं। जो लोग यह कहते हैं कि बुद्ध परवर्ती थे अतः निश्चय ही रामायण में यह शब्द बाद में प्रक्षिप्त कर दिया गया, उन्हें मैं यही कहूँगा कि आपने निश्चय ही बौद्ध दर्शन अथवा बुद्धों की परम्परा का विस्तार से अध्ययन नहीं किया है। वाल्मीकीय रामायण में यह कहीं नहीं लिखा है कि वहां शुद्धोदन के पुत्र गौतम बुद्ध का वर्णन है। रावण के समय भी बौद्ध दर्शन एवं उसके उपदेष्टा अन्य बुद्ध थे, ऐसा बौद्धों के ही ग्रन्थ कहते हैं।

अश्रौषीद्रावणो राक्षसाधिपतिस्तथागताधिष्ठानात् ...
स्थितमात्रस्य बुद्धस्य रावणो ह्यप्सरैः सह। यक्षैश्च नानाविविधैः शुकसारणमण्डितैः॥
ऋद्ध्या गत्वा तमध्वानं यत्र तिष्ठति नायकः।
अवतीर्य पौष्पकाद्यानाद्वन्द्य पूज्य तथागतम्॥
नाम संश्रावयँस्तस्मै जिनेन्द्रेण अधिष्ठितः। रावणोऽहं दशग्रीवो राक्षसेन्द्र इहागतः॥
अनुगृह्णाहि मे लङ्कां ये चान्ये पुरवासिनः।
(सद्धर्मलङ्कावतारसूत्र, रावणाध्येषणा)

तथागत के आगमन एवं स्थान के विषय में राक्षसों के स्वामी रावण ने सुना तो वह शुक-सारण एवं नाना प्रकार के यक्ष-अप्सराओं के साथ समृद्धि को लिए हुए जहाँ बौद्धों के नायक बुद्ध उपस्थित थे, वहां गया। पुष्पक विमान से उतर कर उसने तथागत की पूजा करके अपना परिचय दिया और कहा - मैं राक्षसों का राजा, दस ग्रीवाओं वाला रावण हूँ, आप मेरे पुरवासियों तथा लंका को अनुगृहीत करें।

उसके बाद बुद्ध के द्वारा लंका की अशोकवाटिका में उपदेश करने का वर्णन है। हम सभी जानते हैं कि रावण के पिता एवं पितामह आदि सभी उच्च आचरण वाले वेदज्ञ थे। रावण ने स्वयं भी तपस्या एवं धर्माचरण के द्वारा ही दिव्य शक्ति एवं संपदाओं को प्राप्त किया था, जिससे उसका अभूतपूर्व उत्कर्ष भी हुआ। फिर अचानक ऐसा क्या हुआ कि उसकी बुद्धि मोहित हो गयी ? रावण वेद, यज्ञ एवं सनातनी व्यवस्था के विरुद्ध हो गया ? अवश्य ही उसे किसी ने भ्रमित किया था।

जब भी बुद्धावतार होता है, उसका उद्देश्य ही यही होता है कि राक्षसों को मोहित करके उन्हें वेदविरुद्ध आचरण की ओर प्रेरित करके उनकी अवनति करायी जाये - सम्मोहाय सुरद्विषाम्। वेदसम्मत आचरण से जिस रावण ने त्रैलोक्यविजय किया था, वही रावण वेदविरुद्ध आचरण में प्रवृत्त होकर अपना सर्वनाश कर बैठा। रावण के व्यवहार और उसके परिणाम में ऐसा परिवर्तन, बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के द्वारा रावण को (मायामय) उपदेश का वर्णन तथा वाल्मीकीय रामायण में बुद्ध, तथागत, नास्तिक आदि शब्दों की उपस्थिति इन तीनों बातों में अवश्य ही संगति स्थापित करती है।

बुद्धावतार के विषय में कुछ धारणाएं निम्न हैं –

१) सनातनी मानते हैं कि बुद्ध भगवान् विष्णु के अवतार हैं।
२) नवबौद्ध मानते हैं कि बुद्ध स्वतन्त्र हैं, किसी के अवतार नहीं।
३) कुछ सनातनी मानते हैं कि गौतम ही एकमात्र बुद्ध हैं और उन्होंने ही बौद्ध धर्म चलाया।
४) कुछ अधिक अध्ययन करने वाले सनातनी मानते हैं कि नहीं, गौतम से पूर्ववर्ती अजिनपुत्र बुद्ध भी थे और वही भगवान् विष्णु के अवतार हैं।
५) कुछ लोग मानते हैं कि गौतम बुद्ध, अजिनपुत्र महात्मा काश्यप बुद्ध, ये सभी भगवान् विष्णु के ही अवतार हैं एवं बुद्ध अनेकों हुए हैं और आगे भी होंगे।

मैं शास्त्र प्रमाण और परम्परा के आधार पर यह मानता हूँ कि आस्तिक एवं नास्तिक दर्शन दोनों साथ साथ ही आये हैं। नास्तिक दर्शन के प्रसार हेतु समय समय पर बुद्धों का अवतार होता आया है एवं ब्राह्मण महात्मा बुद्ध तथा क्षत्रिय गौतम बुद्ध, दोनों ही भगवान् विष्णु के अवतार हैं। अब पुनः लोग कहेंगे कि आपके वचन का श्रीकरपात्री स्वामी आदि के वचनों से विरोध हो रहा है, तो मैं यही कहूंगा कि इस लेख को ध्यान से समझते हुए पढ़ें तो आपको मेरे कथन का पूर्ण बोध हो जाएगा।

बहुतायत से ऐसे लोगों की संख्या विश्व में व्याप्त है जो बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार मानते हैं। वहीं कई ऐसे लोग हैं जो बुद्ध को भगवान का अवतार स्वीकार ही नहीं करते। अस्तु, प्रथम तो हम बुद्ध शब्द पर ध्यान देते हैं। बुद्ध का शाब्दिक अर्थ है, जागृत होना, सतर्क होना तथा जितेन्द्रिय होना। वस्तुतः बुद्ध एक व्यक्तिविशेष का परिचायक न होकर स्थितिविशेष का परिचायक है। वर्तमान समय में बुद्ध शब्द का व्यापक प्रयोग राजकुमार सिद्धार्थ के विरक्त रूप के लिए किया जाता है। हमारे ग्रन्थ तथा ऋषियों ने इस सन्दर्भ में क्या कहा है, इस बात की चर्चा आज हम करेंगे।

सनातन धर्म की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही बड़ी उदार है। हमारे यहाँ किसी भी विषय, सिद्धांत और मत पर व्यापक चर्चा एवं विमर्श का स्थान उपलब्ध है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्रों में एक अंग दर्शनग्रन्थ का भी है। दर्शन का अर्थ है, दृष्टिकोण। यहाँ दर्शन का अर्थ है, धर्म को देखने का दृष्टिकोण। आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन, दोनों की व्यवस्था हमारे यहाँ की गयी है, क्योंकि यदि अन्धकार न रहे तो प्रकाश की परवाह कौन करे ? अज्ञान न रहे तो ज्ञान का महत्त्व कैसे प्रतिपादित होगा ? आस्तिक दर्शन में पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन का नाम आता है तथा नास्तिक दर्शन में बौद्ध, जैन तथा चार्वाक दर्शन का।

एक भ्रम लोगों में बहुतायत से व्याप्त है कि गौतम ही बुद्ध थे। एक दूसरा भ्रम यह भी व्याप्त है कि गौतम बुद्ध नहीं थे, बल्कि बुद्ध कोई और थे। जबकि सत्य यह है कि गौतम *ही* नहीं, गौतम *भी* बुद्ध थे। वस्तुतः बुद्ध एक नहीं बहुत हैं। जैसे कि पूर्व में बताया गया कि बुद्ध मात्र एक स्थिति विशेष का नाम है तो उस स्थिति में पहुँचने वाला प्रत्येक प्राणी बुद्ध कहलाया। युगाधारित अवतारों में व्यास का कार्य है वेदों का विभाजन, पुराणों का संकलन, तथा ग्रंथों का संरक्षण। बुद्ध का कार्य है, समाज में जो लोग धर्म के नाम पर पाखण्ड तथा अविहित पशुहिंसा आदि करें, ऐसे आसुरी सम्पदा से युक्त पुरुषों को

मायामय उपदेश के द्वारा सनातन से विमुख करना, जैसे किसी फोड़े को शरीर से काट कर इसीलिए अलग कर दिया जाता है कि वह अन्य अंगों को क्षति न पहुंचा सके। कल्कि का उद्देश्य है, बौद्ध - जैन तथा अन्य म्लेच्छों का विनाश करके पुनः विशुद्ध सनातन को स्थापित करना तथा व्यवस्था परिवर्तन करना।

इस संसार में वेद से इतर कुछ भी नहीं। इस संसार में स्वतः प्रमाण वेद भगवान् का समर्थन और प्रतिपादन न करने वाला वाक्य मान्य और प्रामाणिक नहीं। अतः एक सच्चा वैदिक वही है जो पुराण द्वेष न करे क्योंकि वेदों के पोषक पुराण ही हैं। एक सच्चा पौराणिक वही है जो वेद निंदा न करे क्योंकि वेद सभी तत्वों के मूल हैं। बुद्ध एक नहीं हुए हैं। अनेकों बुद्धों का आगमन हो चुका है, तथा अनेकों बुद्ध आयेंगे। प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, कुशल, मैत्रेय, गौतम, कश्यप, शक्र, अर्यमा , क्रतुभुक, कृती, सुखी, शशांक, निष्णात, सत्व, शिक्षित, सर्वज्ञ, सुनत, रुरु, मारजित्, बुद्ध, प्रबुद्ध आदि कई बुद्धों एवं बोधिसत्वों का वर्णन आता है। अब बौद्धावतार का कारण बताते हैं।

मिश्रदेशोद्भवाम्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः।

.....

शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्। यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम्॥

.....

अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौयुगे।

.....

कीकटे देशमागत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात्। वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् ॥

.....

वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुराः कुष्ठिनोऽभवन्।

.....

विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम्। हरिर्योगबलेनैव तेषां कुष्ठमनाशयत्॥

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड – ०४, अध्याय – २०)

कलियुग के आने पर मिस्र देश में उत्पन्न कश्यप गोत्रीय म्लेच्छों ने शिखा रख कर तथा जनेऊ धारण करके स्वयं को ब्राह्मण घोषित कर दिया तथा स्वयं भी वेदपाठ करते हुए देवताओं का पूजन करने तथा कराने लगे। इससे त्रस्त होकर देवताओं ने देवराज इंद्र के

समक्ष जाकर समाधान हेतु निवेदन किया। देवराज ने उनकी प्रार्थना पर उन असुर म्लेच्छों को मोहित करने के लिए बौद्धमार्ग का विस्तार करके वेदों के निंदापरक ग्रंथों को लिखने के लिए बारहों आदित्य के साथ कीकट में अवतार लिया। वेदनिन्दा करने के कारण उन्हें कुष्ठ हो गया अतः वे समस्त देवगण बुद्धरूपधारी विष्णु जी के पास गए जिन्होंने अपने योगबल से उनका रोगनाश किया।

तो वस्तुतः बुद्ध का आगमन सनातन धर्म के अंदर जिन म्लेच्छों ने घुसपैठ कर रखी थी, उनके विनाश के लिए हुआ था तथा उसी समय उन्होंने ब्राह्मणों की शुद्धि करते हुए नकली ब्राह्मणों को मोहित करते हुए उन्हें सनातन से काट कर बौद्ध मत में दीक्षित करके सनातन की शुद्धि कर दी। श्रीमद्भागवत में भी वर्णन है -

"धर्मद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां.....वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम्"

तथा

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नाजिन सुतः कीकटेषु भविष्यति॥

असुरों को मोहित करने के लिए बुद्ध का अवतार हुआ था। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि का उपदेश देने के कारण उन्हें अधार्मिक तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु वेद तथा ईश्वर निंदक होने के कारण वे धार्मिक भी नहीं कहलाये। अतः उन्हें उपधार्मिक कहा गया है।

कुछ अन्य जन यह बात भी करते हैं कि वस्तुतः विष्णु के अवतारों में पहले बलराम तथा कृष्ण को अलग अलग गिना गया था तथा बाद में आदिगुरु शंकराचार्य जी ने बलराम को हटा कर बुद्ध को सम्मिलित कर दिया। लेकिन इसका कोई प्रमाण न आदिशंकराचार्य जी के किसी ग्रन्थ में में मिलता है और न ही वर्तमान में किसी शांकरपीठ के पास इसका प्रमाण है। साथ ही कभी शंकराचार्य जी ने भी नहीं कहा कि बुद्ध विष्णु के अवतार नहीं थे और न ही दलाई लामा इसे *अस्वीकार* करते हैं। कुछ मूर्ख तो यह भी कहते हैं कि दशावतार में बुद्ध का नाम नहीं है, इसे बाद में जयदेव कवि ने जोड़ दिया। हाँ, इस बात के कई प्रमाण अवश्य हैं कि तंत्रग्रंथों तथा पुराणों में शंकराचार्य जी के आगमन से बहुत पूर्व से ही विष्णु भगवान् के बौद्धावतार की बात कही गयी थी और श्रीमद्भागवत आदि कई ग्रन्थों में बलराम को अवतार-सूची से हटाये बिना ही बौद्धावतार का उल्लेख है। ऐसे ही प्रमाण देवीभागवत, विष्णु पुराण, स्कन्द पुराण, नृसिंह पुराण आदि में भी प्राप्य हैं।

अस्तु, अब लोग बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार तो स्वीकार कर लेंगे परन्तु यह कहेंगे कि यहाँ तो कीकट प्रान्त में अजिन के पुत्र के रूप में वर्णन हैं। फिर हम गौतम को क्यों माने कि वे बुद्ध थे और भगवान के अवतार थे ? इसका प्रमाण भी पुराणों में प्राप्य है।

एतस्मिनैव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः।
काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः।
बौद्धधर्मं समाश्रित्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः।
(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड – ०१, अध्याय ०६, श्लोक – ३६)

कलियुग की प्रार्थना पर काश्यप गोत्र में भगवान विष्णु ने गौतम के नाम से अवतार लेकर बौद्धधर्म का आश्रय लिया और उसका विस्तार करते हुए पटना चले गये। पुनः लोग यह शंका करेंगे कि हमें तो राजा शुद्धोदन का भी नाम चाहिये, तो इसका प्रमाण भी उपलब्ध होता है।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः। प्रावृतं तरसा मायादेवीमानेतुमाययौ॥
....
बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः॥
(कल्किपुराण)

इस प्रसंग में वर्णन है कि जब कल्कि भगवान् बौद्धों और म्लेच्छों का विनाश करने लगेंगे तो बुद्ध, उनके पिता शुद्धोदन तथा माता मायादेवी पुनः प्रकट होंगे तथा म्लेच्छों के साथ मिलकर कल्कि से युद्ध करेंगे। इसी युद्ध के वर्णन के अंतर्गत वर्णन है कि जब शुद्धोदन हार कर मायादेवी को बुलाने चला गया तो बौद्धों ने शुद्धोदन के पुत्र का आश्रय लेकर लाखों करोड़ों म्लेच्छों की सहायता से युद्ध करना आरम्भ किया।

इस प्रकार से सभी प्रमाणों को एक साथ देखा जाय तो बुद्ध कई हैं तथा सभी अवतार ही हैं जो उद्देश्य विशेष से यथासमय आते हैं। यदि प्रकाश में व्यक्ति हत्या कर रहा हो तो प्राण बचाने वाला अन्धकार कर देता है। वैसे ही जब धर्म का नाम लेकर म्लेच्छों ने ब्राह्मण बन कर अधर्म प्रारम्भ किया तो उन्हें ठीक करने के लिए भगवान ने बुद्ध के रूप में आकर कहा कि जिस ईश्वर और धर्म के नाम पर तुम ये सब कर रहे हो, उसका कोई

अस्तित्व ही नहीं है। बाद में जयदेव कवि आदि ने भी कारुण्यमातन्वते, निन्दसि यज्ञविधे, सदयपशुघातम् आदि शब्दों के द्वारा इसी बात को प्रमाणित किया कि श्रीहरि का ही अवतार भिन्न भिन्न समयों में बुद्ध को रूप में हुआ था।

एतेन्ये च .... पाखण्डास्तेन हेतुना॥ आदि माहेश्वर तन्त्र के वाक्यों से मैं पूर्व में यह बता चुका हूँ कि जो वेदत्रयी को न माने, वह पापाचारी ही पाखण्डी है। 'पा' शब्द से वेदत्रयी के धर्मानुसार लोकव्यवहार करना बताया गया है। जो उसका खण्डन करे वही पाखण्डी बताया गया है। अब आगे देखें -

तपश्चरसु सर्वेषु असुरेषु जयार्थिषु। विष्णुः सुदुस्तरां मायामास्यास्य सुरनोदितः॥
मोहयामास योगात्मा तपोविघ्नाय तान्प्रभुः।
स मूढान् बुद्धरूपेण तानुवाच महामनाः॥
शक्या जेतुं सुराः सर्वे युष्माभिरितिदर्शनैः। बौद्धधर्मं समास्थाय शक्यास्ते बभूविरे॥
तानुवाचार्हतो मम यूयं भवत मद्विधाः। ज्ञानेन सहितं धर्मं ते चार्हन्त इति स्मृताः॥
बौद्धश्रावकनिर्ग्रंथाः सिद्धपुत्रास्तथैव च। एते सर्वेपि चार्हतो विज्ञेया दुष्टचारिणः॥
(माहेश्वरतन्त्र, अष्टादश पटल, श्लोक - ३५-३९)

विजय की कामना से तपस्या करने वाले असुरों को विष्णु भगवान ने मोहित करने वाली माया से वश में करके बुद्ध रूप धारण करके कहा :- "दर्शनों के पालन से सभी देवता आप लोगों के द्वारा जीते जा सकते हैं अतः आप सब बौद्ध धर्म में आस्थावान् होकर उन्हें जीत सकते हैं।" बुद्ध भगवान के ऐसा करने पर वे असुर बौद्ध मतावलंबी हो गए। उन्हें धर्मलोप किया देख भगवान ने कहा, जैसा मैं हूँ, वैसे ही तुम सब हो जाओ और बताए गए ज्ञान के सहित इस बौद्ध धर्म का पालन करो। इसीलिए वे सब पुनः अर्हत् कहाये। बौद्ध श्रावक, निर्ग्रंथी, और सिद्धपुत्र (जैनी) ये सब दुष्ट बुद्धि वाले अर्हन्त के नाम से जाने गए।

अजिनपुत्र ब्राह्मण महात्मा बुद्ध के अवतार होने के सन्दर्भ में पूर्व के कई आचार्य एवं विद्वान् बता चुके हैं, अतएव मैं उनके प्रमाणों पर अधिक चर्चा नहीं करूंगा। मैं वह बताऊंगा जो शेष आचार्यों ने गुप्त रखा। क्या कारण है कि महात्मा बुद्ध को लोग अधिक नहीं जानते और गौतम बुद्ध की प्रसिद्धि अधिक हो गयी ? क्या विष्णु भगवान् के अवतार

की प्रसिद्धि कम हो और लौकिक जनों की अधिक, ऐसा सम्भव है ? इसका कारण है कि गौतम बुद्ध भी भगवान् विष्णु के अवतार ही हैं एवं उनके बाद अभी तक कोई दूसरा बुद्ध नहीं आया है इसीलिए उनकी प्रसिद्धि विशेष है। नारद पांचरात्र एवं पद्मपुराण में वर्णित शिवप्रोक्त विष्णुसहस्रनाम के अंत में भगवान् का एक नाम शौद्धोदनिः (शुद्धोदन पुत्र) भी आया है।

वर्तमान में कथित नवबौद्ध आदि बुद्ध के मूल सिद्धांत को न जानने के कारण घोर अनर्थ करते हैं। भगवान् बुद्ध ने फोड़े को काट कर हटाया और शेष को सुरक्षित किया, लेकिन कथित बौद्धगण स्वस्थ देह का गला ही काट दे रहे हैं। वस्तुतः यह सब कुछ पूर्व नियोजित था कि सनातन में घुसपैठ किये म्लेच्छों को नास्तिक बौद्ध दर्शन का आश्रय लेकर विष्णु भगवान् भ्रमित करके उन्हें सनातन से वापस दूर करेंगे तथा इस प्रक्रिया में जो भी कुछ सनातनियों में भ्रम व्याप्त होगा उसे बाद में उचित अवसर पाकर कुमार कार्तिकेय तथा भगवान शिव क्रमशः आचार्य कुमारिल भट्ट तथ आदिगुरु शंकराचार्य के रूप में आकर ठीक करेंगे। तो निष्कर्ष यह निकलता है कि बुद्ध निःसंदेह नारायण के अवतार हैं तथा उनका उद्देश्य तथा कर्तव्य सही था। बुद्ध सही थे, बौद्ध नहीं।

मेरे निजी मत से मैं इस बात की संभावना व्यक्त करता हूँ कि धर्मसम्राट् करपात्री स्वामी आदि ने इसीलिये गौतम बुद्ध को प्रत्यक्ष अवतरण नहीं माना क्योंकि अम्बेडकर के बौद्ध बन जाने से अंग्रेजों ने सवर्ण तथा दलित नाम का जो कथित विभाजन किया था, उसमे दलित जन सनातन विरोधी हो रहे थे। साथ ही ऐसे लोग यह भी मानते थे कि गौतम ही एक मात्र बुद्ध हैं जिन्होंने नवीन बौद्ध मत चलाया, उससे पहले कोई बुद्ध नहीं हुआ। इसीलिए करपात्री जी ने गौतम को अवतरण नहीं मानने की दूरगामी नीति अपनायी ताकि लोग बाद में भ्रमित न हों। साथ ही उन्होंने अजिन पुत्र पर भी जोर दिया।

यदि गौतम से विरोध होता तो आचार्य शंकर, आचार्य कुमारिल तथा कौशाम्बी के महाराज उदयन आदि, जो गौतम से कुछ ही समय बाद हुए थे, कभी न कभी कहीं न कहीं यह अवश्य कहते कि अजिन पुत्र ही वास्तव में अवतार वाले बुद्ध हैं। यह गौतम नाम का आदमी फ़र्ज़ी बुद्ध था। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ क्योंकि वे इस बात को अच्छे से जानते थे। आदिगुरु ने कभी गौतम के अवतार न होने की बात कही ? या ये कहा कि वो नकली बुद्ध है, एक मात्र अजनपुत्र ही असली बुद्ध हैं और केवल वे ही अवतार हैं।

कुमारिल भट्ट ने भी नहीं कहा। जबकि गौतम के सबसे निकट समकालीन तथा बौद्धखण्डक तो वही लोग थे। अम्बेडकर के बौद्ध बनने से सनातनियों का बड़ा वर्ग जो अंग्रेजों की कूटनीति का शिकार था, बुद्ध की ओर आकर्षित हुआ। मुझे लगता है कि यदि धर्मसम्राट् जी जैसा अतिमान्य व्यक्तित्व यह कहता कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार हैं तो बाकी सुधरे हुए सनातनियों में यह भ्रम होता कि विष्णु के कृष्ण और बौद्ध अवतार के उपदेश में इतनी विसंगति क्यों है। मूल उद्देश्य जो अवतारों का था, उससे वे परिचित तो थे नहीं।

अब बुद्ध का मत भौतिकवादी है, मायाप्रधान है। बहुत लुभावना है, बहुत आकर्षक है। अतः यदि उन्हें विष्णु का अवतार कह देते तो लोग और तेजी से बुद्ध की ओर भागते। ये कह कर कि बौद्ध बनने से हमें भौतिकवाद का लाभ मिलेगा और लोग हमें गलत भी नहीं कहेंगे क्योंकि बुद्ध तो विष्णु के अवतार थे। अतः उन्होंने सीधा कह दिया कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार ही नहीं है। यहाँ ध्यान दें कि नीति उन्होंने वही अपनायी जो विष्णु भगवान् ने बौद्धावतार में लगायी थी। ईश्वर के नाम पर अधर्म करने वालों को यह कह कर रोका कि ईश्वर ही नहीं है। इस प्रकार धर्मसम्राट् करपात्री स्वामी जी ने सनातन का बहुत बड़ा वर्ग बचा लिया जो बौद्ध बनने जा रहे थे।

अब जैसे हमारे हज़ारों जन्मों में हज़ारों माता पिता हुए, पर हमने उसी को प्रधानता दी, उसी से प्रभावित हुए जो सबसे अर्वाचीन है। वैसे ही सभी लोग अजन पुत्र की अपेक्षा गौतम से अधिक प्रभावित हुए। गौतम का विरोध करने से ऐसे लोग, जो यह सोच रहे थे कि बौद्ध मत का लाभ लेंगे, यह कह कर कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार हैं, अतः हम सही हैं, लेकिन धर्मभीरु होने से बौद्ध मत को भी विशुद्ध सनातन ही मान रहे थे, ऐसे लोगों पर विराम लग गया। किन्तु बौद्ध अवतार हुआ तो था, अतः उन्होंने अजन पुत्र को अवतार माना। इससे बुद्ध का विरोध हुआ भी और नहीं भी हुआ। दोनों कार्य साध लिये। साथ ही, वेदविरोधी होने से भगवान् का बुद्ध विग्रह श्रेष्ठ नहीं माना गया, अतः उनका विरोध भी पापकारक नहीं हुआ।

अब कीकट क्या है ? श्रीधर स्वामी ने कीकट का अर्थ *मगध का मध्य* या *गया* किया है। नालंदा के गृद्धकूट से मिर्जापुर – चुनार के पास चरणाद्रि पर्वत तक कीकट है जिसके अन्तर्गत मगध है, ऐसा शक्तिसंगम तन्त्र का वचन है।

चरणाद्रिं समारभ्य गृध्रकूटान्तकं शिवे।
तावत् कीकटदेशः स्यात् तदन्तर्मगधो भवेत्॥
(शक्तिसंगम तन्त्र)

अजिनपुत्र बुद्ध के अवतार के समय वाराणसी में महाराज किकी का शासन था और वे कीकट के भी राजा थे। वैष्णव दशावतार में बुद्ध की चर्चा भी है।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥
(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व, अध्याय – १९०, श्लोक – ०६)

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की ततः स्मृतः।
एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिताः॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय – ७१, श्लोक – २७)

दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा। बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय – २३६, श्लोक – ०६)

इस प्रकार कहीं कहीं बुद्ध की गणना दशावतार में है तो कहीं कहीं नहीं भी है। ऐसे ही कहीं कहीं बलरामजी की भी गणना है तो कहीं नहीं भी है। अतएव यह कहना कि बाद में जयदेव कवि ने बुद्ध का नाम मिला दिया, यह सर्वथा अशास्त्रीय है। भगवान् विष्णु की निम्न भविष्यवाणी देखें –

मया बुद्धेन वक्तव्या धर्माः कलियुगे पुनः।
हन्तव्या म्लेच्छराजानस्तथा विष्णुयशात्मना॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड – ०३, अध्याय – ३५१, श्लोक – ५४)

मेरे द्वारा बुद्धरूप से कलियुग में (उप) धर्म का प्रवचन किया जाएगा एवं फिर विष्णुयशा के पुत्र (कल्कि) के रूप में म्लेच्छ राजाओं का वध किया जाएगा। कुछ और शास्त्र प्रमाण देखें –

भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात्।
सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत्॥

शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुलः स्मृतः।
प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः॥
(वायुपुराण, उत्तरार्ध, अध्याय – ३७, श्लोक – २८४-२८५)

रणंजय का पुत्र संजय होगा। संजय का पुत्र शाक्य और उससे शुद्धोदन होगा। शुद्धोदन का पुत्र शाक्य उपाधि लेकर राहुल को जन्म देगा। राहुल का पुत्र प्रसेनजित् और उसका पुत्र क्षुद्रक होगा। (गौतमबुद्ध की उपाधि शाक्यमुनि भी है)

बुद्ध पतन और उत्थान दोनों कराता है, इसका एक संकेतात्मक वर्णन देखें –

बुद्धं प्रतीदं ब्रह्मैव केवलं शान्तमव्ययम्। अबुद्धं प्रति बुद्ध्यैतद्भासुरं भुवनान्वितम्॥
.....
सर्गस्तु सर्गशब्दार्थतया बुद्धो नयत्यधः। स ब्रह्मशब्दार्थतया बुद्धः श्रेयो भवत्यलम्॥
(योगवासिष्ठ महारामायण, स्थितिप्रकरण, सर्ग – ०३, श्लोक – १६ एवं २३)

जो व्यक्ति बुद्ध हो गया है, उसके लिए ब्रह्म का अनुभव शांत एवं अव्ययरूप में होता है। जो बुद्ध नहीं है, वह केवल प्रकाशित संसार को ही देखता है। यदि केवल संसार को संसार ही मान ले (नास्तिक बुद्धि से) तो यह बुद्धत्व उसका पतन कर देता है। यदि संसार में ब्रह्मरूप का दर्शन करे तो बुद्ध का कल्याण होता है, इतनी सी बात है। धर्मराज युधिष्ठिर को अवतारों का वर्णन करते हुए ऋषि मार्कण्डेय कहते हैं –

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ॥
.....
तथा बुद्धत्वमपरं नवमं प्राप्स्यतेऽच्युतः। शान्तिमान्देवदेवेशो मधुहन्ता मधुप्रियः ॥
तेन बुद्धस्वरूपेण देवेन परमेष्ठिना। भविष्यति जगत्सर्वं मोहितं सचराचरम् ॥
(स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड-रेवाखण्ड, अध्याय – १५१, श्लोक – ०४ एवं २१-२२)

'मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि ये दस अवतार हैं। नवें अवतार के रूप में भगवान् अच्युतदेव (विष्णु) का बुद्धरूप से आगमन होगा। मधुदैत्य का नाश करने वाले, वसन्तप्रिय (कामरूपी) भगवान् का वह रूप शान्त

होगा। उन परमदेव के उस रूप के द्वारा सम्पूर्ण संसार मोहित हो जाएगा।' ऋषिप्रणीत ज्यौतिषीय ग्रंथों में भी देखें –

रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहः सूकरस्तथा।
एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः॥
अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः। जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः॥
दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलबृद्धये।
धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहाज्जाताः शुभाः क्रमात्॥
रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः। नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च॥
वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च। कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः॥
केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः।
परात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेचराभिधः॥
(बृहत्पाराशर होराशास्त्र, अध्याय ०२, श्लोक – ०२-०७)

हे ब्राह्मणों ! राम, कृष्ण, नृसिंह एवं वाराह ये चार पूर्णावतार हैं। अन्य अवतारों में कुछ जीवांश भी विद्यमान् है। अजन्मा परमात्मा के अनेकों अवतार हैं। जीवों को उनका कर्मफल देने के लिए भी भगवान् जनार्दन ग्रहरूप से आते हैं। दैत्यों के बल का नाश करने के लिए एवं देवताओं के बल को बढ़ाने के लिए, धर्म की स्थापना के लिए क्रम से शुभ ग्रहों का निर्माण हुआ है। श्रीरामावतार सूर्य हैं, चन्द्रमा श्रीकृष्ण हैं। नृसिंह मङ्गल एवं बुद्धावतार बुध हैं। वामन बृहस्पति हैं एवं परशुरामावतार शुक्र हैं। कूर्मावतार शनि और वाराह राहु हैं। केतु मत्स्यावतार हैं और भी अन्य जो आकाशीय पिंड हैं, उनमें परमात्मा का ही अंश है।

आपको स्मरण होगा कि मैंने भविष्य पुराण के प्रमाण से यह सिद्ध किया था कि इन्द्रादि ने बुद्धावतार लेकर वेदनिन्दा की, जिससे उन्हें कुष्ठ हो गया और भगवान् विष्णु ने अपने योगबल से उन्हें स्वस्थ किया। अब हम विलुप्तप्राय मुद्गल उपपुराण के एक प्रमाण को देखते हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना पर (इन्द्रादि के इस अवतार के बाद) भगवान् विष्णु ने जब बुद्धावतार का निर्णय किया तो वेदनिन्दा से होने वाले अधर्म का उन्हें भय हुआ। उन्हें लोगों के वैदिक कृत्यों में विघ्न डालना था इसीलिए वे विघ्नराज गणेश की तपस्या करने

लगे। भगवान् विष्णु की तपस्या से प्रसन्न होकर गणेश्वर ने उन्हें वरदान मांगने को कहा, तो भगवान् विष्णु ने निम्न बात कही –

भक्तिं देहि त्वदीयां मे सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
बुद्धोऽहं धर्मलोपार्थं भविष्यामि कलौ युगे॥
धर्मसंस्थापनं नित्यं करोमि गणनायक। धर्मलोपार्थमेवाहं त्वया बुद्धः प्रकीर्तितः॥
एतदेव विरुद्धं मे प्राप्तं द्रुण्ढे दयानिधे। तदर्थं शरणं नाथ यातोऽहं ते पदस्य च॥

हे नाथ ! सर्वप्रथम तो आप मुझे सभी सिद्धियों को देने वाली अपनी भक्ति का वरदान दें। मैं धर्म के लोप हेतु कलियुग में बुद्ध का अवतार लूंगा। मेरे सभी अवतार धर्म की स्थापना के लिए ही होते हैं और अब मुझे आपकी आज्ञा से धर्म के विनाश के लिए बुद्ध बनना है। इस विरोधाभास के कारण मैं आपके चरणों की शरण में आया हूँ।

भगवान् विष्णु की बात सुनकर परब्रह्मरूपी गणेश्वर ने कहा –

मा भयं कुरु विष्णो त्वं धर्मयुक्तो भविष्यसि।
कलिप्रवर्तने दोषो न ते क्वापि महात्मनः॥
मया चतुर्युगाः खेलाद्रचिताः क्रमकारणात्। वरदानेन मे सर्वे स्वस्वकालयुता बभुः॥
कलिस्तेषु महापापी मया संस्थापितोऽभवत्।
मदाज्ञापालको भूत्वा भव बुद्धस्त्वमादरात्॥

हे विष्णो ! आप भय न करें, आप धर्म से युक्त ही रहेंगे। कलियुग को बढ़ावा देने के कारण आप जैसे महात्मा को कोई दोष नहीं लगेगा। मेरे ही द्वारा खेल खेल में क्रम से चारों युग बनाये गए हैं और मेरे ही वरदान से अपने अपने कालविभाजन से वे युक्त हैं, इनमें महापापी कलियुग की भी स्थापना मैंने की है। इसीलिए मेरी आज्ञा को मानकर आप आदरपूर्वक बुद्धरूप धारण करें।

सर्वान् सम्मोह्य विश्वात्मा बुद्धः कलिप्रवर्तकः।
संस्थितः कैकटे देशे गुप्तरूपेण मानदः॥

हे विश्वात्मन् ! आप कलियुग को बढ़ाने वाला बुद्धरूप धारण करके सबों को मोहित करें एवं कीकट देश में गुप्तरूप से स्थित हों। (गुप्त इसीलिए, ताकि उनके विष्णु होने का बोध छिपा रहे)

तथापि पूजया हीनो बभूव बुद्धरूपधृक्। विष्णुर्वेदविरुद्धस्थमार्गसंसर्जनात्किल॥
(मुद्गल उपपुराण, खण्ड – ०८, अध्याय – १५)

वेदविरुद्ध मार्ग की स्थापना के कारण भगवान् विष्णु बुद्धरूप में पूजा से रहित हुए, उनकी पूजा वर्जित है।

यह अवतार अजिनपुत्र बुद्ध के रूप में हुआ था। शौद्धोदन गौतम बुद्ध का अवतार वैशाख पूर्णिमा में हुआ था और महात्मा बुद्ध का अवतार कुछ के मत से माघ में हुआ था। कुछ विद्वान् बुद्धावतार का प्रमाण विजयादशमी के दिन से देते हैं तो कुछ कहते हैं कि शुक्लपक्ष की दशमी में जब विशाखा नक्षत्र और रविवार था तब दिन के छः घड़ी बीतने पर बुद्धावतार हुआ। शुक्ल दशमी और विशाखा का योग आषाढ़ के महीने में बहुधा बनता है।

शुद्धा च दशमी देवि रविवारेण संयुता।
शुक्लयोगे विशाखायां दिवा नाड़ी च षट् तदा।
बुद्धोऽवतीर्णो देवेशि ततः कलियुगे शृणु॥
(शक्तिसंगम तन्त्र, छिन्नमस्ताखण्ड, षष्ठ पटल, श्लोक – ६६)

अब तन्त्र में बुद्ध की उपासना का एक वर्णन मिलता है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि बौद्धमन्त्रं महाफलम्।
सभ्यत्वान्न द्विजातीनामधिकारोस्ति कर्हिचित्॥
वाममार्गरत विप्राः कुण्डका जातिविच्युताः।
हीना वैदिकसंस्कारैः प्रमादान्म्लेच्छतां गताः॥
गोलकाश्च तथा जात्या कायस्थादय एव च।
बौद्धं विष्णुं समाराध्य भुक्तिं मुक्तिं प्रयान्ति ते॥
पतितानामयं मन्त्रः सम्प्रोक्तः सुखदायकः।
नमो भगवते बुद्ध संसारार्णवतारक। कलिकालादहं भीतः शरण्यं शरणं गतः॥

भगवान् ईश्वर कहते हैं – अब मैं महान् फल को देने वाले बुद्धावतार का मन्त्र कहता हूँ। सभ्य (वेदाधिकार से युक्त) द्विजाति के लिए इसे करने का अधिकार नहीं है। वाममार्गी (अवैदिक) ब्राह्मण, जाति से बहिष्कृत या च्युत, वैदिक संस्कार से हीन (व्रात्य), आलस्य

के कारण म्लेच्छवृत्ति को अपनाने वाले कुण्डक, गोलक आदि वर्णसंकर एवं कायस्थ आदि (कायस्थों के आठ प्रकार में चार वैदिक मार्ग में अधिकृत हैं और चार अवैदिक मार्ग में, उसमें अवैदिक मार्ग वाले कायस्थ) बुद्धरूप से विष्णु की आराधना करके इस संसार में सुख और आगे मुक्ति को प्राप्त करते हैं। पतितों को यह मन्त्र सुखदायी बताया गया है।

मन्त्र – नमो भगवते बुद्ध संसारार्णवतारक। कलिकालादहं भीतः शरण्यं शरणं गतः॥

भगवान् बुद्ध के लिए प्रणाम है। संसार रूपी समुद्र से पार करने वाले ! मैं कलिकाल से भयभीत होकर आपको रक्षक मानता हुआ आपकी शरण में आया हूँ।

आगे बुद्ध सम्बन्धी यन्त्र में कहते हैं –

कामिनीं च महामायां श्रीकृष्णं च विनायकम्।
समन्तभद्रं वर्त्मर्षिं निधिचन्द्रं मनोहरम्॥
(मेरुतन्त्र, दशावतारमन्त्रप्रकाश, पटल - २६)

कामिनी, महामाया (बुद्धमाता), श्रीकृष्ण (यमारि), विनायक, समन्तभद्र (गौतम बुद्ध की एक उपाधि) एवं निधिचन्द्र का पूजन करे। गौतम बुद्ध के जन्म के साथ ही चार निधिकुम्भ भी प्रकट हुए थे ऐसा बौद्ध ग्रंथों में वर्णन है। इस प्रकार भगवान् विष्णु का शुद्धोदनपुत्र गौतम बुद्ध के रूप में अवतार सिद्ध होता है। प्रधान बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर सूत्र का निम्न वचन देखें –

इह खलु बौद्धशास्त्रसमूहेषु सम्प्रोक्ताः पञ्चविंशतिर्बुद्धा दृश्यन्ते। तेषां शुद्धोदनौरसात्
मायादेवीगर्भजातः शाक्यसिंहसर्वार्थसिद्धार्कबन्धुगौतमेति नामचतुष्टयेन
प्रसिद्धोऽन्तिमतमः लोकविश्रुतो बुद्धः कपिलवस्तुनगरे
कलेश्चतुःशतषडशीत्यधिकद्विसहस्रमितेषु गतेष्वब्देषु शुक्रवासरे *सुरद्विषां सम्मोहनाय*
साक्षाद्विवेकमूर्त्तिः स्वेच्छाविग्रहेण प्रादुर्बभूव।
(ललितविस्तर सूत्र)

बौद्धशास्त्र के समूहों में (दीपङ्कर बुद्ध से गौतम बुद्ध तक और भविष्य के मैत्रेय बुद्ध को मिलाकर) पच्चीस बुद्ध दिखते हैं। उनमें शुद्धोदन की औरस सन्तान, जो मायादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुई, जिनकी शाक्यसिंह, सर्वार्थसिद्ध (सिद्धार्थ), अर्कबन्धु और गौतम, इन चार नामों से प्रसिद्धि हुई, वे सबसे निकट (हाल ही) के हैं, इनकी कीर्ति संसार में प्रसिद्ध है।

कपिलवस्तु में कलियुग के २४८६ (दो हज़ार, चार सौ छियासी) वर्ष बीतने पर शुक्रवार को *देवताओं से द्रोह करने वाले (असुरों) को मोहित करने के लिए* साक्षात् विवेक की मूर्ति, इच्छानुसार शरीर को धारण करके उत्पन्न हुए। यहां सुरद्विषां सम्मोहनाय शब्द से गौतम बुद्ध के अवतार का जो उद्देश्य था, उसका अजिनपुत्र महात्मा बुद्ध के अवतार का उद्देश्य, जो श्रीमद्भागवत में सम्मोहाय सुरद्विषाम् के रूप में वर्णित है, उससे संगति होना सिद्ध करता है कि दोनों बुद्ध भगवान् विष्णु के ही अवतार थे एवं समान उद्देश्य से आये थे। अब हम ऐसे शास्त्रीय प्रमाणों पर चर्चा करेंगे जो स्पष्ट रूप से नाम, रूप आदि सभी आयामों में गौतम बुद्ध को भगवान् विष्णु का अवतार बताते हैं। सर्वप्रथम तो हम बौद्ध ग्रन्थ का प्रमाण ही देखते हैं -

बोधाय जातोऽस्मि जगद्धितार्थमन्त्या तथोत्पत्तिरियं ममेति।
चतुर्दिशं सिंहगतिर्विलोक्य वाणीं च भव्यार्थकरीमुवाच॥
(बुद्धचरितम्, अध्याय - ०१, श्लोक - १५ अथवा ३४)

'मैं संसार को बोध देने के लिए और उसके हित के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा यह अंतिम जन्म है।' - सिंह के समान वीरभाव से चारों दिशाओं में देखकर उसने ऐसे भव्य अर्थ वाली वाणी को कहा। (अनधिकारी होकर वेदमार्ग का अनुसरण करने से म्लेच्छों का भी पतन होता है अतः उन्हें वेदविरुद्ध करके अहिंसा और सत्य की शिक्षा देना उनका हित करना ही हुआ) जब शुद्धोदन को पुत्र की प्राप्ति हुई तो हिमालय में तपस्या कर रहे ब्रह्मवेत्ता महर्षि असित को इस बात का ज्ञान अपनी दिव्यदृष्टि से हुआ। वे तत्काल योगबल से शुद्धोदन के महल में आये और कहा -

पुत्रस्ते वररूपपारमिगतो जातो महातेजवान्,
द्वात्रिंशद्वरलक्षणैः कवचितो *नारायणस्थामवान्।*
तं द्रष्टुं हि ममेप्सितं नरपते सर्वार्थसिद्धं शिशुम्,
इत्यर्थं समुपागतोऽस्मि नृपते नास्त्यन्यकार्यं मम॥
(ललितविस्तर, जन्मपरिवर्त, श्लोक – ६६)

'हे राजन् ! तुम्हारा यह पुत्र श्रेष्ठ सुन्दरता की पराकाष्ठा है, इसने महान् तेजस्विता के साथ जन्म लिया है। यह बत्तीस श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त एवं *नारायण की शक्ति* से सम्पन्न है।

जिसकी सभी कामनायें स्वतः सिद्ध हैं, ऐसे इस सर्वार्थसिद्ध नामक शिशु का दर्शन करना ही मेरी अभिलाषा है। मैं इसी कारण से यहाँ आया हूँ, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई उद्देश्य नहीं है।' जब कृषिग्रामप्रवास में राजकुमार सिद्धार्थ वन में बैठे हुए थे तो ऊपर से पांच ऋषि योगबल से आकाशगमन करते हुए जा रहे थे। सिद्धार्थ के तेज का उल्लंघन करके जब वे आगे न जा सके तो उन्होंने नीचे देखकर आश्चर्य किया और इस प्रकार से कहा -

रूपं वैश्रवणातिरेकवपुषं व्यक्तं कुबेरो ह्ययं,
आहो वज्रधरस्य चैव प्रतिमा चन्द्रोऽथ सूर्यो ह्ययम्।
कामाग्राधिपतिश्च वा प्रतिकृती रुद्रस्य कृष्णस्य वा,
श्रीमान् लक्षणचित्रिताङ्गमनघो बुद्धोऽथ वा स्यादयम्॥
(ललितविस्तर, कृषिग्रामपरिवर्त, श्लोक – ०३)

यह कुबेर का दिव्य रूप है या फिर इन्द्र का स्वरूप है ? यह चन्द्रमा अथवा सूर्य ही है ? यह साक्षात् कामदेव की प्रतिकृति अथवा रुद्र तो नहीं है ? कहीं ये कृष्ण ही तो नहीं है ? लक्ष्मी से युक्त, विचित्र दिव्य अंगों वाला यह निष्पाप व्यक्ति कहीं बुद्ध तो नहीं है ? (फिर उन ऋषियों को राजकुमार सिद्धार्थ का परिचय वनदेवता ने दिया, ऐसा वर्णन है) इस प्रकार से हम देखते हैं कि शुद्धोदनपुत्र बुद्ध कोई सामान्य व्यक्तित्व नहीं थे एवं महर्षि असित ने तो अपनी दिव्यदृष्टि से जानकर राजा शुद्धोदन को सिद्धार्थ के नारायणांश होने का संकेत कर ही दिया था। अब सनातनी ग्रंथों से कुछ और प्रमाण देखें -

वक्ष्ये बुद्धावतारं च पठतः शृण्वतोऽर्थदम्। पुरा देवासुरे युद्धे दैत्येर्देवाः पराजिताः॥
रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम्। मायामोहस्वरूपोऽसौ *शुद्धोदनसुतोऽभवत्॥*
मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम्।
ते च बौद्धाबभूवुर्हि तेभ्योऽन्यो वेदवर्जिताः॥
(अग्निपुराण, अध्याय – १६, श्लोक – ०१-०३)

जिसको पढ़ने या सुनने से अर्थागम होता है, उस बुद्धावतार का वर्णन करता हूँ। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम होने पर दैत्यों ने (वेदधर्म के पालन से जन्य पुण्यबल से) देवताओं को पराजित कर दिया। तब सभी देवता जगदीश्वर भगवान् विष्णु के पास रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ! ऐसा कहते हुए गए। भगवान् ने माया से मोहित करने वाले रूप को धारण

करके *शुद्धोदन के पुत्र* के रूप में अवतार लिया। उन्होंने दैत्यों को मोहित करके उनसे वैदिकधर्म का आचरण छुड़वा दिया। वे सभी दैत्य बाद में बौद्ध बन गए और उनसे अन्य लोग भी वेदों का परित्याग करने लगे।

अब भगवान् विष्णु के दशावतार में शुद्धोदन पुत्र बुद्ध का स्वरूप कैसा है, उसका वर्णन भी देखें –

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः। ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः॥
(अग्निपुराण, दशावतारप्रतिमालक्षण, अध्याय – ४९, श्लोक – ०८)

शान्त व्यक्तित्व, लंबे कान, गोरा शरीर, वस्त्र पहने हुए, ऊपर की ओर खिले कमल पर बैठे हुए बुद्ध वरद एवं अभय मुद्रा को धारण करके वरदाभय को देते हैं। (यह स्वरूप गौतम बुद्ध का ही है)

एक और प्रमाण देखें जो बहुत ही दुर्लभ ग्रंथ से है। जैसे महापुराणों में विष्णुपुराण एवं शिवपुराण हैं, वैसे ही उपपुराणों में विष्णुधर्म पुराण (पूर्व) एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण हैं। साथ ही शिवधर्म पुराण (पूर्व) एवं शिवधर्मोत्तर पुराण भी हैं। निम्न प्रमाण विष्णुधर्म पुराण (पूर्व) से है, जिसमें भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्मा जी से अपने अवतारों का वर्णन करते हुए श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारकथन के बाद कहते हैं –

ततः कलियुगे घोरे सम्प्राप्तेऽब्जसमुद्भव। शुद्धोदनसुतो बुद्धो भविष्यामि विमत्सरः॥
बौद्धं धर्ममुपाश्रित्य करिष्ये धर्मदेशनाम्। नराणामथ नारीणां दया भूतेषु दर्शयन्॥
रक्ताम्बरा ह्यञ्जिताक्षाः प्रशान्तमनसस्ततः। शूद्रा धर्मं प्रवक्ष्यन्ति मयि बुद्धत्वमागते॥
एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता। भवित्री प्रायशो ब्रह्मन्मयि बुद्धत्वमागते॥
(विष्णुधर्म (पूर्व) पुराण, अध्याय – ६६, श्लोक – ६८-७१)

हे ब्रह्मन् ! उसके बाद घोर कलियुग के आने पर मैं ईर्ष्यारहित होकर शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा। बौद्धधर्म का आश्रय लेकर मैं धर्म का उपदेश करूँगा, स्त्री एवं पुरुषों को प्राणियों में दयाभाव का उपदेश करूँगा। जब मैं बुद्ध बनूंगा तो लाल वस्त्र पहने, काली आंखों वाले, शांतचित्त शूद्र भी उस समय धर्म का उपदेश करने लगेंगे। पृथ्वी एडूक (मज़ार) से भर जाएगी, मंदिरों की संख्या कम होने लगेगी एवं मेरे बुद्धावतार के बाद पृथ्वी ऐसी ही हो जाएगी।

इस प्रकार मैंने यह सिद्ध किया कि अजिनपुत्र ब्राह्मण महात्मा बुद्ध एवं शुद्धोदनपुत्र क्षत्रिय गौतम बुद्ध, ये दोनों ही भगवान् विष्णु के ही अवतार हैं। बौद्धमत के ग्रंथ तो कामाख्या आदि को भी मान्यता देते हैं, जबकि आजकल के नवबौद्ध कामाख्या की योनिपूजा को लेकर उपहास करते हैं।

कामरूपं भवेत् पृथ्वीरापः पूर्णगिरिस्मृतः। जालन्धरं महातेजो वायुरोंकारमण्डलम्॥
(मन्थानभैरवतन्त्र, कुमारिकाखण्ड, आनन्द – ६७)

सबसे वर्तमान में जो गौतम बुद्ध हुए वो अपने शिष्यों को, विशेषतः पुत्र राहुल को अपने पूर्वजन्मों और उनके समकालीन बुद्धों का वर्णन करते हुए बुद्धवंसपालि का उपदेश करते हैं जो सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय के अंतर्गत वर्णित है। ललितविस्तर और जातक आदि का कथन है कि बुद्धावतार यदि हो तो ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में ही होता है, हीनकुल में नहीं।

न बोधिसत्वा हीनकुलेषूपपद्यन्ते चण्डालकुलेषु वा वेणुकारकुले वा रथकारकुले वा पुक्क्सकुले वा। अथ तर्हि कुलद्वये एवोपपद्यन्ते ब्राह्मणकुले क्षत्रियकुले च। तत्र यदा ब्राह्मणगुरुको लोको भवति तदा ब्राह्मणकुले उपपद्यन्ते। यदा क्षत्रियगुरुको लोको भवति तदा क्षत्रियकुले उपपद्यन्ते।
(ललितविस्तर, कुलपरिशुद्धिपरिवर्त)

भगवान् गौतम बुद्ध का पहला जन्म
नाम – सुमेध
कुल – ब्राह्मण
निवास – अमरावती
तात्कालीन बुद्ध – भगवान् दीपङ्कर बुद्ध

इन्हीं दीपङ्कर बुद्ध की शरण में सुमेध गए थे और दीपङ्कर बुद्ध ने उस समय भविष्यवाणी की थी –

पस्सथ इमं तापसं जटिलं उग्गतापनम्। अपरिमेय्यितो कप्पे बुद्धो लोके भविस्सति॥
अहु कपिलब्हया रम्मा निक्खमित्वा तथागतो।

पधानं पदहित्वान कत्वा दुक्करकारिकम् ॥
अजपालरुक्खमूलस्मिं निसीदित्वा तथागतो। तत्थ पायासं पग्गय्ह नेरञ्जनमुपेहिति ॥
नेरञ्जनाय तीरम्हि पायासं अद सो जिनो। पटियत्तवरमग्गेन बोधिमूलमुपेहिति ॥
ततो पदक्खिणं कत्वा बोधिमण्डं अनुत्तरो।
अस्सत्थरुक्खमूलम्हि बुज्झिस्सति महायशो ॥
इमस्स जनिका माता माया नाम भविस्सति।
पिता सुद्धोदनो नाम अयं हेस्सति गोतमो ॥
(बुद्धवंसपालि, सुमेधपत्थनाकथा, ६१-६६)

दीपङ्कर बुद्ध बोले – इस उग्र तपस्या करने वाले जटाधारी तपस्वी को देखो। यह आज से असंख्येय कल्प के बीतने पर बुद्ध होगा। यह तथागत बनने के लिए कपिलवस्तु नगरी से गृहत्याग कर प्रबल उद्योग एवं दुष्कर तपस्या करता हुआ अजपाल नामक बरगद वृक्ष के नीचे बैठकर वहां दूध (या खीर) ग्रहण करके निरंजना (फल्गु की एक शाखा) नदी के तट पर जाएगा। निरंजना नदी के तट पर उस क्षीर को खाकर, व्यवस्थित मार्ग से बोधिवृक्ष के नीचे जाएगा। यह अनुपम महान् यशस्वी, उस बोधिवृक्ष की प्रदक्षिणा करके पीपल के नीचे बुद्ध बनेगा। इसकी माता माया देवी होंगी तथा पिता का नाम शुद्धोदन होगा। इसका नाम गौतम होगा। (इसी भविष्यवाणी का अनुमोदन परवर्ती बुद्ध करते गए हैं)

(०१)

भगवान् दीपङ्कर बुद्ध का जन्मस्थान – रम्यवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुमेधा एवं सुदेव
पटरानी – पद्मा
पुत्र – वृषभस्कन्ध
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुमेध नामक मुमुक्षु ब्राह्मण

(०२)

भगवान् कौण्डिन्य बुद्ध
जन्मस्थान – रम्यवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुजाता एवं सुनन्द
पटरानी – रुचि देवी
पुत्र – विजितसेन
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – चक्रवर्ती राजा
भगवान् कौण्डिन्य बुद्ध की भविष्यवाणी –
इमस्स जनिका माता माया नाम भविस्सति।
पिता सुद्धोदनो नाम अयं हेस्सति गोतमो॥
×××××
आयु वस्ससतं तस्स गोतमस्स यसस्सिनो॥
इसकी माता मायादेवी और पिता शुद्धोदन होंगे।
इसका नाम गौतम होगा एवं इस यशस्वी की आयु सौ वर्ष के करीब होगी।

(०३)

भगवान् मङ्गल बुद्ध
जन्मस्थान – उत्तर नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – उत्तर एवं उत्तरा
पटरानी – यशस्वी (यशस्विनी)
पुत्र – शिवल
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुरुचि नामक वेदाभ्यासी ब्राह्मण

(०४)

भगवान् सुमन बुद्ध
जन्मस्थान – मेखल नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुदत्त एवं सिरिमा
पटरानी – अवतंसिका
पुत्र – अनुपम
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – देवयोनि में नागराज

(०५)

भगवान् रेवत बुद्ध
जन्मस्थान – सुधान्यवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – विपुला एवं विपुल
पटरानी – सुदर्शना
पुत्र – वरुण
आयु – साठ हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – अतिदेव नामक दरिद्र ब्राह्मण

(०६)

भगवान् शोभित बुद्ध
जन्मस्थान – सुधर्मनगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुधर्मा एवं सुधर्म
पटरानी – मणिला
पुत्र – सिंह
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुजात नामक ब्राह्मण

(०७)

भगवान् अनोमदर्शी बुद्ध
जन्मस्थान – चन्द्रवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – यशोधरा एवं यशस्वी
पटरानी – सिरिमा
पुत्र – उपवाण
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – देवयोनि में यक्षराज

(०८)

भगवान् पद्म बुद्ध
जन्मस्थान – चम्पकनगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – असमा एवं असम
पटरानी – उत्तरा
पुत्र – रम्य
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – पशुयोनि में सिंह

(०९)

भगवान् नारद बुद्ध
जन्मस्थान – धन्यवती नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – अनोमा एवं सुदेव
पटरानी – विजितसेना
पुत्र – नन्दोत्तर
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – जटाधारी तपस्वी

(१०)

भगवान् पद्मोत्तर बुद्ध
जन्मस्थान – हंसवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुजाता एवं आनन्द
पटरानी – वसुदत्ता
पुत्र – उत्तम
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – जटिल नामक प्रशासनिक अधिकारी

(११)

भगवान् सुमेध बुद्ध
जन्मस्थान – सुदर्शन नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुदत्ता एवं सुदत्त
पटरानी – सुमना
पुत्र – पुनर्वसु
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – उत्तर नामक करोड़पति

(१२)

भगवान् सुजात बुद्ध
जन्मस्थान – सुमङ्गल नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – प्रभावती एवं उद्दत
पटरानी – श्रीनन्दा
पुत्र – उपसेन
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – चार द्वीपों का चक्रवर्ती सम्राट्

(१३)

भगवान् प्रियदर्शी बुद्ध
जन्मस्थान – सुधन्य नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – चन्द्रा एवं सुदत्त
पटरानी – विमला
पुत्र – काञ्चनावेल
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – काश्यप नामक वेदपाठी ब्राह्मण

(१४)

भगवान् अर्थदर्शी बुद्ध
जन्मस्थान – शोभन नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुदर्शना एवं सागर
पटरानी – विशाखा
पुत्र – शैल
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुसीम नामक उग्र तपस्वी

(१५)

भगवान् धर्मदर्शी बुद्ध
जन्मस्थान – शरण नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुनन्दा एवं शरण
पटरानी – विचिकोली
पुत्र – पुण्यवर्द्धन
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – देवयोनि में देवराज इन्द्र

(१६)

भगवान् सिद्धार्थ बुद्ध (प्राचीन)
जन्मस्थान – वैभार नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सुस्पर्शा एवं उदयन
पटरानी – सौमनस्या
पुत्र – अनुपम
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – मङ्गल नामक त्रिकालदर्शी तपस्वी

(१७)

भगवान् तिष्य बुद्ध
जन्मस्थान – क्षेमक नगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – पद्मा एवं जनसन्ध
पटरानी – सुभद्रा
पुत्र – आनन्द
आयु – एक लाख वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुजात नामक राजा

(१८)

भगवान् पुष्य बुद्ध
जन्मस्थान – काशिका नगरी
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – सिरिमा एवं जयसेन
पटरानी – कृशा गौतमी
पुत्र – अनुपम
आयु – नब्बे हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – विजितावी नामक राजा

(१९)

भगवान् विपश्यी बुद्ध
जन्मस्थान – बन्धुमती नगरी
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – बन्धुमती एवं बन्धुमान्
पटरानी – सुदर्शना
पुत्र – समवृत्तस्कंध
आयु – अस्सी हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – देवयोनि में अतुल नामक नागराज

(२०)

भगवान् शिखी बुद्ध
जन्मस्थान – अरुणवती
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – प्रभावती एवं अरुण
पटरानी – सर्वकामा
पुत्र – अतुल
आयु – सत्तर हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – अरिन्दम नामक प्रतापी राजा

(२१)

भगवान् विश्वम्भू बुद्ध
जन्मस्थान – अनोमनगर
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – यशस्वी (यशस्विनी) एवं सुप्रतीत
पटरानी – सुचित्रा
पुत्र – शूर्पबुद्ध
आयु – साठ हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – सुदर्शन नामक राजा

(२२)

भगवान् ककुसन्ध बुद्ध
जन्मस्थान – क्षेमवती नगरी
कुल – ब्राह्मण
माता एवं पिता – विशाखा एवं अग्निदत्त
पटरानी – रोचिनी
पुत्र – उत्तर
आयु – चालीस हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – क्षेम नामक प्रजावत्सल राजा

(२३)

भगवान् कोणागमन बुद्ध
जन्मस्थान – शोभवती
कुल – ब्राह्मण
माता एवं पिता – उत्तरा एवं यज्ञदत्त
पटरानी – रुचिगात्रा
पुत्र – स्वस्तिज
आयु – तीस हजार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – पर्वत नामक दिग्विजयी राजा
(मेरे मत से रावण को अवैदिक मत का उपदेश करने वाले बुद्ध यही थे)

(२४)

भगवान् काश्यप बुद्ध
जन्मस्थान – कीकट (उस समय वाराणसी में महाराज किकी का शासन था)
कुल – ब्राह्मण
माता एवं पिता – धनवती एवं ब्रह्मदत्त (अजन)
पटरानी – सुनन्दा
पुत्र – विजितसेन
आयु – बीस हज़ार वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – ज्योतिपाल नामक वेदज्ञ ब्रह्मचारी

(२५)

भगवान् गौतम बुद्ध
जन्मस्थान – कपिलवस्तु
कुल – क्षत्रिय
माता एवं पिता – मायादेवी एवं शुद्धोदन
पटरानी – भद्रकञ्चना यशोधरा
पुत्र – राहुल
आयु – लगभग सौ वर्ष
उस समय गौतम बुद्ध की स्थिति – मुख्य बुद्धत्व की स्थिति में महापरिनिर्वाण

दीपङ्कर बुद्ध के समय जो सुमेध ब्राह्मण थे, वे इस सनातनी गणना से श्वेतवाराह कल्प एवं बौद्ध गणना से भद्रक कल्प में ही गौतम बुद्ध बने। दीपङ्कर बुद्ध से पूर्व उनके ही कल्प में तण्हङ्कर बुद्ध, मेघङ्कर बुद्ध एवं शरणङ्कर बुद्ध हो चुके थे। दीपङ्कर बुद्ध के कई कल्पों के बाद कौण्डिन्य बुद्ध हुए। भगवान् कौण्डिन्य बुद्ध एवं मङ्गल बुद्ध के मध्य असंख्य कल्पों का अंतराल था। भगवान् मङ्गल बुद्ध के बाद हुए सुमन बुद्ध से लेकर शोभित बुद्ध तक चार बुद्ध एक ही कल्प में हुए हैं। उसके बाद कई कल्पों के अंतराल से अनोमदर्शी बुद्ध हुए।

इन्हीं के कल्प में पद्म एवं नारद बुद्ध भी हुए। इसके बाद एक लाख कल्पों तक बुद्धावतार नहीं हुआ, फिर पद्मोत्तर बुद्ध हुए। इनके बाद तीस हजार कल्पों के मध्य मात्र सुमेध एवं सुजात बुद्ध हुए। फिर अठारह सौ कल्पों के बाद प्रियदर्शी, अर्थदर्शी एवं धर्मदर्शी बुद्ध एक ही कल्प में आये। वर्तमान कल्प से ९४ कल्प पूर्व सिद्धार्थ (प्राचीन) बुद्ध आये। उनके आने के दो कल्प के बाद तिष्य एवं पुष्य नामक बुद्ध आये। उसके भी अगले कल्प में विपश्यी बुद्ध हुए। वर्तमान कल्प से ३१ कल्प पूर्व शिखी एवं विश्वम्भू नामक बुद्ध हुए।

वर्तमान भद्रक कल्प में ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप एवं गौतम बुद्ध हुए हैं। इसके बाद आगे आने वाले कल्पों में भविष्य के मैत्रेय आदि बुद्ध होंगे। आज के बौद्धों को बुद्धत्व की इस अनादि एवं अनंत परम्परा का शास्त्रीय बोध न होने से केवल गौतम बुद्ध के नाम पर उदरपूर्ति करते रहते हैं। इस प्रसंग में चित्रकूट की तुलसी पीठ के पक्षधरों के अतिरिक्त नवबौद्ध भी समयानुसार कुतर्क करने लगे हैं अतः पाठकों के हितार्थ मैं बौद्धग्रंथों से ही नवबौद्धों का खण्डन करता हूँ।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं ब्रह्मा विष्णु महेश आदि किसी देवता को नहीं मानूंगा।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् तथागत बुद्ध बोधिसत्व वज्रगर्भ से –

इन्द जम जल जक्ख भुत वह्नि वायु रक्ख।
चन्द सुज्ज माद बप्प तलपाताले अट्ठसप्प स्वाहा॥
(हेवज्रतन्त्र, हेवज्रसर्वतन्त्रमुद्रणपिण्डार्थ, श्लोक – ९१)

इन्द्र, यम और जल हमारी रक्षा करें। भूत, अग्नि, वायु भी रक्षा करें। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी और ब्रह्मा, नीचे पाताल में अष्टसर्प भी रक्षा करें।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं ओमकार आदि पर विश्वास नहीं करता हूँ।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् तथागत बुद्ध बोधिसत्व वज्रगर्भ से कहते हैं –

ओं अकारो मुखं सर्वधर्माणामाद्यनुत्पन्नत्वात्॥
(हेवज्रतन्त्र, हेवज्रसर्वतन्त्रमुद्रणपिण्डार्थ, श्लोक – ९३)

ओंकार सभी धर्मों का मुख है, क्योंकि यह सभी धर्मों का उत्पत्ति स्थान है।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी को नहीं मानता और उनकी पूजा नहीं करता।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् तथागत बुद्ध बोधिसत्व वज्रगर्भ से कहते हैं –

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्राश्च वैवस्वत विनायकः। नैर्ऋतिर्वेमचित्री च गौर्यादीनां तु विष्टरम्॥
(हेवज्रतन्त्र, हेवज्राभ्युदय, श्लोक – ३७)

ब्रह्मा, इन्द्र, उपेंद्र (विष्णु), रुद्र (महेश), वैवस्वत (यम), विनायक (गणेश), नैर्ऋति, वेमचित्री ये सब गौरी के आसन हैं। (श्रीदेवी के सिंहासन के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव का वर्णन सनातन धर्म भी करता है।)

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। एते पञ्चमहाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः॥
(महाकालसंहिता)

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मूर्तिपूजा आदि पाखण्ड है, ग्रहों की पूजा अंधविश्वास है।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् चण्डमहारोषण भगवती द्वेषवज्री से कहते हैं –

एवं वेणुमयं गन्धर्वं साधयेत्, वाल्मीकमृण्मयं गरुडं, देवदारुमयान् देवान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरेन्द्रकामदेवादीन्..... एवं सूर्यं चन्द्रं मङ्गलं बुधं बृहस्पतिं शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं च नवग्रहम् ॥

(श्रीचण्डमहारोषणतन्त्र, द्वादश पटल, श्लोक – १७-१८)

इस प्रकार बांस के बने हुए गन्धर्व, दीमक की बाम्बी की मिट्टी के बने गरुड़, देववृक्षों (देवदार, पीपल, आम, नीम, बरगद, पलाश, शमी आदि) की लकड़ी के बने हुए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, कामदेव आदि ..... और इसी प्रकार से सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु की साधना करे।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं स्वर्ग नरक आदि में विश्वास नहीं करता हूँ। देवी देवता नहीं होते हैं।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् मैत्रेय बुद्ध का शारिपुत्र आदि के प्रति उपदेश –

देवानां दिवि दिव्यदुन्दुभिरवो यद्वत् स्वकर्मोद्भवो,
धर्मोदाहरणं मुनेरपि तथा लोके स्वकर्मोद्भवम् ॥

(महायानोत्तरतन्त्रशास्त्र, कृत्यक्रियाधिकार, श्लोक – ३४)

देवताओं का स्वर्ग में दिव्यदुन्दुभि का स्वर जैसे उनके अपने कर्मों के प्रभाव से जन्य है, उसी प्रकार भगवान् के धर्म का घोष भी लोक में उनके स्वकर्मों के ही कारण है। गुरुभक्तिरहित, अयोग्य, एवं रहस्य को अनधिकारी के समक्ष प्रकाशित करने वाले शिष्य की गति भगवान् चण्डमहारोषण भगवती द्वेषवज्री से कहते हैं –

यमदूतैस्ततो ग्रस्तः कालपाशवशीकृतः। नरकं नीयते पापी यदि बुद्धैरपि रक्षितः ॥
यदि कर्मक्षयाद्दुःखं भुक्त्वा च लक्षवत्सरम्।
मानुष्यं प्राप्यते जन्म तत्र वज्रेण भिद्यते ॥

(श्रीचण्डमहारोषणतन्त्र, तन्त्रावतार पटल, श्लोक – १३-१४)

यमदूतों के द्वारा पकड़े जाने बाद कालपाश में बंधकर वह पापी नरक में ले जाया जाता है। यदि साक्षात् बुद्ध भी चाहें तो उसकी रक्षा नहीं कर सकते। उसके बाद नरक में उस दुःख को एक लाख वर्षों तक भोगने पर जब कर्मक्षय होता है और यदि मनुष्य जन्म में आ जाता है तब भी यहां उसके ऊपर वज्रपात हो जाता है।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं ध्यान, योग आदि में विश्वास नहीं करता। विचित्र आकृति वाले देवी देवताओं का ध्यान अंधविश्वास है।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् सर्वतथागत कायवाक्चित्त वज्राधिपति वज्रधर ने तथागत अक्षोभ्यवज्र, तथागत वैरोचनव्रज, तथागत अमितायुवज्र, तथागत रत्नकेतुवज्र एवं तथागत अमोघसिद्धिवज्र को इसी जन्म में बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए जिन देवताओं के जिस रूप के ध्यान का उपदेश किया, उनमें से एक उदाहरण देखें –

हयग्रीवं महाक्रोधं कल्पोद्दाहमिवोद्भवम्। त्रिमुखं दुष्टपदाक्रान्तं भावयेद्योगभावतः॥
(श्रीगुह्यसमाजतन्त्र, त्रयोदश पटल, श्लोक – ९८)

कल्पों को दहन करने के समान तेज से युक्त, महाक्रोधयुक्त तीन मुखों से युक्त, दुष्टों को पैरों के नीचे रौंदते हुए, भगवान् हयग्रीव का योगबल से ध्यान करना चाहिए।

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – मैं पुनर्जन्म आदि में विश्वास नहीं करता हूँ। देवताओं की पूजा, हवन आदि पाखण्ड है। भूत और भविष्य की घटनाओं को जानने का दावा करने वाले अंधविश्वासी हैं।

बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् कृष्णयमारि ने मैत्रेय आदि सर्वतथागत बुद्धों को उपदेश करते हुए कहा –

दुष्टमैत्री सदा त्याज्याऽधर्मं नैव प्रमाणयेत्।
श्राद्धसत्वं न वै वञ्चेत् समयान्सेवयेत् सदा॥
स्त्रीणां प्रज्ञास्वभावानां दूषणाद्दोष एव च। भिक्षां नैवभ्रमेद्योगी योगं नैव विवर्जयेत्॥
(श्रीकृष्णयमारितन्त्र, सप्तदश पटल, १५-१६)

योगी को चाहिए कि दुष्टों से मित्रता करना छोड़ दे, अधर्म को प्रमाण मानकर आचरण न करे, श्रद्धायुक्त कर्म से वञ्चित न रहे और समयानुसार इन्द्रियों का संयमन करे। स्त्रियों एवं विद्वानों की निंदा न करें क्योंकि इससे दोष लगता है। केवल भिक्षा मांगने के लिए ही भ्रमण न करे, साथ ही योगाभ्यास का कभी परित्याग न करे।

भगवान् शाक्यमुनि गौतम बुद्ध उपदेश करते हैं –
प्रतिसेनां यथादर्शे कुमारी पश्येदवस्तुजाम्। अतीतानागतं धर्मं तत्त्वयोग्यम्बरे तथा॥
(कालचक्रतन्त्र, षडङ्गयोगप्रकरण, श्लोक – ०६)

जैसे आईने में कुमारी अपनी प्रतिसेना में अनेक अप्रत्यक्ष वस्तुओं को देखती हैं, जहां वस्तुतः कोई पदार्थ नहीं होता है, वैसे ही योगीजन भी आकाश में अतीत (भूतकाल) एवं अनागत (भविष्य) के पदार्थों को देखते हैं।(प्रतिसेनावतार तन्त्र में आईना, खड्ग, अंगूठा, दीपक, चन्द्र, सूर्य, जलकुण्ड एवं नेत्र आदि आठ पदार्थों को प्रतिसेना कहा गया है)

दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान्मृत्युरिति स्मृतः।
मृत्योः पुनर्भवस्तेषां भवान्मृत्युश्च्युतिः पुनः॥
(कालचक्रतन्त्र, मलप्रकरण, नरोत्तमपादविरचिता सेकोद्देशटीका, श्लोक – ११-१२)

दुःख से धातुक्षय, धातुक्षय से मृत्यु होती है। मृत्यु से पुनर्जन्म होता है और पुनर्जन्म के बाद फिर मृत्यु और उससे च्युति (पतन) होती है।

भगवान् शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने दीपङ्कर बुद्ध के द्वारा पूर्वकाल में दिए गए मन्त्रोपदेश को शम्भलपुर के राजा सुचन्द्र के अनुरोध पर उन्हें देवताओं के पूजन की विधि का उपदेश करते हुए जो कहा, उसपर बौद्ध विद्वान् नरोत्तमपाद (नारोपापाद) की टीका देखें –

सर्वेषां नामपूर्वं प्रणवं देयम्। अर्चने सर्वकर्मणि नमोऽन्ते नाम्नो भवति।
प्रत्येकं कर्मणि पुष्ट्यादौ स्वाहान्तो वेदितव्य इति।
(कालचक्रतन्त्र, दीक्षाप्रकरण)

सभी देवताओं के नाम से पहले ॐ लगाना चाहिए। पूजा के अवसर में नामों के अन्त में नमः लगाना चाहिए। प्रत्येक पुष्टि कर्म में स्वाहा लगाना होता है। (नेपाल के अभिलेखागार में स्थित देववर्मा के द्वारा लिखित सिद्धचरितम् की हस्तलिखित प्रति के अनुसार नरोत्तमपाद चौरासी बौद्ध सिद्धों में एक हैं। ये कश्मीरी ब्राह्मण थे एवं वहां के राजपुरोहित भी थे। इनका नाम बौद्ध गुरु तिलिप्पा से दीक्षा लेने बाद नारोपापाद हो गया था। कहीं कहीं लोग इन्हें शुभवर्मा नामक राजा के पुत्र अथवा कुछ लोग शूद्रवर्ण के व्यक्ति के रूप में भी जानते हैं)

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – सभी लोग समान हैं, वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था काल्पनिक और अंधविश्वास से भरी हुई है।
बुद्धवाक्यों से खण्डन – मायापुत्र चण्डरोषण को भगवती प्रज्ञापारमिता, जातियों का वर्णन करते हुए उपदेश करती हैं –

ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैश्या शूद्री चात्यन्तविस्तरा।
कायस्थी राजपुत्री च शिष्टिनी कर-उत्तिनी॥
वणिजिनी वारिणी वेश्या च तरिणी चर्मकारिणी।
कुलत्रिणी हत्रिणी डोम्बी चाण्डाली शवरिणी तथा॥
धोबिनी शौण्डिनी गन्धवारिणी कर्मकारिणी।
नापिती नटिनी कंसकारिणी स्वर्णकारिणी॥
कैवर्ती खटकी कुण्डकारिणी चापि मालिनी।
कापालिनी शंखिनी चैव वरुडिनी च केमालिनी॥
गोपाली काण्डकारी च कोचिनी च शिलाकुटी।
थपतिनी केशकारी च सर्वजातिसमावृता॥
(श्रीचण्डमहारोषणतन्त्र, स्वरूपपटल, श्लोक – ०४-०९)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियां हैं। इसके अतिरिक्त विस्तार में समझने के लिए कुछ उदाहरण हैं – कायस्थ, राजपुत्र (राजपूत आदि), ... वेश्या ... चमार ... डोम ... चाण्डाल ... शबर (वनवासी) .... धोबी ... इत्र का काम करने वाले गन्धी, लोहार, नाई, अभिनय करने वाले नट, कांसे का काम करने वाले ठठेरा, सुनार, मल्लाह-केवट, खटीक, खुदाई करने वाले खनिक, माली .... ग्वाला, शस्त्र बनाने वाले कर्मकार/कर्माकर, पत्थर तोड़ने वाले ... कुशियार ... आदि आदि सभी जातियां हैं।

(यहां जाति शब्द के कारण एवं देवीरूप से व्याख्या होने से सभी जातियों के स्त्रीलिंग नाम श्लोक में वर्णित हैं, साथ ही बौद्धागमों में लौकिक शब्द भी कहीं कहीं प्रयुक्त हैं)

नवबौद्ध अम्बेडकरवादी – धर्म कुछ नहीं है। धर्म केवल काल्पनिक है और अंधविश्वास है। बुद्धवाक्यों से खण्डन – भगवान् तथागत मैत्रेय बुद्ध धर्म की दुर्गम्यता को बताते हुए उपदेश करते हैं –

यथा सूक्ष्मान् शब्दाननुभवति न श्रोत्रविकलो,
न दिव्यश्रोत्रेऽपि श्रवणपथमायान्ति निखिलम्।

तथा धर्मः सूक्ष्मः परमनिपुणज्ञानविषयः,
प्रयात्येकेषां तु श्रवणपथमक्लिष्टमनसाम् ॥
(महायानोत्तरतन्त्रशास्त्र, कृत्यक्रियाधिकार, श्लोक – ४१)

जैसे कान खराब हो जाने पर व्यक्ति सूक्ष्म शब्दों को नहीं सुन सकता और दिव्य कान के होने पर भी सभी विषय नहीं सुने जाते सकते। (रूप, रस, गन्ध आदि अश्रौत विषयों को दिव्य कान भी ग्रहण नहीं करते) उसी प्रकार धर्म अत्यंत सूक्ष्म है, अत्यंत निपुण व्यक्ति को ही इसका ज्ञान हो सकता है। यह वस्तुतः अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धि एवं शान्त मन वालों के द्वारा ही सुना और समझा जा सकता है।

यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पायिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूप रसं यथा ॥
मुहूत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिव्हा सूपरसं यथा ॥
(धम्मपद, बाल-वग्गो, श्लोक – ०५-०६)

भगवान् शाक्यमुनि गौतम बुद्ध उपदेश करते हैं – मूर्ख व्यक्ति चाहे जन्मभर पण्डितों की संगति में रहे, वह सच्चे धर्म को नहीं जान सकता जैसे कड़छी दाल में डूबी रहकर भी उसके स्वाद को नहीं जानती। बुद्धिमान् व्यक्ति चाहे मुहूर्तमात्र के लिए भी पण्डितों की संगति में रहे, वह उसी प्रकार से सच्चे धर्म को जान लेता है जैसे जिह्वा दाल के स्वाद को पहचान लेती है।

यहाँ एक छोटी शंका हो सकती है कि जब गौतम बुद्ध स्वयं भगवान् विष्णु के ही अवतार हैं तब उनके इतने जन्मों का वर्णन क्यों है ? इसका उत्तर है कि अर्जुन भी नारायणभ्राता नर के अवतार थे किन्तु पराशर संहिता में उनके भी विजयसंज्ञक पूर्वजन्म का वर्णन है। भगवान् नारद जी भी विष्णु के अवतार हैं किन्तु गन्धर्वकुल, शूद्रकुल आदि में उनके पूर्वजन्म का वर्णन श्रीमद्भागवत आदि में वर्णित है। आवेशावतार, अंशावतार आदि में ऐसा होना सामान्य बात है, क्योंकि इनमें जीवांश भी होता है जो कर्मप्रारब्ध का निर्माण करता है। उपर्युक्त सभी ग्रंथों को बौद्धों के सर्वोच्च धर्मगुरु दलाई लामा समेत सभी मान्य प्राचीन एवं नवीन बौद्ध विद्वानों का पूर्ण समर्थन और प्रामाणिकता प्राप्त है।

चौदहवें दलाई लामा तो कालचक्रतन्त्र आदि के प्रचार प्रसार और अनुसरण में ही पूरा जीवन लगा दे रहे हैं। बुद्ध के नाम पर देश में वैमनस्य एवं धर्मद्रोह की शृंखला प्रारम्भ करने वाले राजनैतिक गृद्धों को यदि भगवान् शाक्यमुनि गौतम, मैत्रेय, यमारि, अमिताभ बुद्ध आदि के ही उपदेशों के शास्त्रोक्त प्रारूप के अध्ययन का अवसर मिल जाये तो उनका कुछ कल्याण ही होगा। वाल्मीकीय रामायण के काल में भी बुद्ध एवं बौद्धों की उपस्थिति इस प्रकार से सिद्ध होती है, जहाँ प्रक्षिप्तवाद का कोई स्थान नहीं है। अंत में मैं नारायण कवच के वचन के अनुसार यह प्रार्थना करता हूँ कि भगवान् विष्णु के अवतार सभी बुद्ध पाखण्ड एवं आलस्य से हमारी रक्षा करें – बुद्धस्तु पाखण्डगणात्प्रमादात्॥

| इति शम् |

नवम भाग

हिन्दू समाज गिर रहा है। गिरने का अर्थ सभी प्रकार से है। राजनैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, वैचारिक, धार्मिक, हर प्रकार से गिर रहा है। पहले नभोमंडल में था यह समाज, आज धरातल पर है। इसे एक नया शौक चढ़ गया है। अब इसे रसातल जाना है। रसातल जाने में अगर भूतल बाधक बने तो बोरिंग करके इसे रसातल जाना है, लेकिन जाना है। इसका कारण जानते हैं, क्या है ? धार्मिक, राजनीतिक आदि बड़ी बातें छोड़ भी दें, तो वैयक्तिक स्तर पर भी इसके चार कारण हैं -

१) स्वयं के हिन्दू होने पर घमंड !
२) मस्तिष्क की अपेक्षा वाणी का अधिक सक्रिय रहना।
३) स्वयं को पूर्ण और सबसे अधिक समझदार मानकर बिना वस्तुस्थिति को समझे ही प्रतिक्रिया देना।
४) ग्रंथोल्लिखित बातों की अपेक्षा मन:कल्पित बातों को प्रधानता देना।

हिंदुओं में एक नया स्वभाव आया है। हम इसे कहते हैं - 'मार लाठी' का स्वभाव। बिना सोचे समझे, बस लाठी पटक देनी है। हिन्दू सहमा हुआ है, हिन्दू डरा हुआ है। वह डरता है कि कहीं उसके सामने कोई उसके धर्म के विषय में कोई आपत्ति न कर दें और वह डरता है इस बात से कि कहीं वह उत्तर न देने के कारण "बुरा" तो नहीं बन जायेगा। कहीं यदि वह मान ले कि शम्बूक वध हुआ था, तो संसार उसे और उसके रामजी को अधर्मी तो नहीं कहेगा। वह डरता है कि यदि वह सीतात्याग को सही मान लेता है तो कहीं उसपर नारीविरोध का ठप्पा तो नहीं लग जायेगा ? इसीलिए हिन्दू लाठी पटकने लगता है। सामने फण फैलाया सर्प हो तो बेसुध आदमी कहीं भी लाठी मारता रहता है, यही हाल हिन्दू समाज का है।

हिन्दू समाज के पास परम्परागत शास्त्रीय शिक्षा का अभाव है। यह अभाव स्वार्थी एवं फर्ज़ी धर्मगुरुओं तथा कुचक्री शासन तन्त्र के द्वारा पिछली चार पांच पीढ़ियों में उत्पन्न किया गया है। आप किसी व्यक्ति के पास जाएं और उसकी बेटी का नाम बोलें, कहें कि इतने बजे, अमुक विद्यालय जाती है और वहां से इतने बजे लौटती है, अमुक कक्षा में पढ़ती है, मैं देख लूंगा तुझे। अब भले वह व्यक्ति आपको न जानता हो, किन्तु सदैव

आशंकित और चिंतित रहेगा। इसके लिए कुछ संसाधन लगा ? नहीं। बस एक छोटा सा अभिनय ... आपके मन में यह बात डाल दी जाए कि आपकी पत्नी या पति चरित्रहीन है, तो भले वह कितना भी शुद्ध क्यों न हो, आपका मन प्रत्येक बात पर संदेह करने लगेगा। यदि इसी बात को अलग अलग विधियों से दो चार और लोगों से कहलवा दें, तो फिर ?

उनकी वाणी आपके लिए प्रमाण बन जाएगी और आपका प्रेम एवं विश्वास ही संदिग्ध हो जाएगा। आखिर, किसका फोन था ! अचानक कहाँ चले गए ? हमारे बाद घर में कौन कौन आता है, क्यों आता है, आदि आदि। आपका दृष्टिकोण ही बदल जायेगा। क्या इसके लिए आपके जीवन में कोई बड़ा षड्यंत्र करके, बहुत पैसा खर्च करके, बहुत व्यवस्था बनाकर कुछ करना पड़ा ? नहीं। बस आपके मन में एक बात डालनी पड़ी। आपको क्या लगता है, हमारे सनातनी ग्रंथों में मिलावट है ? प्रक्षिप्त हैं वे ? अच्छा ठीक है। एक उदाहरण देखिए।

मान लीजिए, मैं एक ऋषि या ग्रन्थकार हूँ, मैंने एक ग्रंथ लिखा जो मुझे पूरा अक्षरशः स्मरण है। फिर मैंने उसे अपने शिष्यों को पढ़ाया और पूरा याद करा दिया। साथ ही मैंने उसे लिपिबद्ध करके उन्हें दे दिया और उन्होंने भी उसे लिपिबद्ध करके अनेकों स्थान पर प्रसारित किया। उन्होंने आगे इसकी परम्परा बढ़ाई। अब वो ग्रंथ सहस्रों विद्वानों को स्मरण है और उसकी अनेकों प्रतियां भी हैं। अंग्रेजों के आने के समय तक भारत में पांच लाख से अधिक गुरुकुल थे।

मैं सारे ग्रंथों की बात नहीं करता, किंतु जो प्रधान और आधारभूत प्रसिद्ध, वेद, उपनिषत्, पुराण, स्मृति, रामायण आदि हैं, उनमें से उदाहरण के लिए रामायण की उपलब्धता प्रत्येक "सौ गुरुकुल" में कम से कम एक प्रति की तो होगी। मान लिया कि आचार्यों को स्मरण था सब कुछ, तो सभी लोग लिखित में नहीं रखते थे किंतु फिर भी प्रत्येक सौ गुरुकुल में एक लिखित प्रति तो होगी ? ये बहुत बड़ा अनुपात रख रहा हूँ, फिर भी कम से कम सौ में से एक गुरुकुल के पास तो लिखित में रामायण होगी ?

अब पूरे भारत में सभी गुरुकुल, विश्वविद्यालय, मठ, आश्रम आदि मिलाकर कम से कम ५००० प्रतियां तो होंगी ! प्रक्षिप्त करने वाले दो काम कर सकते हैं, या तो मूल प्रतियों के बीच में स्थान स्थान पर अपने से लिखकर जोड़ देते, या नए पन्ने सम्मिलित कर देते, अथवा स्वयं से ही नई प्रतियां बनाते, जिसमें नकली भागों को जोड़ते जाते। अब दोनों ही स्थितियों में बड़ी समस्या है। यदि पहले वाली प्रतियों में मिलावट करते तो दो बातें उन्हें

फंसा देतीं। हस्तलिखित प्रति है तो लेखन शैली में भेद हो जाता। दूसरे, जिनके पास वो प्रति है, वो स्वयं उसका ज्ञाता है तो नकली अंश पहचान कर विरोध करता। यदि मिलावट करने वालों ने अपनी नई प्रतियां बनाई थीं, तो भी एक एक प्रति के लेखन में कई वर्ष लगते। साथ ही यदि अलग अलग व्यक्तियों ने मिलावट की है तो यह कैसे पता चलता था उन्हें कि कहां पर कौन सा श्लोक मिलाना है ? इसका मतलब कि एक दो प्रतियों में ही मिलावट कर पाते। हर मिलावट एक दूसरे से भिन्न होती और पकड़ में आ जाती।

यदि हम कहें कि एक ही आदमी ने किया, जैसा कि प्रक्षिप्तवादी जगद्गुरु जी ने टीवी चैनल में कहा कि गुणाढ्य नामक बौद्ध ने रामायण में मिलावट की। तो वह गुणाढ्य नामक बौद्ध अकेला कर रहा था क्या ? यदि हां, तो अपने पूरे जीवन में एक ही ग्रंथ में मिलावट करने और उसकी नई मिलावटी प्रतियाँ बनाने में उसे अधिक से अधिक दस, बीस या पचास प्रतियां बनाने का ही अवसर मिला होगा। यदि वह पहले से उपलब्ध मूल प्रतियों में अलग से जोड़ रहा था तो जिन गुरुकुलों में वो प्रतियां थीं, जो आचार्यगण उनके माध्यम से रोज पढ़ा रहे थे, उन्हें भनक तक न लगी ? कि कल तक तो ये अंश न था और ऊपर से हस्तलिपि भी नहीं मिल रही।

यदि कहें कि अकेला था, तो अकेला आदमी हज़ारों नई मिलावटी प्रतियां नहीं बना सकता और प्रयास भी करे तो अकेले बहुत अधिक दिन नहीं कर सकता। साथ ही उसकी प्रतियां प्रसिद्ध भी न होंगी, क्योंकि उस समय इंटरनेट आदि भी न था, रहने से भी बाकी विद्वान् तुरन्त पकड़ लेते। यदि कहें कि अकेला नहीं, बहुत लोग थे, तो फिर सबको कैसे ज्ञात था कि कहां पर क्या श्लोक या काण्ड मिलाना है ? एक सा मिलावट किया सबने ?

यदि कहें कि एक संस्था ने बहुत से लोगों से करवाया, तो बाकी विद्वानों को उन प्रतियों के समाज के सामने आने पर क्यों पता नहीं चला ? उन्होंने कुछ विरोध क्यों नहीं किया ? उन्होंने कहीं अपने ग्रंथ, भाष्य आदि में यह क्यों नहीं लिखा कि रामायण, महाभारत, पुराण आदि में अमुक अमुक बात प्रक्षिप्त है, सावधान रहें। उल्टे यह देखने को मिलता है कि उन्होंने कलियुग की संभावना देखते हुए कहा कि सावधान ! कोई इनकी लीला के रहस्यों को न समझने से आगे के काल में इन्हें प्रक्षिप्त कह सकता है, मत फंसना।

प्रक्षिप्तवादी तो ऐसे कहते हैं, मानो सारे ग्रंथ एक कॉमन राऊटर से एक ही सर्वर पर थे। मुख्य डेटाबेस में घुस कर किसी ने एक फ़ाइल बदल थी तो सारे प्रति बदल गए। हमारे किसी ग्रंथ में कोई मिलावट नहीं है। सम्भव ही नहीं था, इसीलिए विधर्मियों ने चाल

चली। मानो अपने चार एजेंट बनाये। दो को विदेशी रखा, दो को देशी। विदेशियों को प्रोफेसर और इतिहासकार घोषित कर दिया एवं देशियों को गेरुआ वस्त्र पहनाकर संन्यासी बना दिया। एक दो से लिखवा दिया कि ग्रंथों में मिलावट है, एक दो से यही बात कुछ शोध के नाम पर फिर आगे लिखवा दी। इसके अलावा गुरुकुलों को बंद कर दिया और अफवाह उड़ा दी कि घर में रामायण रखने से, महाभारत रखने से झगड़े होते हैं। घरों से ग्रंथ निकलवा दिए, गुरुकुल बन्द करवा दिए, मस्तिष्क में बात डाल दिये कि ग्रंथों में मिलावट है। बाकी काम हिंदुओं के 'मार लाठी' के भय से स्वतः कर दिया।

इसके बाद शुरू हुआ एक दौर, जहां से विधर्मियों ने प्रहार करना प्रारम्भ किया। रामजी ने ऐसा क्यों किया ? कृष्ण ने ऐसा क्यों किया ? अमुक बात शोषण का प्रमाण है, अमुक बात में अश्लीलता है, आदि आदि। हिन्दू समाज को ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने की आदत थी नहीं। वह तो अब तक ग्रंथों पर श्रद्धा रखता आया था। उनकी आलोचना करके की कुबुद्धि उसमें थी ही नहीं, इसीलिए तर्क तैयार न थे। उसने एक सरल रास्ता निकाला, दुबक गया। लड़ा ही नहीं। उसने कह दिया कि किसी ने बाद में मिलावट कर दी होगी, प्रक्षिप्त कर दिया होगा। और "कर दिया होगा" ये कहते कहते, प्रक्षिप्तवाद इतना गहरा हो गया कि अब जो बात समझ में न आये, उस पर सीधे कहते हैं, "प्रक्षिप्त कर दिया है"।

सारे संसार की भूमि ढंकना तो सम्भव है नहीं, इसीलिए हम चप्पल पहन लें, पैर को ही ढक लें। वैसे ही इतने विस्तृत और सर्वमान्य, सर्वसिद्ध ग्रंथों को प्रक्षिप्त करना सम्भव तो था नहीं, इसीलिए हिंदुओं के दिमाग को ही प्रक्षिप्त कर दिया। यदि किसी के लिये पूरा संसार दुर्गंधमय कर देना है तो ऐसा सम्भव ही नहीं है, तो एक ही काम कीजिये। उसके गालों में दुर्गंध लगा दीजिये और दिमाग में बैठा दीजिये कि संसार में दुर्गंध है। अब वह व्यक्ति जहाँ भी जाएगा, दुर्गंध ही पायेगा। ऐसे ही हिंदुओं के दिमाग में डाल दिया कि ग्रंथ प्रक्षिप्त हैं। अब हिन्दू जिस भी ग्रंथ को देखता है, उसे जो बातें समझ में नहीं आती हैं, या जहां भ्रम होता है, उसे प्रक्षिप्त कह देता है। यही है इस षड्यंत्र का घृणित सत्य।

कुछ लोग तो सामान्य स्वरूपभेद से भी ग्रन्थों पर प्रश्न खड़े कर देते हैं। पूछते हैं कि वेदों में वर्णित इंद्र और पुराणों में वर्णित इंद्र में इतना भेद क्यों प्रतीत होता है ? अतएव पुराण ही गलत हैं। बन्धु ! आपको बस "प्रतीत" होता है क्योंकि वेदों में इंद्र (पद) की शक्तियों और विशेषता का वर्णन है और पुराणों में इन्द्रपद पर बैठने वाले अलग अलग इन्द्रों के द्वारा किये गए निजी कर्मों एवं घटनाओं का वर्णन है। वेदोक्त देवताओं में देवता का अर्थ

उस शाश्वत शक्ति वाले पद से है। पुराणों में उन पदों पर बैठने काले अलग अलग मन्वन्तर वाले देवताओं के द्वारा सम्पादित क्रियाओं का वर्णन है। इस भेद का कारण है कि वेदों में कालातीत दृष्टि से वर्णन किया जाता है तथा पुराणों में कालानुगत दृष्टि से। अतएव पुराण के लक्षणों में मन्वतर नाम का एक कालसूचक लक्षण भी है।

सीतात्याग एवं अग्निपरीक्षा के आक्षेपों के सन्दर्भ में वामपंथ-प्रायोजित नारीवादियों के विरुद्ध हमने कुछ समय पूर्व दो बातें कहीं थीं -
१) कैकेयी ने सीता जी के चरित्र पर दोषबुद्धि दिखाकर उन्हें वनवास दिलाया।
२) केवल सीताजी ने ही चरित्र की परीक्षा नहीं दी थी, राम जी को भी देना पड़ा था जब सीताजी ने उनपर वेश्यागमन का आरोप लगाया था।

अब इन दोनों बातों पर "मार लाठी" दल के लकड़बग्घे चैतन्य हो गए और हमें गालियां देने लगे। ये लोग तब सोये रहते हैं जब ग्रंथों को गालियां पड़ती हैं, प्रक्षिप्तवाद के नाम पर उनकी हत्या की जाती है। अस्तु, हमें इनकी परवाह नहीं हैं। ऐसे लोग स्वतन्त्र अध्ययन करते नहीं, इसीलिए इनकी प्रतिक्रिया का कोई अस्तित्व ही नहीं है। कुछ लोग तो मुझपर ये भी आरोप लगाने लगे कि मैं प्रसिद्धि के लिए ऐसे विवादित वाक्य कह रहा हूँ, मैं धर्मद्रोही हूँ, मैं पाखण्डी हूँ आदि आदि।

मुझे बताओ, मैंने तुम्हें या किसी को कभी कहा कि मुझे धन, वस्त्र, जमीन, वाहन आदि दान करो ? मैंने कभी कहा कि आओ मेरे शिष्य बन जाओ ? मैंने आज तक जितने लेख लिखे, जितने प्रवचन किये, जिनकी संख्या सैकड़ों में हैं, उनमें से एक भी बात ऐसी है क्या, जिसका प्रमाण मैंने श्लोक, ग्रंथ, पूरे सन्दर्भ के साथ नहीं दिया हो ? फिर ... ? यदि मुझे प्रसिद्ध ही होना होता, तो अब तक किसी संस्था, पार्टी आदि से जुड़ गया होता, वे लोग तो रातों रात चमका देते, यूं एक धोती ओढ़कर और एक धोती लपेट कर जंगल पहाड़ों की खाक छानता नहीं रहता। यदि मैं प्रसिद्ध हो भी रहा हूँ, तो समस्या क्या है ? प्रसिद्ध होना अपराध है ? पाप है ? लोग आडम्बर करके, भगवा पहनकर वेश्यावृत्ति करके प्रसिद्ध हो रहे हैं। यदि मैं शास्त्रसिद्ध वाक्यों को कहने से प्रसिद्ध हो रहा हूँ तो गलत ? जो कथित धर्मगुरु पहले से प्रसिद्ध हैं और समाज में पाखण्ड फैला रहे हैं, उनके विषय में कभी आपने कुछ कहा कि समाज को उन्हें प्रसिद्ध नहीं करना चाहिए ? अस्तु, मैंने पहले ही कहा, आज का हिन्दू मस्तिष्क का कम एवं वाणी का प्रयोग अधिक करता है।

मैं सबसे पहले प्रथम बिंदु पर आता हूँ, कैकेयी प्रसङ्ग पर। ये सारी कथाएं वाल्मीकि जी ने आनन्द रामायण में लिखी हैं। आनन्द रामायण वाल्मीकि जी की लिखी चार रामायणों में से एक है। उनकी चार रामायण हैं, आर्ष, अद्भुत, आनन्द और योगवासिष्ठ। उसमें केवल आर्ष को ही जनसामान्य वाल्मीकीय रामायण के नाम से जानते हैं। वास्तव में चारों रामायण वाल्मीकीय ही हैं।

आनन्द रामायण में इतने गुप्त कथानक हैं कि श्रीराम जी ने अपने काल में ही इसके पढ़ने पर रोक लगा दी थी, जैसे सरकार गुप्त कागजातों को छिपा देती है, क्योंकि इसमें देवताओं के, श्रीराम जी के कई अत्यंत दिव्य वृत्तान्त एवं कथाएं वर्णित हैं, जिनके प्रभाव से लोग देवताओं के ही समान तेजस्वी हो जा रहे थे और समाज का संतुलन बिगड़ रहा था। इन सब बातों को प्रामाणिक श्लोकों के साथ जानने के लिए इस शृंखला का भाग ०२ पढ़ें। बहुत विस्तार से उसमें वर्णन कर चुका हूँ, एक एक बात को।

मैंने इस शृंखला के भाग दो में, महाभारततात्पर्यनिर्णय नामक ग्रंथ से से पवनावतार श्री मध्वाचार्य जी के निर्णय वाक्य का प्रमाण देते हुए सिद्ध किया था कि ब्रह्माजी ने श्रीराम जी को कहा कि हालांकि आपने कैकेयी को क्षमा कर दिया है किंतु मैंने उसे निकृति नामक नरक में कुछ समय के लिए भेजा है, इसीलिए वो आपके दिव्यधाम में विलंब से जाएगी। यहां कुछ लोगों को शंका हुई थी कि जब रामजी ने क्षमा कर दिया था तो फिर दण्ड किस बात का ? इसीलिए मुझे न चाहते हुए भी यह प्रसङ्ग बताना पड़ा, जिसपर बिना सोचे समझे, बौद्धिक लकड़बग्घे टूट पड़े।

ये सब प्रसङ्गों को वाल्मीकि जी ने आनन्द रामायण में लिखा है, जिसे रामजी की आज्ञा से ही अत्यंत गुप्त रखा गया था। केवल अत्यंत पुण्यात्मा, श्रद्धालु एवं शंकारहित व्यक्ति को ही इसे पढ़ने का सौभाग्य मिलेगा, ऐसा रामजी ने नियम बना दिया था। इसीलिए आनन्द रामायण का नाम सैकड़ों में से एक दो कथावाचक जानते हैं। उन सैकड़ों में से इन कथाओं को एक दो ही जानते हैं, और उन सैकड़ों में भी कोई एक दो ही इन्हें बताते हैं। किंतु जितने श्रेष्ठ पीठाधीश्वर, मान्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य जी आदि हैं, वे सभी इसे जानते और मानते हैं, बस समाज से छिपाया हुआ है।

सभी जानते हैं कि कैकेयी जी को मंथरा ने बहकाया था, जिसके कारण उन्होंने अद्भुत कुचक्र किया। (अब यहां ये न कहियेगा कि रामजी की ही इच्छा थी। वैसे देखेंगे तो पूरा संसार ही सृष्टि से संहार तक रामजी की इच्छा से चल रहा है। यहां उनकी लीला में जो काम जैसे हुआ, वैसे ही समझिए। फ़िल्म देखते समय ये नहीं कहते कि नायक को नकली गोली लगी है, सब पहले से प्रायोजित है, वहां जानबूझकर असली गोली समझकर दुःखी होते हैं।) तो इस घटना के लिए कैकेयी जी को ही निमित्त क्यों बनाया गया ? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ गुण या अवगुण होता है। कैकयी जी में अंदर ही अंदर स्वार्थ का एक बीज छिपा हुआ था, इसीलिए उन्हें निमित्त बनाकर देवताओं ने मंथरा के माध्यम से भगवान को रावण वध के लिए वनवास दिलवाया क्योंकि ऐसा ही पूर्व निश्चित था। नारद मुनि, भृगु ऋषि, शिवजी, वृंदा देवी, इत्यादि के श्राप के कारण राम जी को सीता जी से वियोग का कष्ट भी सहना था और भगवान ने वनवास के मध्य बहुत से पूर्वसंचित लीलाओं को पूरा किया।

देवताओं की प्रेरणा से ही कैकयी ने मंथरा की बात में आकर राजा दशरथ से राम वनवास का वरदान मांगा था, इसीलिए रामजी ने उन्हें क्षमा कर दिया और कहा था कि इस बात को लेकर जो कैकेयी को दोष देंगे वे भी नरक में जाएंगे। किंतु कैकयी ने अपने अंदर स्थित स्वार्थ को समाप्त करने में सफलता प्राप्त नहीं की थी, इसीलिए उनसे बाद में एक अपराध और हुआ था। इस बार उन्होंने सीता जी को वनवास दिलवा दिया। जब उन्होंने राजा दशरथ से राम वनवास का वरदान मांगा था तो उसमें लक्ष्मण और सीता जी का साथ में जाना निश्चित नहीं था, यह दोनों अपनी इच्छा से राम जी के साथ गए थे। किंतु इस बार कैकयी ने जो वनवास दिलवाया वह उसने प्रायोजित षड्यंत्र के आधार पर किया। मैं आपको इस प्रसङ्ग का सार बताते हुए मुख्य मुख्य श्लोकों का प्रमाण देकर पूरी कथा का वृत्तांत समझाता हूँ।

जैसा कि मैंने इस श्रृंखला के भाग एक में ही यह बात अनेकों ऋषिप्रणीत रामायणों एवं पुराणों के श्लोकों के शास्त्रीय आधार पर पूर्वापर प्रसङ्गों के साथ सिद्ध की थी कि -
१) बचपन में सीताजी के हठ के कारण एक गर्भवती पक्षिणी पतिवियोग से मृत्यु को प्राप्त होते हुए सीताजी को पतिवियोग का श्राप देती है।
२) उसके मरने पर उसके वियोग में नर पक्षी ने भी प्राण त्यागते हुए कहा कि मैं ही अगले जन्म में गर्भवती अवस्था वाली तुम्हें, तुम्हारे पति से वियोग कराऊंगा।

३) ये पक्षी ही अगले जन्म में धोबी बना और उसने गर्भवती सीताजी पर चारित्रिक रूप से आरोप लगाया।

४) इस आरोप को राजा जनक, जो उस समय अयोध्या में ही रह रहे थे, तथा श्रीराम जी ने सुना। अन्य लोग भी देखादेखी अनुचित बातें करने लगे।

५) राजा जनक, उनकी पत्नी, सीताजी, ऋषि वाल्मीकि और श्रीराम जी ने मिलकर यह तय किया कि सीताजी अब आगामी पांच वर्षों के लिए वाल्मीकि जी के आश्रम में ही रहेंगी एवं इसके लिए सारी व्यवस्था राजा जनक बना देंगे, तथा सीताजी के माता-पिता भी उनके साथ ही पूरे समय वन में रहेंगे, किन्तु इसके विषय में किसी को बताया नहीं जाएगा।

६) महल के बाहर तो अफवाहें थीं, किन्तु जब तक राजपरिवार से इसकी पुष्टि न हो, तब तक कोई ठोस बात बनती नहीं। कैकेयी ने इसका लाभ लेना चाहा। उन्होंने सोचा कि मेरे पुत्र भरत को राजा बनाने का एक और मौका मिला है और यह मौका स्वयं रामजी के माध्यम से पूरा होगा। अब आगे क्या घटना घटित हुई, यह देखें -

एतस्मिन्नन्तरे सीता कैकेयी रहसि स्थिता।
पप्रच्छ कौतुकात्सीते भित्तौ लेख्य दशाननम्॥

(जब ये सब घटनाएं घटित हो ही रही थीं, तब) सीताजी कैकेयी के साथ उनके महल में थीं। कैकेयी जी ने सीता को कहा कि हे सीते ! जरा इस दीवार पर रावण का एक चित्र तो बना दो।

मामत्र दर्शयस्वाद्य तां प्राह जानकी तदा।
मयाऽवलोकितो नैव कदापि स दशाननः॥

मुझे रावण को देखना है, तो तुम चित्र बनाकर मुझे दिखाओ। इस बात पर सीताजी ने कहा कि माते ! मैंने कभी रावण को देखा ही नहीं।

यदा हर्तुं पञ्चवट्यां मां प्राप्तो गौतमीतटे। तदा दृष्टस्तदङ्गुष्ठो मया दक्षिणपादजः॥

जब वह गौतमी (गोदावरी) के तट पर स्थित पंचवटी से मेरा हरण करके ले जा रहा था, तब मैंने उसके दाहिने पैर का अंगूठा देखा था। (सीताजी ने सत्य ही कहा, क्योंकि राम जी

के विरह में वो इतनी व्याकुल थीं कि रामचिन्तन में उन्होंने रावणदर्शन किया ही नहीं। दोनों में हुआ वार्तालाप सीताजी के लिए स्वप्नाभास जैसा था।)

तत्सीतावचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह तां पुनः।
यथा दृष्टत्त्वयाङ्गुष्ठस्तथा भित्तौ लिखष्व हि॥

सीताजी की ऐसी बात को सुनकर कैकेयी ने कहा - ठीक है। फिर जैसा तुमने उसका दाहिना अंगूठा देखा था, वैसा ही बना दो।

तथेति जानकी लेख्य तदङ्गुष्ठं भयानकम्। कैकेय्यै दर्शयामास तामामन्त्र्य गृहं ययौ॥

जो आज्ञा ! ऐसा कहकर सीताजी ने रावण का भयंकर अंगूठा अंकित कर दिया, कैकेयी को वह चित्र दिखाकर वे अपने महल को चली गईं।

अंगुष्ठोपरि कैकेय्या यथायोग्यो दशाननः। लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः॥

सीताजी के जाने के बाद कैकेयी ने उसी अंगूठे से आधार पर रावण का एक चित्र बना दिया और कुबुद्धि के कारण उसे राम जी को दिखाने की प्रतीक्षा करने लगी। (रामजी के राज्याभिषेक के समय अनेक वानर, राक्षस, विभीषण, सुग्रीव आदि थे, अगस्त्य आदि ऋषि थे। उन्होंने बहुतायत से रावण के साथ हुए युद्ध का, उसके स्वरूप का वर्णन किया था, तो कैकेयी जी को थोड़ा बहुत अनुमान तो था ही कि रावण कैसा दिखता होगा ! और साथ ही रावण का युद्ध अयोध्यावासियों से बहुत पुराना था। राजा मांधाता एवं अनरण्य के समय से था, तो लोगों ने उसे कई बार देखा था। उसी आधार पर अपने हिसाब से कैकेयी जी ने चित्र बना दिया) तब तक कुछ देर में राम जी भी आये।

रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽयं दशाननः।
कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति॥

रावण का चित्र दीवार पर बना हुआ देखकर रामजी ने पूछा, कि ये किसने बनाया ? कैकेयी ने उत्तर दिया, ये चित्र सीता ने बनाया है।

यत्र यत्र मनो लग्नं स्मर्यते हृदि तत्सदा।
स्त्रियाश्चरित्रं को वेत्ति शिवाद्या मोहिता: स्त्रिया॥

कैकेयी ने कहा - जिसका मन जहां जहां फंसा रहता है, हृदय उधर का ही चिंतन करता है। भला स्त्रियों का चरित्र किसी की समझ में आया है, स्त्रियों ने तो शिव जी तक को मोहित कर रखा है। (यहां लाक्षणिक भाव है तात्पर्य है कि शिव जैसा ज्ञानी भी हो तो भी कदाचित् स्त्रियों के कुचक्र को न समझ पाए)

इस बात को सुनकर रामजी स्तब्ध रह गए। अब यहां इस प्रसङ्ग में जो रहस्यमय वृत्तांत छिपा हुआ है, उसे ध्यान से पढ़ें और समझें। कैकेयी के मुंह से क्या निकल गया ? कि स्त्रियों के चरित्र को भला कौन जानता है ? इसी त्रिया चरित्र के चक्कर में एक बार कैकेयी जी ने पूरी अयोध्या को श्मशान सा शोभाहीन बना दिया था, राजा दशरथ को प्राण तक त्यागना पड़ा था। रामजी ने उस घटना का स्मरण करते हुए राजनीति का पालन किया। उन्होंने सोचा कि अपने घर में फिर से ऐसी बातें ? इसीलिए उन्होंने वास्तविक बात जानने के लिए कैकेयी को एक बहुत ही कठोर बात कही -

लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्ब श्वः सीतां जाह्नवी तटे।
सीताभुजं वने छित्वा समानयतु मद्गिरा॥

हे माँ ! मैं कल ही लक्ष्मण को कहकर, उसके माध्यम से सीता को गंगा के किनारे तक पहुंचा दूंगा और उसको कहूंगा कि सीता का हाथ काटकर लेते आये।

सौमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात्।
सीतया लिखितो यस्मात् स्वभुजेन दशानन:॥

सुमित्रानंदन लक्ष्मण उस कटे हुए हाथ को सभी नगरवासियों को अवश्य ही दिखाएंगे, जिस हाथ से सीता ने रावण का यह चित्र बनाया है।

स्त्रीहत्याभयमालक्ष्य तद्वधे लक्ष्मणो मया।
न चोदितश्च तां हिंस्रा भक्षयिष्यन्ति वै क्षणात्॥

(मैं तो लक्ष्मण से कहता कि सीता को मार ही डाले, किन्तु) स्त्री को मारने का पाप न लगे, इसीलिए मैं लक्ष्मण को ऐसा करके की प्रेरणा नहीं दे रहा, बस हाथ काटने को कहा है। बाद में वन के हिंसक पशु उसे स्वयं ही मारकर खा जाएंगे।

यहां पाठकगण तथा प्रक्षिप्तवादी जन एकदम भड़क जाएंगे कि ये बातें तो बिल्कुल मिलावटी हैं, रामजी ऐसा कह ही नहीं सकते, आदि आदि। किन्तु स्मरण रहे, रामजी ने यहां एक राजा के रूप में सोचा है। वे सत्य की जांच करने के लिए कैकेयी को उलझा रहे हैं। कोई भी स्त्री, जिसके मन में प्रायोजित कुटिलता न हो, जब ऐसा सुनती तो क्या कहती ? वह कहती कि एक चित्र के लिए सीता को त्यागने की क्या आवश्यकता है, उसपर भी जब वह गर्भवती है ? और त्यागना ही है तो हाथ क्यों काटते हो ?

लेकिन कैकेयी ने ऐसा विरोध नहीं किया, अपितु वह प्रसन्न हो गयी। कैकेयी तो रामजी के मन में सीताजी के प्रति घृणा भरना चाहती थी, तभी तो षड्यंत्र से स्वयं चित्र बनाकर सीताजी पर आरोप लगा दिया ! राम जी को इस षडयंत्र को प्रामाणिक रूप से समझने के लिए, कैकेयी के मन के अनुकूल बात बोलनी थी, जिससे कि उसे भ्रम हो कि वह अपने अभियान में सफल हो रही है, इसीलिए रामजी ने जानबूझकर कैकयी के मुख्य उद्देश्य को समझने के लिए ऐसे कठोर वचन कहे। इन वचनों को सुनकर कैकेयी का वास्तविक रूप सामने आ गया। आगे प्रसङ्ग देखें -

इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत्।
सीतया विरहाद्रामो नेदं राज्यं प्रशास्यति॥
सेवार्थं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शास्यति।
तदा श्रीरामवाक्येन भरतो मे प्रशास्यति॥

रामजी के ऐसे वचन सुनकर कैकेयी प्रसन्न हो गई। (कोई कुटिलतारहित स्त्री होती तो सीताजी के हाथ कटने की बात सुनकर या तो सहम जाती या क्रोधित हो जाती, किन्तु कैकेयी प्रसन्न हो गयी) कैकेयी सोचने लगी, कि रामजी तो अभी क्रोध में ऐसा कह रहे हैं, सीता की इस दुर्गति के बाद रामजी सीता के विरह में व्याकुल हो जाएंगे और फिर उस विरह में तनावग्रस्त रहने से वे राज्य नहीं चला पाएंगे। रामजी की इस स्थिति में उनकी

सेवा हेतु लक्ष्मण भी व्यस्त रहेंगे तो वे भी राज्य नहीं सम्भाल पाएंगे। फिर तो रामजी स्वयं ही मेरे पुत्र भरत को राज्य चलाने का आदेश देंगे और इस प्रकार से अंततः मेरी इच्छा पूरी हो जाएगी।

इति संचिन्त्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत्।
रामोऽपि नत्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वां च मातरम्॥

ऐसा सोचकर कैकेयी प्रसन्न हो गयी। उसकी प्रसन्नता से रामजी समझ गए कि यह षड्यंत्र ही हैं। फिर भी, उन्होंने कैकेयी को प्रणाम किया और सीधे कौशल्या एवं सुमित्रा के पास चले गए।

सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यज्जातमादरात्।
श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः॥

कैकेयी के महल में सीताजी के विषय में यह सब जो बात हुई, सो रामजी ने दोनों माताओं को पूरा पूरा बता दिया। (फिर इसके बाद वे अपने महल में आ गए और इस षड्यंत्र की सूचना सीताजी को दी)

तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह कैकेय्या वचनान्मया।
अंगुष्ठ एव लिखितस्तयोर्ध्वं लिखितो धिया॥

रामजी की बात को सुनकर सीताजी ने कहा - कैकेयी के कहने पर ही मैंने वो चित्र बनाया था किंतु केवल अंगूठा बनाया था, उसके ऊपर का चित्र उन्होंने अपनी बुद्धि से सोचकर ही बनाया है।

अंगुष्ठस्यानुरूपेण दशास्यो दुष्टबुद्धितः। सत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीमाह राघवः॥
कौटिल्यबुद्धिं कैकेय्याः समग्रां वेद्म्यहं प्रिये॥

अंगूठे के आधार पर ही उन्होंने दुष्टबुद्धि का आश्रय लेते हुए दशानन का पूरा चित्र बना डाला। सीताजी के ऐसे सत्य वचनों को सुनकर राम जी ने कहा - हे सीते ! मैं कैकेयी के इस कुटिल बुद्धि के षड्यंत्र को अच्छे से जानता हूँ।

स्त्रीणां सीते सगर्भाणां वांछितं वांछिते मनः।
का ते वांछा वदस्व त्वं तत्ते दास्यामि निश्चितम्॥

अच्छा ये बताओ, गर्भवती स्त्रियों को कभी कभी कुछ विशेष इच्छाएं होती हैं। यदि तुम्हारी भी कोई इच्छा हो तो उसे बताओ, मैं अवश्य तुम्हारी उस इच्छा को पूरा करूँगा।

इति रामवचः श्रुत्वा भाविकार्येण यन्त्रिता।
सा प्राह राघवं रामं नगांस्तीरस्थितान् तरून्॥
मुनीनामाश्रमाँश्चापि ऋषिपत्नीश्च तद्वनम्।
वांछते मे मनो द्रष्टुं शीघ्रं प्रेषय तत्र माम्॥

रामजी की इस बात को सुनकर सीताजी ने भविष्य की लीलाओं की प्रेरणा समझते हुए कहा - हे राघव ! मैं पहाड़, नदी, वृक्ष, मुनियों के आश्रम, ऋषियों की पत्नियों से भरे हुए वन को देखना चाहती हूँ। यही मेरी इच्छा है तो आप मुझे शीघ्र ही वन में भेजें। रामजी ने राजा जनक के माध्यम से सारा प्रबन्ध करा ही दिया था सो अगले दिन वैसा ही किया। चूंकि प्रबंध पूरा था, इसीलिए ...

यथा पूर्वं तु साकेते सुखमाप विदेहजा। तथा मुनेराश्रमेऽपि सुखमाप पतिव्रता॥
(वाल्मीकीयानन्द रामायण, जन्मकाण्ड, तृतीय सर्ग)

जैसे पतिव्रता सीताजी पहले अयोध्या में सुखपूर्वक रहती थीं वैसे ही मुनि (वाल्मीकि) के आश्रम में भी सुखपूर्वक रहने लगीं।

यहां दो शंका होती है, एक तो जब सब बात बढ़िया से तय ही थी तो सीताजी ने दुःख क्यों दिखाया ? रोती क्यों थी ? क्योंकि रामजी ने समाज को यह रहस्य नहीं बताया था। उन्होंने लोकापवाद की बात से ही सीतात्याग किया, यही प्रदर्शित किया। इसीलिए सीताजी ने भी यह लीला की कि उन्हें बड़ा कष्ट है। यदि वे प्रसन्न भाव दिखातीं तो लोग फिर कहते कि रामजी के द्वारा त्यागे जाने पर भी वे प्रसन्न क्यों हैं, अवश्य कोई बात है।

दूसरी शंका यह कि रामजी ने कैकेयी को कहा था कि सीता का हाथ काटने के लिये लक्ष्मण को कहूंगा। तो कैकयी ने उसकी मांग नहीं की क्या ? उत्तर है, बिल्कुल की। इसीलिए रामजी ने एक और गुप्त लीला रची। लक्ष्मण जी को सबके सामने सीतात्याग के समय ही साथ साथ सीताजी का हाथ काट कर लाने का आदेश दे दिया था। अब लक्ष्मण जी को इस गुप्त लीला का बोध था नहीं, वे हुए परेशान। क्या करें, क्या न करें। जंगल में

सीताजी को गंगा किनारे छोड़ने के बाद हाथ काटते ही न बने। बड़ी समस्या, अंदर की लीला ज्ञात थी नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं चिता बनाकर यहीं जलकर मर जाऊंगा। इसीलिए वे लकड़ी खोजने लगे। इतने में भगवान् की कृपा से विश्वकर्मा महाराज वहां हाथ में कुल्हाड़ी लिए बढ़ई के रूप में प्रकट हो गए। लक्ष्मण जी ने कहा, भाई, तुम्हें जितना धन चाहिए वो ले लो, लेकिन मुझे चिता की लकड़ी का प्रबंध कर दो। विश्वकर्मा जी ने पूछा, क्यों ! क्या हुआ ? क्यों मरना चाहते हो ? लक्ष्मण ने कहा - राम जी ने आदेश दिया है कि सीताजी का हाथ काट लाओ। अब हाथ तो मैं काट नहीं सकता और रामजी की आज्ञा टाल नहीं सकता। दोनों में से जो करूँगा, मृत्यु के ही समान होगा। इसीलिए सबसे अच्छा है कि मैं मर ही जाऊं। विश्वकर्मा जी ने कहा - बस ... ??

अल्पार्थे स्वीयकुणपं मा जुहाव स्वबाहुज।
अहं सीताभुजं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते क्षणात्॥

इतनी छोटी सी बात के लिए शरीर क्यों त्यागना है ? मैं तत्काल तुम्हें (मायामयी) सीता का हाथ बनाकर दे देता हूँ। (लक्ष्मण जी संकर्षण व्यूह के अवतार भी हैं और क्षत्रिय भी। क्षत्रिय वर्ण का प्रादुर्भाव विराट पुरुष की भुजाओं के रूप में हुआ है अतः शेषावतार लक्ष्मण जी को अपनी ही भुजाओं से उत्पन्न स्वबाहुज कहकर भगवान् विश्वकर्मा ने अपने दिव्य होने का सूक्ष्म परिचय दिया है)

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं कृत्वा जानकीभुजमुत्तमम्।
त्वङ्मांसास्थिस्नायुरक्तपूरितं कञ्चुकीयुतम्॥
सीतालङ्कारसहितं तस्याश्चिह्नविचिह्नितम्। ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमन्तर्दधे क्षणात्॥

इसके बाद भगवान् विश्वकर्मा ने सीताजी का उत्तम मायामयी हाथ बनाया। उसमें वैसी ही त्वचा, हड्डी, मांस, नाड़ी, खून, वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार आदि थे, जैसा वास्तविक सीता में थे। फिर उन्होंने वह हाथ लक्ष्मण जी को सौंप दिया एवं स्वयं अंतर्धान हो गए।

बाद में लक्ष्मण ने वह हाथ रामजी को दिया और रामजी ने वह हाथ कैकेयी जी को दे दिया जिसे कैकेयी ने बड़ी प्रसन्नता दिखाते हुए अपने सन्दूक में रख लिया। यही वह पाप था जिसके लिए कैकेयी को ब्रह्मा ने निकृति नामक नरक दिया था, जबकि राम वनवास के लिए रामजी ने उसे पहले ही क्षमा कर दिया था। यहां भी कैकेयी भरत को राजा बनाने में सफल नहीं हुई, एवं रामजी ने यह बात कहीं बताई नहीं अन्यथा भरत जी समेत पूरे प्रबुद्ध

समाज के लोग कैकेयी के विरुद्ध खड़े हो जाते और बड़ी समस्या होती। सीताजी को वन भेजने से पहले रामजी ने तो सारी व्यवस्था बनवाई ही थी। सीतात्याग के दो महीने बाद रामजी ने पुत्रजन्मोत्सव में वहां रात्रि को पुष्पक विमान से जाकर सारे शास्त्रोक्त संस्कार, दान, उत्सव आदि सम्पादित किया। राजा जनक तो सीताजी के साथ पहले से वहीं रह रहे थे, इसीलिए ....

सीतारामौ विदेहोऽपि पूजयामास विस्तरात्।
वाल्मीकिस्तु कुशैः शान्तिं चकार विधिना शिशोः॥

विदेह राजा जनक ने विस्तार से श्रीसीतारामजी का पूजन किया एवं वाल्मीकि जी ने राम जी के पुत्र का विधिपूर्वक कुशादि में द्वारा शांतिकर्म कराया। इसके बाद रामजी सारी व्यवस्था देखकर अयोध्या वापस लौट आये, किन्तु लौटते समय उन्होंने एक चेतावनी भी दी ...

एवं नानासमुत्साहैर्नीत्वा तत्र निशां सुखम्।
तत्रस्थान् सकलानाह ममात्रागमनस्य हि॥
यस्माद्वार्ता बहिर्गच्छेदाश्रमादस्य वै मुनेः। स मे दण्ड्यो भवेदेव शत्रुरूपी न संशयः॥
(वाल्मीकीयानन्द रामायण, जन्मकाण्ड, चतुर्थ सर्ग)

राम जी ने सारे उत्सव आदि सम्पादित कराकर वहां सुखपूर्वक एक रात्रि व्यतीत की एवं लौटते समय वहां उपस्थित सभी लोगों को बुलाकर यह स्पष्ट रूप से कहा - मैं यहां आया था, ये बात इस वाल्मीकि आश्रम से बाहर नहीं जानी चाहिए। यदि ऐसा होता है तो जो ऐसा करेगा वह शत्रु के समान मेरे द्वारा दण्डनीय है।

आप सबों ने अति प्रसिद्ध श्रीराम रक्षा स्तोत्र का नाम सुना होगा, बहुतों ने पढ़ा भी होगा। आनन्द रामायण में जहां इस स्तोत्र का वर्णन है, उससे ठीक पहले के अध्यायों में इसी रहस्य का वर्णन है। रामजी ने इन सब घटनाओं को समाज से छिपाए रखा था इसीलिए ये सब कथाएं गुप्त हैं एवं जिसपर भगवान् की अत्यंत श्रेष्ठ कृपा होती है, वही लोग जानते हैं। रामकथा का प्रत्येक वृत्तान्त सबके लिए नहीं है, तो इस प्रकार से हमें यह समझना पड़ेगा कि एक ही ग्रंथ में सारी घटना नहीं मिलती है और न ऐसा है कि केवल एक ही ग्रंथ लिखा गया है। हमारे यहां सहस्रों ऋषि महर्षिगण ने हजारों लाखों की संख्या में दिव्य

गुणों से युक्त ग्रंथों का वर्णन किया है। साथ ही यह समझना चाहिए कि यदि हम में श्रद्धा है तो हमें स्वयं ही परिश्रम करके पूरे घटनाक्रम को समझ कर, जमा करके ज्ञात करना पड़ेगा। मैं इस चर्चा के भाग ०२ एवं भाग ०५ में स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, आनन्द रामायण आदि के प्रमाण से यह सिद्ध कर चुका हूं कि वाल्मीकि जी ने सौ करोड़ विस्तार वाले रामायण की रचना की थी जिसे बाद में अनेक ऋषियों, देवताओं तथा मनुष्यों के बीच शिवजी ने उसका विभाजन किया। उस समय कुछ कथाएं इधर-उधर बिखर गयीं जिन्हें श्रद्धा से समेट कर समझना पड़ता है।

उदाहरण के लिए रजक (धोबी) के पिछले जन्म का वर्णन वेदव्यास जी ने पद्मपुराण में किया है जबकि सीता जी के अभिनीत त्याग के समय इसके वर्तमान जन्म का वर्णन वाल्मीकि जी ने उत्तरकांड में किया है तथा उसी धोबी के आगे आने वाले जन्म का वर्णन गर्गाचार्य जी ने गर्ग संहिता में किया है। इनमें से किसी एक ग्रंथ को पढ़ेंगे तो भ्रम में रहेंगे, तीनों को साथ रखकर पड़ेंगे तो पूरी बात समझ में आएगी।

जैसे आपको यदि केवल गियर, एक्सीलेटर, ब्रेक, क्लच में किसी एक का ज्ञान हो आप गाड़ी नहीं चला सकते। आपको चारों का ज्ञान एक साथ होना चाहिए, साथ ही श्रद्धा (सन्तुलन) रूपी गुण होना तभी पूरी बात, पूरी प्रणाली, पूरी लीला समझ में आएगी। लेकिन लोग परिश्रम से बचते हैं और स्वयं को अज्ञानी भी नहीं मानते, साथ ही उनके पास प्रक्षिप्त वाला बहाना भी है इसलिए जो समझ में नहीं आया उसे सीधे सीधे मिलावटी कह देते हैं और हम जैसे लोगों के साथ बौद्धिक संघर्ष में उर्जानाश करते हैं।

अब चर्चा करते हैं मेरे दूसरे वक्तव्य की, जिसमें मैंने कहा कि केवल सीताजी को ही अपने चरित्र की सिद्धि हेतु अग्निपरीक्षा नहीं दी थी, अपितु श्री राम जी के चरित्रपरीक्षण हेतु भी उनपर सीता जी ने वेश्यागमन का आरोप लगाया था, जिससे समझ आता है कि कोई पुरुषवादी अत्याचार नहीं था। मेरे इस वक्तव्य के कारण कई ऐसे लोगों ने भी मुझे भला बुरा कहा जो वर्षों से मेरे लेख और प्रवचन से जुड़े हुए हैं।

मेरे एक वक्तव्य से उन्हें इतना भ्रम हो गया मेरे व्यक्तित्व के विषय में, तो स्वयं रामजी की लीला के संदर्भ में जब देवताओं को भ्रम हो जाता है, उस समय यह अपने आप को सभी दुराग्रहों से मुक्त कैसे मान लेते हैं ? वामपंथी और विधर्मी लोग, साथ ही उनके द्वारा प्रायोजित नारीवादी लोग यह कहते हैं कि सीताजी पर राम ने अत्याचार किया। सीता जी के विषय में कुछ कथित नारीवादिनी स्त्रियां कहती हैं कि मुझे राम जैसा पति नहीं चाहिए

जो गर्भावस्था में मेरा त्याग कर दे। इन मूर्खों को समझ नहीं आता, ऐसी स्त्रियों को राम मिलते भी नहीं। ऐसी स्त्रियां सीता जी के परछाई का भी एक अंशमात्र नहीं है। उनके दिव्य चरित्र भी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती हैं किंतु अपने व्यभिचार को छिपाने के लिए, अपने दुष्ट चरित्र को छिपाने के लिए रामजी पर आरोप के बहाने सम्पूर्ण पुरुषजाति का अपमान करके प्रसन्न होती हैं।

ऐसी स्त्रियां तो राम क्या, रावण को भी अपने पति के रूप में प्राप्त करने योग्य नहीं हैं। उसके लिए भी मंदोदरी जैसी भक्तिमती और शीलवती बनना पड़ता है। नारीवादियों ने तो राम जी पर आरोप लगा दिया कि पुरुषों ने महिलाओं पर सदैव अत्याचार किया है। राम जी ने (पुरुषों ने) सीता जी को (स्त्री को) रावण के यहां "रही", इस कारण उन पर चारित्रिक दोष का आरोप लगा दिया, किंतु क्या राम जी ने कभी परीक्षा दी अपने चरित्र की ? क्या वे पुरुष हैं तो कुछ भी करेंगे ? उनपर आरोप नहीं लगेगा ? क्या केवल चारित्रिक शुद्धि का ठेका स्त्रियों ने ही लिया है, आदि आदि।

ऐसे कुतर्कियों को मैं कहूँगा कि पहले तो समझ लें कि श्रीराम और सीता जी की दिव्य लीला में इस कुटिल राजनीति की कोई आवश्यकता ही नहीं है। जब स्वयं सीताजी ने, गुरु वशिष्ठ ने, कौशल्या जी ने, यहां तक कि गर्भवती सीताजी के माताजी एवं पिता राजा जनक ने भी कभी रामजी के इस निर्णय पर प्रश्न नहीं किया, फिर आप कौन होते हैं ? यह तो सोचना चाहिए कि अवश्य कोई तो बात थी, जो राजमहलों से बाहर नहीं आयी।

क्या कभी पुरुषों ने यह आरोप लगाया कि स्त्रियां तो होती ही धूर्त है। देखो, कैकयी ने अपने स्वार्थ के कारण, अपने पति के प्राणों की बलि देते हुए, अपने सौतेले बेटे राम को कठोर वनवास का दंड दे दिया, वह भी बिना किसी अपराध के। इसलिए स्त्रियां इस संसार में रहने योग्य ही नहीं, संसार की सारी स्त्रियां पुरुषों पर बहुत पहले से अत्याचार करते आ रही हैं। अपने स्वार्थ के लिए अपने सौतेले बेटे को जंगल में भेज देती हैं, और पति के प्राणों तक की प्रवाह नहीं करती हैं, आदि आदि।

अतः यह समझना चाहिए ऐसे विवादी लोग मात्र अपने हठ एवं राजनैतिक स्वार्थ की सिद्धि हेतु , अपनी कुण्ठा के कारण पुरुषों पर, महापुरुषों पर और कभी कभी तो उन पुराणपुरुष, परमपुरुष ब्रह्मावतार रामजी पर भी आरोप लगाते हैं। इन्हीं का उत्तर देने के लिए मुझे इस गुप्त एवं रहस्य प्रसङ्ग को उजागर करना पड़ रहा है कि ऐसा नहीं कि चारित्रिक शुद्धि का एकमात्र भार सीताजी का था, समय आने पर रामजी को भी इसे सिद्ध

करना ही पड़ा। सीतात्याग का रहस्य तो कई प्रकार से अनेकानेक प्रमाणों से समझा चुका हूँ। अब इस रामचरित्र के चरित्रशुद्धि की कथा के अंतर्गत आप सबों को इस घटनाक्रम के मुख्य मुख्य श्लोकों के माध्यम से सारभूत रूप में कथा का वृत्तान्त बताता हूँ -

एकदा पिङ्गला नाम्नी वेश्या रात्रौ विनिद्रितम्।
सीतया दिव्यपर्यंके ययौ सा राघवं रहः॥

(घटना कुछ ऐसी घटी, कि) एक पिङ्गला नाम की वेश्या उस समय भगवान् रामजी के शयनकक्ष में घुस गई, जब वे सीताजी के साथ पलंग पर विश्राम कर रहे थे।

सीताभयात्प्रकम्पन्ती कामबाणप्रपीडिता।
मण्डितापुष्पमालाद्यैर्भूषणैरतिशोभिता॥

वह वेश्या रामजी के दिव्य रूप पर मोहित थी, इसीलिए कामातुरा थी, किन्तु सीताजी से उसे डर भी लग रहा था। उसने उस समय सुन्दर आभूषण, माला आदि धारण कर रखे थे और वह अत्यंत सुंदर लग रही थी।

अज्ञाता द्वारपालैः सा निद्रितैर्मञ्चकं ययौ। स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा रामं प्रबोधयत्॥

उस समय द्वारपालों को नींद की झपकी आ गयी थी, इसीलिए उन्होंने उसे नहीं देखा। इसी बीच वह वेश्या रामजी के पलंग तक जा पहुंची। उसने अपने हाथों से रामजी के चरणों को स्पर्श करके उन्हें जगाया। रामजी तो उसे देखकर स्तब्ध रह गए, कि भला ये कौन हैं, यहां इस समय क्या करने आई है ? उस वेश्या ने रामजी से पतिभाव की कामना करते हुए प्रणयनिवेदन किया। इस बात पर रामजी ने उसे स्पष्ट रूप से कहा -

एकपत्नीव्रतं मेऽस्मिन्भवे त्वं वेत्सि पिङ्गले।
अतस्त्वत्कामपूर्त्यर्थं वदामि तत् शृणुष्व हि॥

हे पिङ्गला ! इस जन्म में मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ, यह बात तुम भी अच्छे से जानती हो। किन्तु मैं तुम्हारे निवेदन को अवश्य पूरा करूँगा। वह कैसे होगा, यह सुनो ...

यदाऽहं मथुरामग्रे व्रजात् श्रीकृष्णरूपधृक्।
यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्यामि तत्पुरीम्॥

जब मैं आगामी काल में, श्रीकृष्ण अवतार में व्रजभूमि से मथुरा आऊंगा, उस समय अपने मामा कंस को मारने के बाद मैं वहां (मथुरा में) रहने लगूंगा।

तदा भजिष्यसि त्वं मां कुब्जारूपेण पिङ्गले।
गच्छ दासीस्वरूपेण तिष्ठ त्वं कंसवेश्मनि॥

उस समय कुब्जावेश में तुम मुझे प्राप्त कर लोगी। तब तक कंस के घर में दासीरूप से रहना। (उसे ऐसा समझाकर रामजी ने उसे भेज दिया और स्वयं द्वारपालों को जगाया)

शिक्षयामास द्वारस्थान्दासान्दासीर्विनिद्रिताः।
ततः सीतां प्रबोध्याथ वेश्यावृत्तं न्यवेदयत्॥
तच्छ्रुत्वा जानकी रुष्टा त्यक्त्वा पर्यंकमुत्तमम्।
राघवं प्राह सक्रोधा कथं नाहं प्रबोधिता ?
तदैवाद्यं मया ज्ञातमेकपत्नीव्रतं मृषा। भुत्वादौ पिङ्गलां तूष्णीं त्वयाऽहं बोधिता ततः ?
तां विसृज्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया। मृषा त्वया प्रतिज्ञातं पुरा व्यासमुनेः पुरः॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौशल्यासदृशी मम।
अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कत्थसे त्वं पुनः पुनः॥
क्व गतं तद्वचस्तेऽद्य क्व गतं तद्व्रतं तव। अद्यैव जीवितं स्वीयं त्यजामि सरयूजले॥

महल में रहने वाले सुरक्षाकर्मियों, दास दासियों और द्वारपालों को (कार्य के समय सोने के कारण) रामजी ने अच्छे से समझाया, (कि आगे से ऐसी चूक न हो) और सीताजी को जगाकर वेश्यासम्बन्धी यह घटना बताई। इस बात को सुनकर सीताजी क्रोधित हो गईं। वे पलंग को छोड़कर खड़ी हो गईं और उन्होंने रामजी को कहा - आपने मुझे पहले क्यों नहीं जगाया ? आज मैं जान गई कि आपका एकपत्नीव्रत कितना झूठा है। पहले तो आपने पिङ्गला का उपभोग कर लिया और उसके बाद अब जाकर मुझे जगाया है। उसे भेजने के इतनी देर बाद आपने मुझे जगाया, इससे मैं आपका चरित्र जान गई हूं। आपने पहले जो वेदव्यास (तात्कालीन) जी के सामने जो प्रतिज्ञा की थी, वह भी झूठ ही थी न ?

आपने कहा था कि, "मैं एकपत्नीव्रती हूँ, सीता को छोड़कर, अन्य स्त्रियां मेरे लिए कौशल्या के समान हैं।" ये सब आपने बारम्बार जो कहा था, वह सब झूठ ही था न ? आज आपका वह वचन कहाँ चला गया ? वह व्रत कहाँ चला गया ? आज ही मैं सरयू जी में डूब कर प्राण त्याग दूंगी।

वेश्यायाः पृष्ठसंलग्नां शय्यां नाद्य स्पृशाम्यहम्।
वेश्यासक्तं स्वामिनं त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेत्त्वयि॥
मृतायां मयि यद्भाव्यं वेश्यासक्तस्य ते भवेत्।
वेश्यासक्तपार्थिवस्य चिरं राज्यं न तिष्ठति॥

जिस पलंग में वेश्या सो गयी हो, उसे अब मैं स्पर्श नहीं करूंगी। उस वेश्या में आसक्ति रखने वाले अपने पति, आपको देखकर मुझे द्वेष हो रहा है। मेरे मरने के बाद भी यदि आप उस वेश्या में ही आसक्त रहेंगे तो स्मरण रखें, वेश्यागामी राजाओं का राज्य बहुत दिन तक नहीं टिकता है। ऐसा कहकर सीताजी अपने प्रेम के खण्डित होने की आशंका से सरयू जी की ओर जाने लगीं, तब राम जी ने उन्हें रोक कर बहुत प्रकार से समझाया। उन्हें तरह तरह से शपथ ग्रहण करके शांत करना चाहा, किन्तु सीताजी नहीं मानीं। तब राम जी ने कहा -

मयि ते शपथैरद्य प्रत्ययो न भविष्यति। दुर्घटं यद्ब्रवीषि त्वं तद्दिव्यं प्रवदाम्यहम्॥

मेरे द्वारा बार बार कसम लेने पर भी यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है तो तुम्हीं बताओ, मैं कौन सी कठिन दिव्य परीक्षा दूं ? (दिव्य युगों में अग्निपरीक्षा, समुद्रपरीक्षा, शस्त्रपरीक्षा, विषपरीक्षा आदि के माध्यम से भी सत्यवक्ता की पहचान होती थी।) जब रामजी अग्निपरीक्षा आदि दिव्य शपथ के लिए तैयार हो गए, तब सीताजी ने कहा -

राम ब्रूयामहं किं ते येन दिव्यं ददामि ते। अनलस्त्वन्मुखोद्भूतो नयने शशिभास्करौ॥
वासस्ते जलधौ राम पृथ्वीयं विधृता त्वया।
शेषस्तल्पस्त्वयैवायं लक्ष्मणस्तिष्ठते बहिः॥
शास्त्राणि त्वन्नखजानि सर्वाण्यत्र न संशयः।
यद्यत्पश्यामि तत्सर्वं तव रूपं न संशयः॥

रामजी ! मैं आपको अब क्या कहूँ। ऐसी कोई दिव्य परीक्षा नहीं है, जो निष्पक्ष हो। अग्नि का प्रादुर्भाव आपके मुख से हुआ है। चन्द्र और सूर्य जैसे साक्षी भी आपके ही नेत्र हैं। समुद्र तो आपके विराट रूप का वस्त्र ही है एवं पृथ्वी को आपने योगबल से धारण कर रखा है। शेषनाग, जिनपर आप शयन करते हैं, वे लक्ष्मण के रूप से तो बाहर ही खड़े है। सभी शास्त्र आदि तो आपके श्रीचरणों की नखचन्द्रिका से ही प्रकट हुए हैं, इसमें भी कोई संशय नहीं है। इसीलिए मैं सर्वत्र देखती हूँ, तो आपकी ही दिव्य छवि दिखती है, अतएव कोई भी दिव्य परीक्षा पर मुझे विश्वास नहीं है।

एकमेवास्ति जानेऽहं तत्कुरुष्व रघूत्तम। इदानीमेव स्वगुरुं समाहूय रघूद्वह॥
पदयोस्तस्य शपथं कृत्वा ते प्रत्ययो मम। भविष्यति न संदेहस्तं कुरुष्व रघूत्तम॥

'किन्तु एक बात है जो मैं जानती हूँ, उसे यदि आप कर सकते हैं तो करें। इसी समय वशिष्ठ गुरुदेव को यहां बुलवाया जाय।गुरुदेव के चरणों को छूकर, उनकी शपथ लेते हुए आप यदि कहेंगे तो मुझे आगे संदेह नहीं होगा।' रामजी ने सीताजी की इस बात को सुनकर मुस्कुराते हुए लक्ष्मण जी को आदेश दिया कि गुरुदेव वशिष्ठ एवं गुरुमाता अरुंधती को सम्मानित करके यहां के आओ। लक्ष्मण जी ने तुरंत पालकी तैयार करवाई और गुरुदेव के आश्रम में गए। वहां उनके दरवाजे पर आवाज लगाई।

निशीथे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः।
इति विह्वलचित्तः स समाहूयाथ लक्ष्मणम् ॥

गुरुदेव एवं गुरुमाता जग गए एवं लक्ष्मण जी को देखकर चिंतित हो गए कि सीधे राजमहल से इतनी रात को लक्ष्मण जी स्वयं आ गए हैं, अब क्या बात हो गयी भला !! उन्होंने लक्ष्मण जी को कुटिया के अंदर बुलाया।

लक्ष्मण जी ने कहा कि रामजी ने आपको तत्काल बुलाया है, इसीलिए मैं आया हूँ। कारण तो मैं नहीं जानता, बस आदेश हुआ है, तो मैं चला आया। गुरुदेव और गुरुमाता भी तत्काल महल के लिए चल पड़े। वहां पर श्रीराम जी एवं सीताजी ने उनका विधिवत् सत्कार एवं पूजन किया। इसके बाद रामजी ने पूरा घटनाक्रम बताते हुए कहा -

कथयामास सीतायाः क्रोधवाक्यान्यपि प्रभुः।
दिव्यं दातुं न किंचिच्च दृष्ट्वान्यत् सीतया मम॥

हे गुरुदेव ! सीता ने सन्देहयुक्त होकर मुझे क्रोध में ये सब बातें कही हैं और उन्हें मेरे सत्य की पुष्टि के लिये किसी दिव्य परीक्षा पर विश्वास नहीं था।

विनिश्चितं ते पदयोर्दिव्यं तत्ते वदाम्यहम्।
मनसाऽपि न भुक्ता सा मया वेश्याऽथवा परा॥

मैं आपके चरणों को दिव्य मानते हुए यह सत्य कहता हूँ कि शरीर की बात तो दूर, मैंने मन से भी पिङ्गला वेश्या या किसी भी अन्य स्त्री का उपभोग नहीं किया है।

इति चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदे। इत्युक्त्वा राघवः शीघ्रं वशिष्ठपदयोः करौ॥

यह मैं सत्य सत्य कहता हूँ और आपके चरणों को स्पर्श करता हूँ। राम जी ने ऐसा कहकर गुरु वशिष्ठ के चरण पकड़ लिये।

स्वीयौ संस्थाप्य शिरसा प्रणनाम गुरुं पुनः।
तद्दृष्ट्वा लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघूत्तमम्॥
प्रणम्य मेऽपराधं तं क्षमस्वेति प्रसादयत्॥

रामजी ने अपने मस्तक को गुरुदेव के चरणों में रख दिया। रामजी की इस शपथ क्रिया से सीताजी का संदेह जाता रहा और वे मन ही मन क्रोधयुक्त वचन बोलने कारण लज्जित हो गईं। उन्होंने रामजी के चरित्र को शुद्ध जान लिया और उन्हें प्रणाम करके कहा कि हे रघुकुल के नायक ! मुझसे अपराध हो गया है, मुझे क्षमा करें।

इसके बाद गुरुदेव और गुरुमाता को उन्होंने ससम्मान विदा कर दिया और सभी लोग सोने चले गए। अगले दिन प्रातःकाल राजसैनिक जो रात को हुई सुरक्षा में चूक की जांच कर रहे थे, उन्होंने पिङ्गला वेश्या को बांधकर सीताजी के सामने उपस्थित किया।

सीतोवाच तदा वेश्यां यस्मान् मेद्यापराधितम्।
भविष्यसि त्रिवक्रा त्वं मथुरायां हि कुत्सिता॥

सीताजी ने कहा - हे पिङ्गला ! तुमने मेरे पति के ऊपर दृष्टि डालकर मेरा अपराध किया है, इसीलिए तुम जब मथुरा में रहोगी, तब तीन स्थानों से टेढ़ी (कूबरी) बन कर रहोगी।

वेश्यया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वामुद्धरिष्यति।
श्रुत्वा तां बन्धितां वेश्यां मोचयामास राघवः॥
(वाल्मीकीयानन्द रामायण, विलासकाण्ड, अष्टम - नवम सर्ग)

फिर पिङ्गला ने सीताजी से प्रार्थना की तो उन्होंने कहा, कि भगवान् कृष्ण तुम्हें मेरे श्राप से मुक्त करेंगे। वेश्या को सैनिक बांध कर ले आये हैं, ऐसा जब रामजी ने सुना तो उन्होंने उसे मुक्त करा दिया। इस दिव्य कथा में सिद्ध हुआ कि सीताजी ही नहीं, श्रीरामजी को भी समयानुसार अपनी चरित्रशुद्धि का प्रमाण देना पड़ा। सीताजी ने एक पत्नी के साथ साथ एक आदर्श महारानी होने का भी धर्म निभाया है, क्योंकि उन्हें चिंता थी कि कहीं राजा के वेश्यागामी होने से राज्य भ्रष्ट न हो जाये। सीताजी, जो ब्रह्मशक्ति हैं, उनके तात्त्विक रूप को यदि कुछ देर के लिए न देखकर केवल लौकिक रूप से देखें तो भी राज्य चलाने में उनका अधिकार और दक्षता रामजी से कम नहीं थी। तभी तो सबसे पहले के वनगमन के समय सबों ने कहा -

न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते। अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग - ३७, श्लोक - २३-२४)

अर्थात्, कठोरता से भरे वन में (स्त्रियों के अनुरूप स्थिति न होने से) शील के द्वारा मना किये जाने से, सीता को वन में नहीं जाना चाहिए। जैसे रामजी राज्य का दृढ़ता से पालन करते, वैसे ही अब सीताजी करेंगी। गृहस्थों की पत्नी उनकी आत्मा होती है। ये भी रामजी की आत्मा के समान इस पृथ्वी का पालन करेंगी।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि जैसे रामजी ने सीताजी से चरित्रशुद्धि का प्रमाण मांगा था, वैसे ही सीता जी ने रामजी से भी चरित्रशुद्धि का प्रमाण मांगा। प्रमाण मांगना दोनों का अधिकार था एवं प्रमाण देना, दोनों का कर्तव्य। इसीलिए हमें किसी घटना पर आरोप लगाने से पहले ढंग से श्रद्धापूर्वक, बिना किसी शंका या कुतर्क के, बस रामजी पर आस्था रखते हुए ही ग्रंथोल्लिखित प्रसङ्गों को पढ़ लेना चाहिए।

| इति शम् |

दशम भाग

आज का हिंदू समाज अध्ययन नहीं करेगा, केवल ग्रंथों को प्रक्षिप्त कहेगा और ग्रंथों की बात को मिलावटी कहने वाले लोगों को धर्मगुरु कहेगा। ग्रंथों को प्रक्षिप्त बताने वाले को गुरु मानेगा और बिना ग्रंथों को प्रक्षिप्त घोषित किए, शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर, ग्रंथ और देवता दोनों के मर्यादा की रक्षा करते हुए, विधर्मियों को समुचित उत्तर देने वाले लोगों को पाखंडी कहेगा। यही कारण है कि हिंदू समाज गिर रहा है और यही कारण है कि हिंदू समाज आगे भी गिरेगा। जब बात समझ में नहीं आती है तो मिलावटी घोषित कर देते हैं। मैंने पूर्व में शम्बूक वध के विषय में स्पष्टीकरण के साथ विस्तृत लेख लिखे किंतु जिनकी बुद्धि दिव्य लीलाओं को समझने की है ही नहीं वह लोग आज तक नहीं समझे और कुतर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत करते ही जाते हैं। उदाहरणस्वरूप श्री रामाधार शर्मा जी ने अपने विचार कुछ इस प्रकार रखे -

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

क्या शम्बूकवध प्रक्षिप्त नहीं ?

आजकल एक प्रवृत्ति हो रही है कि बिना तथ्यों / प्रमाणों के हम किसी भी बात को प्रामाणिक मानने / मनवाने के हठ में इस लिये उद्यत हो जाते हैं कि यह अमुक आचार्य या संत द्वारा कही गयी है (भले ही इसके विरुद्ध पुष्ट प्रमाण वर्तमान हों अथवा युक्ति न्याय-संगत न हो !) मैं समझता हूँ कि जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य के भाष्य-वचनको समादर मिलनी चाहिये। बृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यमें उन्होंने कहा- "दृश्यन्ते हि पुरुषारागादिगौरवाच्छास्त्रमप्यतिक्रामन्तः (II.१.२०)" अर्थात् रागादि की अधिकता होनेपर लोग शास्त्रका उल्लंघन करते भी देखे जाते हैं। उन्होंने आगे कहा - "पुरुषाः स्वयमेव यथारूचि साधनविशेषेषु प्रवर्तन्ते, शास्त्रं तु सवितृप्रदीपादिवदुदास्त एव (II.१.२०)" अर्थात् अपनी-अपनी रूचि के अनुसार पुरुष स्वयं ही साधनविशेषों में प्रवृत्त होते हैं। शास्त्र तो सूर्य और दीपकादि के समान उदासीन ही रहता है। अतः मैं केवल अपना विचार रख रहा हूँ, मानना या न मानना आपके अधीन है। मेरा आपसे अनुरोध रहेगा कि तर्क वितर्क / कुतर्क से उपर उठकर आप इसका विश्लेषण करें।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

सत्य ही कहा आपने ! बिना तथ्यों / प्रमाणों के हम किसी भी बात को प्रामाणिक मानने / मनवाने के हठ में इस लिये उद्यत हो जाते हैं कि यह अमुक आचार्य या संत द्वारा कही गयी है, किन्तु अमुक आचार्य या सन्त शंकराचार्य जी आदि जैसे हों तो उनकी बात प्रमाण में ग्राह्य है। आश्चर्य है कि जो जगद्गुरु जी श्रीआद्यशंकराचार्य के मत को कुपथ मानते हैं, उन्हीं जगद्गुरु जी के पक्ष में आप आद्यशंकराचार्य जी का ही वचन लेकर आये हैं।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

यूँ तो शम्बूकवध पर कुछ चर्चाएँ पहले भी हो चुकी हैं तथा इस विषय पर यथारीति समर्थनकारी और विरोधी दोनों ही के अपने तर्क हैं। परन्तु इसके प्रक्षिप्त होनेमें मुझे सबल पक्ष दिखाई देते हैं- रामराज्य के सम्बन्ध में वाल्मीकिरामायण में कहा गया-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः॥ वा. ६.१०१॥
आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः॥वा. ६.१०२॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी लालची न था। सब लोग अपना काम करते हुए अपने कार्यों से सन्तुष्ट रहा करते थे। श्रीरामराज्य में सारी प्रजा धर्मरत और झूठ से दूर रहती थी। सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त पाये जाते थे और सबलोग धर्मपरायण होते थे। प्रश्न उठता है कि जब 'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते' तथा 'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मरता', तब शूद्र तपस्यानिरत कैसे हो सकता था ? अर्थात् या तो उपर के श्लोक (१०१-१०२) प्रक्षिप्त या गलत; या फिर शम्बूकप्रसङ्ग प्रक्षिप्त या गलत।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

निश्चय ही राम जी के राज्य में सभी लोग अपने अपने कर्म में लगे हुए थे किंतु इसका कारण यह नहीं था कि रामजी ने सबको सम्मोहित कर रखा था। रामजी ने अपनी दण्डनीति, राजनीति, धर्माचरण और न्यायशीलता से ऐसा शासनकाल बनाया कि

स्वभावतः ही सबकी प्रवृत्ति धर्म की ओर हो गयी। उन्होंने किसी चमत्कार का नहीं, नीति का आश्रय लिया था। अब रही बात शम्बूक की, तो भाग ०२ में यह सप्रमाण सिद्ध कर चुका हूँ कि वह जंघासुर नाम राक्षस था जो शूद्रयोनि का आश्रय धारण करके तपस्या कर रहा था ताकि वह इसी शरीर से देवत्व एवं उसमें भी रुद्रत्व प्राप्त करके लोकों का संहार कर सके।

आप अपने घर में कितना भी अनुशासन रखें किन्तु कोई बाहरी व्यक्ति आक्रमण कर दें तो फिर शांति भंग होने लगती है। सभी वर्णों के लोग अपने अपने कार्य में तो राजा दशरथ के काल में भी रहते थे, उनका राज्य भी धर्मपरायणता के लिए प्रसिद्ध था किंतु एक मंथरा तो वहां भी हो गयी थी न ! यहाँ समझना चाहिए कि प्रजा इसीलिए गलत काम नहीं करती थी, क्योंकि रामजी उसे गलत करने देते नहीं थे। जहां गलत देखे, समाधान कर दें, ऐसा राजा का कार्य होता हैं। इसीलिए विवेकी प्रजा ज्ञान के कारण धर्म का पालन करती है तो अविवेकी प्रजा दण्ड के भय से।

रामजी की दण्डनीति और राजनीति उत्कृष्ट थी, इसीलिए उनके राज्य में सभी लोग अपना काम करते थे। यही गुण उनसे कुछ पीढ़ी बाद हुए शत्रुजित् में नहीं थी, जिसके कारण उनकी प्रजा अधार्मिक हो गयी। बाद में दुर्गा देवी को प्रकट होकर उसका संहार करना पड़ा था। यह कथा आपको श्रीमद्देवीभागवत महापुराण में कामबीज माहात्म्य के अंतर्गत सुदर्शन प्रसङ्ग में मिल जाएगी।

रामजी ने प्रजा को अधर्म का अवसर ही नहीं दिया और जिसने अधर्म का प्रयास किया उसे शम्बूक की भांति समुचित दण्ड दिया। धर्म और अधर्म को जानने के लिए ही वे रात्रि को भ्रमण करते थे। रामजी कोई घर में बैठे नहीं रहते थे, और प्रजा बैठे बैठाए धर्म में लगी रहती थी। अपितु रामजी ने यह सिद्ध किया कि कोई यदि अपराध करेगा तो दण्ड मिलेगा। इसीलिए रामराज्य की आशा करने वाले को साम, दान, दण्ड, भेद आदि उचित प्रयोग आना चाहिए। किसी अधर्म करने वाले रामजी शम्बूक की भांति तुरन्त दण्डित कर देते थे, इसीलिए उनके राज्य में सब अपने धर्म में लगे रहते थे, ऐसी बात है। रामजी ने पहले भी अधर्म करने वाले ताड़का, बालि, समुद्र आदि को दण्डित किया ही है। समुद्र ने समय पर क्षमा मांग ली तो बच गया। इसी दण्डनीति के कारण रामराज्य में सब धर्म में लगे रहते थे। रही बात श्लोक की, जो आपने दिया। तो ऐसा भ्रम तो और भी स्थानों पर हो सकता है। उदाहरण के लिए कैकेयी मंथरा से अयोध्याकाण्ड, अष्टम सर्ग में कहती है,

यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौशल्यातोऽरिक्तं च सो हि शुश्रूषते हि माम् ॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा। मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातृंश्च राघवः॥

जैसे मुझे भरत प्रिय हैं, वैसे ही राम भी प्रिय हैं। राम तो कौशल्या से भी बढ़कर मेरी सेवा करते हैं। यदि राम को राज्य मिलता है तो भरत को ही मिला, ऐसा समझना चाहिए क्योंकि सभी भाईयों को राम अपने ही समान मानते हैं। अब यदि कोई पूर्वापर विचार किये बिना यहां संदेह करके कहे कि कैकेयी ने तो वनवास दिलाया था, तो ऐसी बात कह ही नहीं सकती, इसीलिए यह श्लोक गलत है, तो यह कितने वैचित्र्य की बात है ! ऐसे ही सर्वधर्मपालकों का श्लोक गलत नहीं है, आपके द्वारा उसका दृष्टिकोण गलत लगाया जा रहा है।

"सभी लोग धर्म में लगे हुए थे" इसीलिए "शम्बूक अधर्म नहीं कर सकता", फलतः "शम्बूक वध काल्पनिक है, ऐसी बात नहीं है। अपितु बात यह है कि "शम्बूक जैसे अधर्म करने वाले को दण्ड मिलता था" इसीलिए "सभी लोग धर्म में लगे रहते थे", फलतः "शम्बूक वध प्रामाणिक है"।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

अब उसी उत्तरकाण्डमें आगे (७।९९।१३) चलकर कहते हैं-

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।
नानर्थो विद्यते कश्चिद्रामे राज्यं प्रशासति॥

अर्थात् रामराज्यमें किसीकी भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी और न किसी प्रकारकी व्याधिसे पीड़ित होता था। यह यदि सत्य है तो ब्राह्मणबालक काल-कवलित कैसे हुआ? महर्षिका यह वचन मिथ्या प्रमाणित हो जायेगा अथवा यह श्लोक प्रक्षिप्त हो जायेगा।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

प्रक्षिप्त घोषित करने की बड़ी जल्दी रहती है आपलोगों को। लेकिन यह नहीं बताते कि किसने कब कहाँ कर दिया, और केवल इतना ही श्लोक कैसे प्रक्षिप्त है ? मतलब कि जहाँ तहां केवल बैठकर एक आदमी मिलावट ही रहा था क्या और जाते समय आप सबों को

बता दिया कि यहां यहां मिलावट है ! कहीं ऐसा तो नहीं कि बुद्धिग्राह्य विषय को प्रामाणिक और बुद्धिबाह्य विषय को प्रक्षिप्त समझने का भ्रम आपको होता है।

निश्चय ही अकाल मृत्यु नहीं होती थी रामराज्य में। लेकिन यदि कोई किसी को बलपूर्वक मार डाले तब ? स्वाभाविक रूप से मेरे घर में आग नहीं लगती, किन्तु कोई आग लगा दे तब ? तब क्या हम कहेंगे कि आग नहीं ही लगी ? बालकों का शरीर सबसे दुर्बल होता है। वह प्रहार को झेल नहीं पाता। उनपर तांत्रिक क्रियाएं भी शीघ्र दुष्प्रभाव डालती हैं। कोई जानबूझकर कहीं किसी कमरे में जहरीली गैस छोड़ दे या विषयुक्त भोजन दे दे तो सबसे पहले बच्चे ही मरेंगे, भले वहां अकालमृत्यु न होती हो। शम्बूक भी लोकसंहार के संकल्प को लेकर तपस्या कर रहा था ऐसा महाभारततात्पर्यनिर्णय में वर्णन है। इसीलिए उसके सङ्कल्प से पहले बच्चे मरने लगे। इस बात पर रामजी ने अविलम्ब संज्ञान लिया और समाधान किया।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

श्रीराम न्यायप्रिय राजा थे। फिर उनके राज्यमें यह कौन सी व्यावहारिक न्यायप्रक्रिया थी जिसमें कर्म (अथवा अविहित कर्म) तो कोई और करता था और उसका फलभोग कोई और ? किसी भी धर्मशास्त्र या स्मृति में इस व्यवहार का समर्थन मिलता है क्या ? इससे भगवान् श्रीरामकी न्यायप्रियता पर प्रश्नचिह्न नहीं उठ जायेगा ? दण्ड देना राजा का धर्म है परन्तु उसे क्रियान्वित करना राजा का कर्म कैसे ?

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

किसी और के कर्म का दण्ड रामजी ने किसी और को कहाँ दिया है ? यदि कोई आतंकवादी कहीं बम फोड़ दें और उसके प्रभाव से लोग मर जाएँ तो यहाँ क्या कहेंगे ? सरकार ने आतंकवादी के बम फोड़ने रूपी कर्म का दण्ड लोगों को मार कर दिया ? यह कैसा चिन्तन है आपका ? शम्बूक की तपस्या से उत्पन्न अभिचार से ब्राह्मण के बच्चे मरे तो क्या रामजी ने उन्हें मारा है जो आप न्यायशीलता की बात कहने लगे ? राजा के राज्य में कोई अधर्म होता है तो किसी न किसी अंश में राजा के साथ ही पूरी प्रजा को उसका फल भोगना पड़ता है। यद्यपि मैं पूर्वकाल में आपको इसका उत्तर दे चुका हूँ किन्तु पुनः इसका प्रमाण ऐसे समझें -

विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते क्षयः ॥
(स्कन्दपुराण, माहेश्वर/कौमारिका खण्ड, अध्याय ४०, श्लोक - २२२)

यदि ब्राह्मण अपने कर्म को दूषित कर ले, तो प्रजाओं का नाश होता है।

क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कंध, अध्याय – ८९, श्लोक - २३)

ब्राह्मण कहते हैं - इस क्षत्रबंधु (नाम मात्र के क्षत्रिय) के कर्मदोष से ही मेरा बालक मर गया।

मातामहस्य दोषेण वेनः कालात्मजात्मजः। निजधर्मं परित्यज्य अधर्मनिरतोऽभवत् ॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड, अध्याय - २८, श्लोक - २२-२३)

अपने नाना के दोष से ही वेन ने अपने धर्म का परित्याग करके अधर्म में मन लगाया।

शूद्रस्त्रिरात्रं कुरुते विषये यस्य भूपतेः। तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः ॥
(विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय - ३२०, श्लोक - ११)

जिसके राज्य में शूद्र तीन रात्रि तक उग्र तप कर लेता है, उसका राष्ट्र अकाल, तस्कर एवं रोगों से कष्ट पाता है। (शूद्र के लिए उग्र नहीं, सौम्य तप का विधान है)

और्व मुनि का सगर के प्रति राज्यधर्म के वर्णन में यह वचन है -

यस्य राज्ये सदा शूद्राः पुराणं संहितां तथा।
पठन्ति स्यात् स हीनायुः राजा राष्ट्रेण सान्वयः ॥
(कालिकापुराण, अध्याय - ८८, श्लोक - ४७-४८)

जिसके राज्य में शूद्र सदैव वेद और पुराण का पाठ करते हैं उस राजा की आयु का, अपनी प्रजा की आयु के साथ ही नाश हो जाता है। (शूद्र के लिए सदाचार ग्रंथ, स्वकर्मप्रकाशक लोकशिक्षा, आदि का विधान है। वेद-पुराणों के पाठ का निषेध है।) एकलिङ्गपुराण का प्रमाण भी हमने दिया था। दण्ड देने में ही क्रियान्वित करने का भाव छिपा है। आप महाभारत आदि का प्रसङ्ग देखें कि राजाओं को क्यों बनाया गया ? ताकि वे दण्ड दे सकें। राज्याभिषेक के समय उसमें सभी देवताओं का न्यास होता है, जिसमें दण्ड देने वाले

यमराज भी होते हैं। राजा केवल न्यायाधीश नहीं है कि दण्ड का निर्णय सुना दिया और काम कोई और करे। राजा स्वयं दण्ड देता भी है। जिस प्रकार से राजा अपने प्रजा के किये गये पुण्य एवं पाप का छठा अंश भोगता है, वैसे ही राजा के अनुचित नीतियों से जन्य अधर्म का पाप भी प्रजा को भोगना पड़ता है। रामजी के राज्य में जंघासुर नामक राक्षस ने सृष्टि संहार के उद्देश्य से देवत्त्व प्राप्त करने के लिए शम्बूक शूद्र के रूप में तपस्या करना प्रारम्भ किया। उसके इस संहारक तपस्या की ऊर्जा से बच्चे मरने लगे और यदि रामजी इसका निवारण नहीं करते तो और भी व्यापक संहार होता।

आज विश्व एक महामारी से लड़ रहा है। जब वायरस कहीं किसी एक व्यक्ति या संस्था ने बनाया, तो फिर पूरा विश्व उससे कैसे त्रस्त है ? क्यों बाकी लोग एक व्यक्ति के कर्म का फल भोग रहे हैं ? यदि कहीं बम फटता है, तो केवल फोड़ने वाले को ही मरना चाहिए, फिर शेष लोग जिन्होंने उस समय वह कर्म नहीं किया, उसका फल क्यों भोगते हैं ? यज्ञ तो एक यजमान और आचार्य मिलकर भी करते हैं तो पूरा समाज उससे लाभान्वित कैसे होता है ? क्योंकि प्रत्येक कर्म वैयक्तिक नहीं होता है, कुछ सार्वजनिक प्रभाव वाले भी होते हैं। यदि कोई आतंकवादी कहीं बम फोड़े, तो उसकी भौतिक ऊर्जा से लोग मरते हैं, वैसे ही शम्बूक के लोकसंहारक तप की सूक्ष्म ऊर्जा से भी बच्चे मरने लगे थे। यह सामान्य सी बात इन कुतर्कबुद्धि वालों को समझ में नहीं आती है।

राजा के दण्ड न देने वाली आपकी बात तो और भी हास्यास्पद है। लगता है, आपने दण्डविधानों का पर्याप्त अध्ययन किया ही नहीं है। राजा को ही स्वयं दण्ड देने का अधिकार है। यदि वह दण्ड न देकर, दण्ड का निर्णय सुना दें और अधिकारियों से दण्ड को क्रियान्वित करा दें तो भी कार्य हो जाएगा। किन्तु दण्ड का मुख्य धारक, पालक एवं कर्ता राजा ही होता है।

मर्यादास्थापनार्थञ्च दण्डनीतिः प्रवर्तते।
(मत्स्यपुराण, अध्याय १४५)

मर्यादा की स्थापना के लिये दण्डनीति का विधान है। यही मत अन्य पुराणों का एवं नीतिशास्त्र का भी है। दण्डाभिमानी देवता का सगुण रूप वर्णन करते हुए कहते हैं -

बद्धमुष्टिं स्मरेद्दण्डं रक्ताङ्गं रक्तलोचनम्। क्रोधमूर्तिं स्वदशनैर्दशन्तमधरं स्वकम्॥
शक्रकार्मुकवर्णं च परशुं भीमविक्रमम्।
द्रवत्कनकनेत्रं च ज्वलज्ज्वालाजटाधरम्।
पाशं फणिगणाकीर्णं विद्युज्जिह्वं भयानकम्॥
(सात्वत संहिता, अध्याय १३, श्लोक - १९-२१)

दण्ड देवता की मुट्ठियां बन्द हैं, उनका शरीर और नेत्र लाल हैं। वे अत्यंत क्रुद्ध हैं तथा अपने दांतों से अपने होठों को चबा रहे हैं। उनका रंग इंद्रधनुष के समान है तथा उन्होंने भयंकर पराक्रम से साथ हाथों में फरसा ले रखा है। उनके नेत्रों की तेजस्विता पिघले हुए, तपाये हुए सोने के समान है, उनकी जटाएं जलती हुई अग्नि के समान प्रदीप्त हैं। उन्होंने सर्पों से युक्त पाश को धारण किया हुआ है एवं उनकी जिह्वा बिजली के समान लपलपाती हुई है। राजा कैसे दण्ड दें, इसकी मर्यादा का एक उदाहरण देखें -

द्रुह्याद्धृतस्तु यः पालं गृहीत्वा भक्तवेतनम्।
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं स्वाम्यरक्षिणा॥
दण्डं दत्त्वा न विरमेत्स्वामिभिः कृतलक्षणः।
बद्धः कृत्वायसैः पाशैस्तस्य कर्मकरो भवेत्॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

जो व्यक्ति शत्रुता के कारण अपने नौकरों के वेतन को रोक देता है या उसका हरण कर लेता है, उसे राजा सौ स्वर्णमुद्राओं का दण्ड दे। इतना ही करके छोड़ न दे, अपितु उसे लोहे के पाश (हथकड़ी आदि) से बंधवा दे।

राजा का कार्य धर्म को उचित रीति से जानकर प्रजा में दण्ड का विस्तार करना है।

ज्ञात्वा सम्यग्यथाशास्त्रं ततो दण्डं नयेन्नृषु। एवं कुर्वल्लभेद्धर्मं पक्षपातविवर्जनात्॥
(महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय - २१२, श्लोक - २९)

शास्त्रों को ठीक से जानकर राजा दण्ड का विस्तार प्रजा में करे। इस प्रकार से पक्षपात-रहित शासन से वह धर्मजन्य पुण्य को प्राप्त करता है। और्व ऋषि ने राजा सगर को राजनीति के वर्णन में ऐसी ही बात कही है -

दण्ड्यांस्तु दण्डयेद्दण्डैरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि।

अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्यांश्चापि दण्डयन्।
नृपतिर्वाच्यतां प्राप्य चौरकिल्विषमाप्नुयात्॥

जो दण्ड के भागी हैं, उन्हें राजा दण्ड दे। जो दण्ड के भागी नहीं हैं, उन्हें दण्ड नहीं दे। इसका उल्टा करने से (दोषी को छोड़ने एवं निर्दोष को दण्ड देने से) राजा की अपकीर्ति होती है एवं उसे चोरी का पाप लगता है।

अभिशस्तेषु चोरेषु घातकेष्वाततायिषु॥
सततं पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत्। नान्यत्र दण्डपारुष्यं कुर्यान्नृपतिसत्तमः॥
वाक्पारुष्यं च सर्वत्र नैव कुर्यात् कदाचन। रक्षणीयं सदा सत्यं सत्यमेकं परायणम्॥

जिनके ऊपर व्यभिचार फैलाने का, चोरी करने का, हत्या का, आतातायी होने (आतंकवाद, आगजनी, जहर देना, अपहरण आदि) का आरोप लगा हो, उनके समक्ष राजा कठोरतम दण्ड का आचरण करे। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों में उतनी कठोरता न रखे। सदैव डाँटता ही न रहे, अपितु सत्य का आचरण करते हुए सत्य की रक्षा करे।

सामदानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम्।
ज्ञात्वोपायांस्तु तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत्॥
साम्नस्तु विषये भेदो मध्यमः परिकीर्तितः। दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते॥
दानस्य विषये दण्डो ह्यधमः परिकीर्तितः। दण्डस्य विषये दानं तदप्यधममुच्यते॥
साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधमः स्मृतः। सौजन्यं सततं ज्ञेयं भूभृतो भेददण्डयोः॥
साम्नो दानस्य च तथा सौजन्यं याति गोचरे॥
(कालिकापुराण, अध्याय - ८४)

साम, दान, दण्ड एवं भेद ये चार नीतियां हैं। जिनमें उचित समय एवं परिस्थितियों का विचार करके इनका प्रयोग करे। जहां शत्रु से मित्रता की जा सकती है, वहां उसके दल में फूट डालने को मध्यमस्तरीय नीति कहा गया है। जहां धन देकर बात बनानी है वहां बिना धन दिए समझौता कर लेने वाले की नीति उत्तम कही गयी है। जहां धन देना है, वहां दण्ड देने की नीति को अधम कहते हैं तथा जहां दण्ड देना है, वहां उल्टे ही धन देने की नीति तो और भी अधम है। भेद और दण्ड, एवं साम तथा दान का सामंजस्य उचित कहा गया है।

समाज को दण्ड की आवश्यकता ही क्यों है, इस विषय में कहते हैं,

अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत्।
यस्माद्दण्डो दमयति अदण्ड्यान्दमयत्यपि। दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - २२४, श्लोक - १७)

यदि राजा दण्ड नहीं देता है तो वह घोर अन्धकारमय नरक में जाता है। दण्ड दुष्टों को दबाता है तथा जिन्होंने अभी तक अपराध नहीं किया है उन्हें भी भविष्य में ऐसा करने से रोकता है, दमन करने से ही इसे विद्वानों ने "दण्ड" कहा है।

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः। राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते॥
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि। एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय २२५, श्लोक - १५-१६)

सोये हुए (अविवेकी) लोगों में दण्ड ही जगता है। विद्वानों ने दण्ड को ही धर्म कहा है, क्योंकि राजा के दण्ड के भय से पापी मानसिकता वाले भी पाप नहीं करते हैं। कुछ लोग धरती के राजा के दण्ड से भय से पाप नहीं करते तो कुछ लोग परलोक के यमराज के दण्ड के भय से पाप नहीं करते। चाहे जहां की भी बात हो, यह सिद्ध है कि दण्ड में सभी आश्रित हैं। दण्ड देने के लिए ही ब्रह्माजी ने राजा को बनाया है।

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा।
(मत्स्यपुराण, अध्याय - २२४, श्लोक - ०१)

शब्दकल्पद्रुम में दुर्गादास के मत से दण्ड की परिभाषा में कहते हैं - दण्डयति दण्डापयति अपराधिनं राजा अर्थात् राजा अपराधियों को दण्ड (स्वयं भी) देता है एवं दूसरे (अधिकारियों) से दिलाता भी है। भगवान् भी गीता में कहते हैं - दण्डो दमयतामस्मि ... दण्ड का अर्थ केवल शारीरिक दण्ड या मृत्युदण्ड नहीं है। स्मृतियों का वचन है -

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्यात् धिग्दण्डं तदनन्तरम्॥
तृतीयं धनदण्डन्तु वधदण्डमतः परम्॥
अपराद्धेषु भूपालो दण्डं कुर्य्याद्यथाविधि॥
अन्यथाकरणात्तस्मात् राजा भवति किल्विषी॥

राजा अपराधी को पहले वाचिक दण्ड (डांट फटकार) दे। उससे भी न सुधरे तो धिग्दण्ड (लोगों के द्वारा सामाजिक बहिष्कार एवं निंदा आदि) दे। उससे भी न सुधरे तो अर्थदण्ड (जुर्माना, कुर्की आदि) दे। इसके बाद भी अपराधी न सुधरे तो अबसे अंत में उसे मृत्युदण्ड दे। इस प्रकार से अपराधी के अपराध एवं उसके आगे के आचरण को देखते हुए राजा दण्ड दे। ऐसा नहीं करने पर राजा को भी पाप लगता है।

न शक्या ये स्वयं कर्तुं चोपायत्रितयेन तु। दण्डेन तान्वशीकुर्याद्दण्डो हि वशकृत्परः॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड - ०२, अध्याय - ७०, प्रथम श्लोक)

जो लोग शेष तीन (साम, दान, भेद) से नियंत्रित न हों, उन्हें राजा अपने दण्ड से वश में करे, क्योंकि वश में करने के लिए दण्ड से अच्छा उपाय कुछ नहीं है।

अपराधानुरूपेण दुष्टं दण्डेन शासयेत्।
धर्मः प्रवर्तते तत्र यत्र दण्डरुचिर्नृपः। न धर्मो विद्यते तत्र यत्र राजा क्षमान्वितः॥
(महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय २१५, श्लोक - ३०)

दुष्टों पर उनके अपराध के अनुरूप दण्ड देकर शासन करे। जहां जहां दण्ड देने में रुचि रखने वाला राजा होता है, वहां वहां धर्म का वास होता है। जहां राजा केवल क्षमा ही करता है, वहां धर्म नहीं रहता। आचार्य चाणक्य भी कहते हैं -

प्रव्रज्यासु वृथाऽऽचारान् राजा दण्डेन वारयेत्।
(अर्थशास्त्र, तृतीय अधिकरण)

संन्यास लेकर जो अधर्म का आचरण करे, उसे राजा दण्ड देकर दूर हटाये।

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये।
तान्धर्मविघ्नकर्तृंश्च राजा दण्डेन पीडयेत्। न चैतान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः॥
(नारदपुराण, पूर्वार्ध, अध्याय - १४ श्लोक - ५५-५६)

जो वेद एवं स्मृति से विरुद्ध हो प्रायश्चित्त को कहते हैं, जो धर्म के कार्य में विघ्न डालते हैं, उन्हें राजा दण्ड से पीड़ित करे। शेष को राजा कामनाओं के वशीभूत होकर, दण्डित न करे।

अब आगे पितामह भीष्म का उपदेश महाराज युधिष्ठिर के प्रति देखें -

यज्ञो विद्या समुत्थानमसंतोषः श्रियं प्रति। दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम्॥
(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय - २३, श्लोक - १०)

यज्ञ करना, विद्या सीखना, राज्य में विकास कार्य करना, धन के प्रति असन्तोष रखना (ताकि अर्थव्यवस्था बढ़ती रहे), उग्रता के साथ दण्ड को धारण करना (दण्ड देना), एवं प्रजाओं का पालन करना, यह राजा कर्तव्य है।

एषां ज्यायस्तु कौन्तेय दण्डधारणमुच्यते।
बलं हि क्षत्रिये नित्यं बले दण्डः समाहितः॥
(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय - २३, श्लोक - १३)

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! इनमें दण्डधारण को श्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि क्षत्रिय का बल दण्ड में ही समाहित है।

सुद्युम्नश्चापि राजर्षिः श्रूयते दण्डधारणात्। प्राप्तवान्परमां सिद्धिं दक्षः प्राचेतसो यथा॥
(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय - २३, श्लोक - १६)

पूर्वकाल में राजर्षि सुद्युम्न भी दण्डधारण के कारण ही प्रचेतापुत्र दक्ष के समान सिद्धि को प्राप्त कर गए थे।

राजभिर्धृतदण्डा वै कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय - २३, श्लोक - ४४)

जिन लोगों ने पाप किया है, उन्हें यदि राजा से (शास्त्रोक्त) दण्ड मिलता है, तो वे भी निर्मल होकर पुण्यात्माओं के समान स्वर्ग को जाते हैं।

प्रमाणज्ञो हि शक्नोति दण्डयोनौ विचक्षणः।
अप्रमाणवता नीतो दण्डो हन्यान्महीपतिम्॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय - २४, श्लोक - १४)

जो प्रमाण (वेद, शास्त्र एवं घटनाक्रम आदि को) जानता है, वही दण्ड का उचित विचार

कर सकता है। जो राजा वेदादि शास्त्र तथा लौकिक घटनाक्रम आदि प्रमाणों के ज्ञान के बिना ही दण्ड देने लगता है, उसका दिया गया दण्ड उसका ही नाश कर देता है। इसीलिए दण्ड देने का अधिकार और उसके क्रियान्वयन का अधिकार भी राजा का ही है। हां, कार्यगौरव से राजा सब अकेले नहीं कर सकता इसीलिए अष्टप्रकृति के माध्यम से सब कुछ संचालित करता है। राजा पृथु तो इन्द्र को दण्ड देने के लिए स्वयं ही उठ खड़े हुए थे। भूदेवी को भी उन्होंने स्वयं ही दण्डित किया था। इसी घटना के बाद उन्होंने भूमि को पुत्री मान लिया था एवं इसीलिए इस धरामण्डल का नाम पृथ्वी पड़ा। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, उसका नाम पृथ्वी जिस घटना के बाद पड़ा, उसी से सिद्ध होता है कि राजा स्वयं ही दण्ड का क्रियान्वयन करता है।

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम्।
भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥
यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः।
तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध ०४, अध्याय - १७, श्लोक - २२-२३)

महाराज पृथु ने कहा - वसुधे ! मेरे शासन को न मानने के कारण मैं तुम्हें मार डालूंगा क्योंकि तुम समयानुसार अन्न, वनस्पति, औषधि आदि का उचित उत्पादन नहीं कर रही हो। इसी दुष्टाचरण के कारण मैं तुम्हें दण्ड दूंगा। ऐसे दण्डधारी राजा पृथु की स्तुति में प्रजा कहती है -

दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः। शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥
मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः।
प्रजासु पितृवत् स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥
देहिनां आत्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः।
मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिः असाधुषु ॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ४, अध्याय - १६, श्लोक - १६-१८)

ये महाराज पृथु अपने व्रत (आचरण) में दृढ़, सत्यनिष्ठ, ब्राह्मणभक्त, एवं वृद्धजनों की सेवा करने वाले हैं। सभी प्राणियों को शरण प्रदान करने वाले हैं, सबका सम्मान करते हैं, दबे

कुचले लोगों के ऊपर कृपा करने वाले हैं। दूसरे की स्त्रियों को माता के समान समझते हैं एवं अपनी पत्नी को अपना ही आधा भाग समझकर व्यवहार करते हैं। ये सभी प्रजाओं का पिता के समान स्नेह और पालन करते हैं एवं ब्रह्मवादी महात्माओं के सेवक हैं। सभी देहधारियों को अपने समान मानते हैं, अपने परिजनों की प्रसन्नता को बढ़ाते हैं, किसी प्रकार की आसक्ति एवं व्यसन से परे हैं तथा *दुष्टों को दण्ड देने के समय* यमराज के समान हैं। राजा पृथु के अवतार के समय ही भविष्यवाणी की गई थी -

नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि। दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः॥

जिसने अपराध न किया हो, ऐसे व्यक्ति को ये दण्ड नहीं देंगे, भले ही वह इनका पुत्र हो या शत्रु। जिसने अपराध किया है, उसे ये अवश्य ही दण्ड देंगे चाहे वह इनका अपना पुत्र ही क्यों न हो। इस प्रकार से ये धर्म के मार्ग पर स्थित रहेंगे। राजा परीक्षित् भी कलियुग को दण्ड देने के लिए स्वयं उद्यत हुए थे।

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः। अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥
(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध - ०१, अध्याय - १७, श्लोक - ११)

राजाओं का यह परमधर्म है कि जो कष्ट में है, उसके कष्ट को दूर करे। इसीलिए प्राणियों से द्रोह करने वाले इस (कलियुग) को मैं मार डालूंगा।

विष्णुस्मृति (बृहत्) के तृतीय अध्याय में राज्यधर्म के निम्न नियम हैं -
अपराधानुरूपं च दण्डं दण्ड्येषु दापयेत्। सम्यग्दण्डप्रणयनं कुर्यात्।
द्वितीयं अपराधं न स कस्यचित्क्षमेत्।

वह (राजा) अपराधियों को उनके अपराध के अनुरूप दण्ड दे। दण्ड सदैव उचित दे एवं दुबारा वही अपराध करने पर बिल्कुल क्षमा न करे।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति निर्भयः।
प्रजास्तत्र विवर्धन्ते नेता चेत्साधु पश्यति॥
(विष्णुस्मृति (बृहत्) , तृतीय अध्याय, श्लोक - ९५)

जहां पर श्यामवर्ण एवं लाल नेत्रों वाले दण्ड (दण्ड देवता का सांकेतिक रूप) विचरण करता है, वहीं प्रजा का विकास होता है एवं नेता को भी सभी अच्छा कहते हैं।

राजानः पितरः प्रोक्ताः पुत्रा जानपदास्तथा।
ततो भूपाः पालयन्ति प्रजाः पुत्रमिवौरसान्॥
पौरलोके तथा कुर्याद्यथा स्नेहो निजात्मजे।
प्रजापीडाकरा ये च भूपाला अतिपापिनः॥
शिरःस्था विपदस्तेषां विज्ञेया दीर्घदर्शिभिः।
विवेकिनो महीपालाः पालयन्ति यथा प्रजाः॥
तथा तानपि देवेशः पालयत्यनिशं हरिः।
प्रजानां पालनं दण्डं द्वेऽपि राज्ञे शुभावहे॥
द्वाभ्यां विवर्जिता भूपास्ते विज्ञेया नृपाधमाः।
दुष्टानां शासनं चैव शिष्टानां प्रतिपालनम्॥
(पद्मपुराण, क्रियाखण्ड, अध्याय - २१, श्लोक - ६८-७२)

शास्त्र में राजाओं को पिता एवं प्रजा को पुत्र कहा गया है। इसीलिए (धर्मात्मा) राजा, अपनी प्रजा का पुत्रवत् ही पालन करते हैं। जैसे राजा अपने पुत्र से प्रेम करता है, वैसा ही प्रेम वह अपनी प्रजा से भी करे। प्रजा को कष्ट देने वाले राजा अत्यंत पापी कहे गए हैं। ऐसे दुष्टों के ऊपर सदैव संकट बना रहता है, ऐसा दूरदर्शी महात्मा कहते हैं। जिस प्रकार से विवेकी राजागण अपनी प्रजा का पालन पोषण करते हैं, भगवान् विष्णु भी उन राजाओं का पालन पोषण वैसा ही करते हैं। राजा के लिए दो कार्य शुभता को देने वाले हैं, एक तो प्रजा का पालन और दूसरा उसे दण्ड देना। ये दोनों कार्य जो राजा नहीं करते, उन्हें राजाओं में अधम जानना चाहिए। दुष्टों को दण्ड देना एवं अच्छे लोगों का पालन करना चाहिए।

इसीलिए श्रीरामजी ने भी शम्बूक को स्वयं ही दण्ड दिया क्योंकि राजा स्वयं भी दण्ड का क्रियान्वयन करता है। आज के काल में भी शिवाजी महाराज, कुमार स्कन्दगुप्त, कुमार छत्रसाल, महारानी अहल्याबाई आदि अनेकों परम्परागत शास्त्रनिष्ठ शासकों ने स्वयं भी अनेकों बार दुष्टों को अपने हाथों से दण्ड दिया है। रामजी ने कभी स्वयं दण्ड दिया है, कभी दूसरे से दिलवाया है। यथा, जब शूर्पणखा दुष्टता कर रही थी तो लक्ष्मण से दण्ड दिलवाया और जब बालि दुष्टता कर रहा था तो स्वयं दण्ड दिया। यह राजा की इच्छा और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। श्रीराम जी ने बालि से कहा है -

तद्व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन् दण्डोऽयम्प्रतिपादितः ॥

न हि लोक विरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः। दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरि यूथप ॥
(वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग - १८, श्लोक - २०-२१)

हे वानरराज ! तुम्हारे आचरण से धर्म का लोप हो जाने के कारण तुमने काम के वशीभूत होकर अपने भाई की पत्नी का बलपूर्वक उपभोग किया है इसीलिए तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। जो समाज एवं धर्म के विपरीत जाकर निंदनीय कर्म करता है, मैं समझता हूँ कि उसे नियंत्रित करने के लिए दण्ड के अलावा कोई और उपाय नहीं है।

रामजी किसी और से शम्बूकवध करवा सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया - तीन कारणों से नहीं किया।

१) शम्बूक को कोई और नहीं मार सकता था क्योंकि वह वास्तव में जंघासुर नामक असुर था एवं पार्वती देवी के वरदान से युक्त था (सन्दर्भ - महाभारततात्पर्यनिर्णय)

२) उसे कोई और मार भी देता तो शम्बूक का उद्धार नहीं होता, साथ ही उसके साथ किसी दृष्टि से पक्षपात् की बात सम्भावित हो सकती थी, इसीलिए श्रीराम जी ने स्वयं मारा क्योंकि वे "ब्रह्मरूप महाकाल" हैं। (सन्दर्भ - भुशुण्डि महारामायण)

३) श्रीराम जी ने उसकी इच्छा पूछी तो उसने कहा कि मैं तपस्या करके देवता बनना चाहता हूँ (हालांकि उसने ये नहीं कहा कि देवता बनकर वह संसार का संहार करेगा)। तो राम जी ने उसका (आसुरी देह एवं आसुरी विचार, दोनों का) वध किया, उसकी इच्छानुसार तत्काल देवता भी बना दिया और ब्राह्मणपुत्र, जो शम्बूक के संहारक तपस्या की ऊर्जा से मर गया था, उसे जीवित भी कर दिया। (सन्दर्भ - पद्मपुराण)

इस प्रकार से रामजी ने शम्बूक के साथ अत्याचार नहीं किया, उस पर कृपा ही की। शम्बूक यदि तपस्या करते ही रहता तो उसे देहजन्य कष्ट भी होता, उसकी तपस्या की कठोर ऊर्जा से बच्चे मरते रहते। बाद में धर्मविरुद्ध उग्र तप करने से नरक भी जा सकता था अथवा वह यदि देवता बन भी जाता तो दुष्टबुद्धि के कारण संसार का संहार ही करता। किन्तु श्रीराम जी ने कितना सुंदर समाधान किया, शम्बूक को मारकर उसे कठोर तपस्या के अनधिकृत परिश्रम से बचाया। वह जिस इच्छा से तपस्या कर रहा था, उसे ध्यान में

रखते हुए उसे तुरन्त देवता भी बनाया, साथ ही रामजी के संसर्ग से उसकी लोकसंहार की दुष्टबुद्धि भी चली गयी, जैसे रामजी के हाथों उद्धार होने से कबन्ध आदि राक्षस भी शुद्ध विचार के हो गए थे। शम्बूक की तपस्या की नकारात्मक ऊर्जा से जो मर था, उस ब्राह्मणपुत्र को भी जीवित कर दिया। ब्राह्मण, अपना बेटा पाकर प्रसन्न, शम्बूक तुरन्त अपने लक्ष्य में सफल होने, देवता बन जाने के कारण प्रसन्न। सब मङ्गल हो गया। यह है श्रीराम कथा की दिव्यता और निष्पक्ष मर्यादा, जो मूढ़बुद्धि लोगों एवं बिना विचार किये, अश्रद्धा के कारण ग्रंथों को प्रक्षिप्त घोषित करने वाले "प्रक्षिप्त पीठाधीश्वरों" की समझ से बाहर है।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

श्रीराम ने तलवारसे शम्बूकका सिर काट डाला। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि इधर शम्बूक का सिर कटा और उधर ब्राह्मणबालक जीवित! यहाँ कौन सा कर्मसिद्धान्त चरितार्थ हुआ ?

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

इसका उत्तर पहले भी दे चुका हूँ किन्तु अन्तिम बार पुनः बताता हूँ। शम्बूक का सिर कटा और ब्राह्मण बालक जी उठा, इस बात पर आपको क्यों आश्चर्य हुआ ? भगवान् तो पूरी वानर सेना को जीवित कर दिए थे, यहां तो एक बच्चा ही है। अस्तु, केवल आप ही नहीं, वशिष्ठ जी भी इसे आश्चर्य ही मानते हैं। वशिष्ठ जी ने स्वयं निम्न बात कही -

यस्याधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि॥
पुरे वा राजशार्दूल कुरुते दुर्मतिर्नरः। क्षिप्रं स नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥

जिस राजा के राज्य में अधर्म या दुष्कृत्य होता हो, जिसके नगर में कोई व्यक्ति दुर्मति से युक्त कर्म कर रहा हो, वह राजा शीघ्र ही नरक में जाता है। जब तक उसके पाप का निवारण नहीं हो जाता है ...

चतुर्थं तस्य पापस्य भागमश्नाति पार्थिवः।
सत्त्वं पुरुषशार्दूल गच्छस्व विषयं स्वकम्॥
दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर। एवं ते धर्मवृद्धिश्च बलस्य वर्धनं तथा॥

... तब तक वह राजा उसके पाप का चतुर्थांश भोगते रहता है। इसीलिए तुम शीघ्र जाओ

और निरीक्षण करके देखो कि तुम्हारे राज्य में क्या हो रहा है, और जहां गलत होते देखो वहां उसका प्रतिकार करो। इसी से तुम्हारे धर्म एवं बल दोनों वृद्धि को प्राप्त होंगे।

भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवनम्। नारदेनैवमुक्तस्तु साश्चर्यो रघुनन्दनः ॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ३५, श्लोक - ५२-५६)

इसके बाद ही यह बालक पुनर्जीवित होगा। इस आश्चर्यजनक बात को नारद मुनि मुझे पहले ही बता चुके हैं।

इस प्रकार से हमने देखा कि न तो शम्बूक का वध कोई दूसरा कर सकता था, न ही रामजी शांत रह सकते थे। एक तो शम्बूक कोई लोकोपकारी कृत्य कर नहीं रहा था और दूसरे गुरु वशिष्ठ जी ने स्वयं ही जाकर निरीक्षण करो और समाधान करो, ऐसा आदेश राम जी को दिया था।

श्री रामाधार शर्मा का आक्षेप

यह प्रवाद नया नहीं बहुत ही पुराना है, जिसे सन्दर्भ सहित देखना चाहिये। महाभारत के शान्तिपर्व में युधिष्ठिर पितामह भीष्मसे पूछते हैं-

युधिष्ठिर उवाच
कश्चित् पितामहेनासीच्छ्रुतं वा दृष्टमेव च।
कश्चिन्मर्त्यो मृतो राजन् पुनरुज्जीवितिऽभवत् ॥शा. १५३.१ ॥

युधिष्ठिर ने पूछा- पितामह! क्या आपने कभी यह भी देखा या सुना है कि कोई मनुष्य मरकर फिर जी उठा हो!

अब यहाँ पर पितामह भीष्म एक कथानक कहते हैं कि सुनो - प्राचीनकालमें नैमिषारण्य क्षेत्र में गीध और गीदड़ का जो संवाद हुआ था वह एक इतिहास है। एक ब्राह्मण बालक बालग्रह से पीड़ित हो बाल्यकाल में ही चल बसा जिसे उनके पिता और बन्धु-बान्धव श्मशान में ले जाकर बहुत ही शोकाकुल हो गये और उसे श्मशान भूमि में डालकर लौट जाने में असमर्थ थे। तभी एक गीध ने आकर कहा कि यहाँ हजारों स्त्री-पुरुष काल के द्वारा लाये जा चुके हैं और उनके भाई-बन्धु उनको छोड़कर चले जाते हैं। तुम भी इसे छोड़कर लौट जाओ, देर मत करो। इस प्रकार विभिन्न प्रकारके तर्क-वितर्क से उनलोगों को

शीघ्रातिशीघ्र बालक को श्मशानभूमि से लौटने को उत्प्रेरित किया। गीध के वचनों को सुनकर ब्राह्मण अपने पुत्र को भूतल पर छोड़कर बन्धु-बान्धव सहित घर की ओर लौटने लगे। इतने ही में वहाँ एक सियार आया और कहा- अरे मूर्खों ! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ है। बच्चे को लाड़-प्यार कर लो। क्या पता किसी शुभ मुहुर्त में यह बालक जी उठे। फिर उसने कहा कि तुम मनुष्यों का अपने बच्चों पर प्रेम तो पशु-पक्षियों से भी कम होता है। इतना शीघ्र तो पशु-पक्षी भी अपने बच्चोंको छोड़कर नहीं जाते। इस प्रकार अनेकों तर्क देकर वह सियार इनलोगों को रोकने में सफल हो गया। पुनः गीध आया और इन्हें लौट जाने हेतु अनेकों तर्क दिये और जब लौटनेको उद्यत हुए तब फिर सियार आकर अपने तर्कों से उन्हें मोहपाश में बाँधकर ठहरने को विवश कर दिया। इस प्रकार गीध और सियार अपने-अपने तर्कों से बार-बार बन्धु-बान्धव सहित ब्राह्मणदेवता को अपने निर्णय बदलने में सफलीभूत होते रहे। तब जो सियार कहता है उसपर ध्यान दें-

श्रूयते शम्बुके शूद्रे हते ब्राह्मणदारकः।
जीवितो धर्ममासाद्य रामात्सत्यपराक्रमात् ॥शा. १५३.६७ ॥

(सियार बोला-) सुना जाता है कि सत्यपराक्रमी श्री रामजी से शम्बूक नामक शूद्र के मारे जानेपर उस धर्म के प्रभाव से एक मरा हुआ ब्राह्मणबालक जीवित हो उठा था।
इस प्रकारसे और भी तर्क-वितर्क गीध और सियार का चलता रहा और ब्राह्मण देवता प्रत्येक बार अपना निर्णय बदलते रहे। इस पर पितामह कहते हैं-

भीष्म उवाच
तथा धर्मविरोधेन प्रियमिथ्याभिध्यायिना।
श्मशानवासिना नित्यं रात्रिं मृगयता तदा ॥शा. १५३.९३ ॥
ततो मध्यस्थतां नीता वचनैरमृतोपमैः।
जम्बुकेन स्वकार्यार्थं बान्धवास्तस्य धिष्ठिताः ॥शा. १५३.९४ ॥

भीष्मजी कहते हैं- 'राजन् ! वह सियार सदा श्मशानभूमि में ही निवास करता था और अपने कार्यसिद्धि के लिये रात्रिकाल की प्रतीक्षा कर रहा था; अतः उसने धर्मविरोधी, मिथ्या और अमृततुल्य वचन कहकर उस (बालक) के बन्धु-बान्धवों को बीच में ही अटका

दिया। वे न जा पा रहे थे और न रह पाते थे, अन्त में उन्हें ठहर जाना पड़ा।' अब ध्यातव्य यह है कि शम्बूक सम्बन्धी वचन सियार के द्वारा कहा गया है (कि ऐसा सुना जाता है....) और पितामह (जो भागवत धर्मके ९वें आचार्य कहे गये हैं) कह रहे हैं कि सियार (जो अपने कार्यसिद्धि के लिये रात्रिकाल की प्रतीक्षा कर रहा था) धर्मविरोधी, मिथ्या और अमृततुल्य वचन कहकर उस (बालक) के बन्धु-बान्धवों को बीच में ही अटका दिया। अर्थात् सियार द्वारा कहे गये शम्बूकवधादि वचन धर्मविरोधी और मिथ्या भी थे। (अंततोगत्वा भगवान् शंकर द्वारा बालकको पुनर्जीवित किया जाता है, इत्यादि।) अतः यह कथानक प्रमाणित करता है कि शम्बूकवध की कथा महाभारतकाल से ही मिथ्या-प्रचारित है। फलतः कहा जा सकता है कि इतनी सारी विसंगतियों के साथ शम्बूकवध-कथानक मिथ्या-प्रचारित और प्रक्षिप्त ही है।

श्रीभागवतानंद गुरु का प्रत्युत्तर

आपका यह कुतर्क तो वास्तव में ही हास्यास्पद है। मिथ्या और सत्य पर तो बाद में आयेंगे, पहले तो यह बताएं कि यदि आप जानते थे, यह बात महाभारत काल में भी थी तो जब श्रीरामभद्राचार्य जी ने कहा कि इसे बाद में गुणाढ्य बौद्ध ने जोड़ा है, उस समय आपने क्यों नहीं यह कहा कि यह बात तो महाभारत काल में भी थी। आपका उद्देश्य शास्त्रविजय नहीं, स्वपक्षविजय मात्र है। हमने आशा की थी कि आप कोई ऋषिवाक्य प्रस्तुत करेंगे किन्तु आप तो शृगालवाक्य लेकर आ गए, अस्तु। जिस घटना का उल्लेख यहां किया गया है, वह एक श्मशान में घटित हुई। उस बच्चे की लाश को खाने के लिए सियार और गीध लड़ रहे थे। गीध चाहता था कि बच्चे के परिजन सूर्यास्त से पहले ही चले जाएं और वो बच्चे को खा सके। जबकि सियार यह चाहता था कि सूर्यास्त तक परिजन टिके रहें ताकि अन्धकार होने पास गीध भाग जाए और सियार अकेले ही उस शव को खा सके।

अब इस बात को लेकर आपलोग लोग ग्रंथों को मिलावटी सिद्ध करने चले हैं। यहां पर उनकी बातों को धर्मविरुद्ध इसीलिए कहा गया है क्योंकि वे भूख के कारण अपने स्वार्थ से धर्म की बातों को तोड़मरोड़ कर तर्क दे रहे थे। आपने कहा कि सियार ने कहा, कि *मैंने शम्बूक के बारे में सुना है*। इसीलिए यह बात काल्पनिक है, और उस महाभारत काल में भी शम्बूक वध वाली अफवाह थी। बड़ी विचित्र बात है ! अब क्या सियार यह कहे, कि मैंने गुरुकुल में जाकर शम्बूक वध का वृत्तान्त पढ़ा है ? यह बात कहता क्या ?? वह तो

श्मशानवासी पशु है, वह तो यही कहेगा कि मैंने सुना है, क्योंकि पढ़ तो सकता नहीं। पुनश्च, यदि महाभारत काल में भी यह सब बातें लोग कहते थे, जानते थे तो फिर यह बात अफवाह या प्रक्षिप्त कैसे ? क्योंकि आपके जगद्गुरु प्रक्षिप्त पीठाधीश्वर का तो कहना है कि इसे गुणाढ्य नामक बौद्ध ने बाद में जोड़ा। तो यदि शम्बूक वध गुणाढ्य की कल्पना है तो महाभारत काल में कैसे चर्चित रहा, भीष्म पितामह ने कैसे इसका वर्णन कर दिया ?

वहां पर शम्बूक का उदाहरण देकर सियार उस बच्चे के परिजनों में यह मिथ्या आशा जगा रहा था ताकि वे लोग श्मशान में रुके रहें, उनके सामने गीध उस शव को न खा सके एवं सूर्यास्त के बाद जब परिजन और गीध दोनों चले जाएं तो सियार अकेले उसे खा सके। वहीं दूसरी ओर गीध उन परिजनों के मन में वैराग्य जगा रहा था ताकि वे शीघ्र चले जाएं एवं सूर्यास्त से पहले ही वह उस बच्चे के शव को खा सके। बेचारे परिजन, उन दोनों की बात को सुनकर, भ्रमित होकर कभी जाने लगते तो कभी ठहर जाते।

स्वकार्यबद्धकक्षौ तौ राजन्गृध्रोऽथ जम्बुकः।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ शास्त्रमालम्ब्य जल्पतः॥
शोकदैन्यसमाविष्टा रुदन्तस्तस्थिरे तदा।
स्वकार्यकुशलाभ्यां ते संभ्राम्यन्ते ह नैपुणात्॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय - १५२, श्लोक - १०९-११०)

बस, इतनी सी ही बात है। इसीलिए भीष्म जी ने उनके वचनों को मिथ्या एवं धर्मविरुद्ध कहा क्योंकि उसमें कपट छिपा था। यदि हम सियार के इस शम्बूक सम्बन्धी "उदाहरण" को "धर्मविरोधी और मिथ्या" मान लें तो उसने तो यह भी कहा है, कि

अथ रुद्रः कुमारो वा ब्रह्मा वा विष्णुरेव च।
वरमस्मै प्रयच्छन्ति ततो जीवेदयं शिशुः॥
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय - १५२, श्लोक - ७७)

यदि भगवान् शिव, कुमार कार्तिकेय, ब्रह्मा या विष्णु इसे वरदान दें तो यह बच्चा जीवित हो सकता है।

अब बताएं कि शम्बूक के उदाहरण की भांति, सियार का यह वचन भी धर्मविरुद्ध है क्या ? क्या देवताओं में किसी को पुनर्जीवित करने की क्षमता नहीं है ? वैसे भी इस प्रसङ्ग के अंत में शिव जी ने बच्चे को जीवित कर ही दिया था। इसी प्रकार से श्रीराम जी की कृपा

से ब्राह्मणपुत्र भी जीवित हुआ था। इसमें बुद्धिमानों के लिए संदेह का कोई स्थान नहीं है। जैसे सियार का यह वचन उचित है कि देवताओं की कृपा से बच्चा पुनर्जीवित हो सकता है, वैसे ही शम्बूक के उदाहरण का वचन भी सत्य है। हां, उसने जो कहा कि "मैंने सुना है, ऐसा सुना जाता है" तो इसका कारण यह है कि सियार होने से वह विद्यालय जाकर पढ़ता नहीं, अपितु वह लोगों से सुन ही सकता था। किन्तु इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि महाभारत के समय भी लोग ये सब जानते थे, इसे बाद में किसी गुणाढ्य ने नहीं जोड़ा। जैनियों और बौद्ध भिक्षुओं ने कुछ बातें अनुचित कही हैं रामकथा के सन्दर्भ में। किन्तु उन्होंने हमारे ग्रंथों में ये सब नहीं जोड़ा अपितु अपने सम्प्रदायोक्त अलग से ग्रंथ ही लिख लिए। हमारे ग्रंथ में एक सूत्र नहीं जोड़ सकते थे वे लोग क्योंकि निरंतर उनसे शास्त्रार्थ चल रहा था और मिलावट करना सम्भव ही नहीं था, सभी लोग अपने अपने ग्रंथों के रक्षण में लगे थे, तुरन्त पकड़ में आ जाते।

फिर भी जिन्हें लगता है कि महाभारत काल में भी यह "प्रक्षेप" था, उनकी बुद्धि को ब्रह्मा भी प्रणाम करते होंगे, क्योंकि जिस बात को इन पांच हज़ार वर्ष तक के हज़ारों अवतारी आचार्य एवं विद्वान् नहीं जान सके, उसे सीधे सीधे आज के ये प्रक्षिप्तवादी लोग जान गए। एक और कुतर्कपूर्ण बात है कि मरा व्यक्ति जीवित नहीं होता, इसीलिए ब्राह्मणपुत्र के पुनर्जीवित होने की बात ही गलत है। यह बात सत्य है कि सामान्यतः मरा व्यक्ति जीवित नहीं होता, किन्तु दैवीय हस्तक्षेप से ऐसा होता है, यह भी सत्य है। स्वयं श्रीराम जी ने ही रावण वध के बाद इन्द्र से कहकर पूरी वानर सेना को पुनर्जीवित करा दिया था -

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः॥
(वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग - १२३, श्लोक - ०५)

आईये, शास्त्रों में वर्णित कुछ ऐसे ही पुनर्जीवन की घटनाओं का प्रमाण देखते हैं। गर्ग संहिता के अश्वमेधखण्ड के तैंतीसवें अध्याय में वर्णित मृत बल्वलपुत्र के पुनर्जीवित होने की बात भी ऐसा ही एक प्रमाण है। सत्यवान् को सावित्री देवी ने अपने व्रत से जीवित करवाया था, यह बात तो विश्वप्रसिद्ध है। स्वयं अर्जुन भी युद्धभूमि में अपने पुत्र बभ्रुवाहन के हाथों मारे गए थे, जिसके बाद उन्हें उलूपी के द्वारा दिये गये मणि के प्रभाव से जीवित किया गया था -

अयं तु मे मणिर्दिव्यः समानीतो विशांपते।

मृतान्मृतान्पन्नगेन्द्रान्यो जीवयति नित्यदा ॥
एनमस्योरसि त्वं च स्थापयस्व पितुः प्रभो ।
सञ्जीवितं तदा पार्थं स त्वं द्रष्टासि पाण्डवम् ॥
इत्युक्तः स्थापयामास तस्योरसि मणिं तदा ।
पार्थस्यामिततेजाः स पितुः स्नेहादपापकृत् ॥
तस्मिन्न्यस्ते मणौ वीरो जिष्णुरुज्जीवितः प्रभुः ।
चिरसुप्त हवोत्तस्थौ मृष्टलोहितलोचनः ॥
(जैमिनीय महाभारत, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय ८१, श्लोक – ०९-१२)

उलूपी ने बभ्रुवाहन से कहा - ये मेरी दिव्य मणि है। इसके प्रभाव से मरे हुए सर्पराज जीवित हो जाते हैं। तुम इसे अपने पिता (अर्जुन) के हृदय पर रख दो, उसके बाद तुम उन्हें जीवित देखोगे। उलूपी के ऐसा कहने पर बभ्रुवाहन ने ऐसा ही किया और उस मणि के स्पर्श से अर्जुन उसी प्रकार से जीवित होकर उठ गए, जैसे सोया हुआ व्यक्ति जगता है। कुछ और प्रसङ्गों के प्रमाण देखें -

पातिव्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थनात् ।
जीवितो विप्र एको हि मृतो वाराहशापतः ॥
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड, अध्याय - ५४, श्लोक – ७९)
(पाठभेद में त्रिसुरार्थदात् अथवा त्रिसुरार्चनात् भी मिला है)

एक ब्राह्मण, जो वाराहश्राप से मृत हो गया था, उसे अत्रि की पत्नी अनसूया ने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव एवं त्रिदेवों की आराधना से पुनर्जीवित कर दिया था।

मृतोऽपि ब्राह्मणः कुष्ठी संस्पृष्टो रविरश्मिभिः ॥
पुनरुत्थापितोऽस्माभिः कृतश्च तरुणः पुनः ॥
(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय - १३५, श्लोक – ९४-९५)

(यहां माण्डव श्राप से एक व्यक्ति मर गया था। उसकी पत्नी को ऋषियों ने आशीर्वाद देकर उसे पुनर्जीवित किया है। ऋषियों ने कहा -) यद्यपि यह कुष्ठरोग से ग्रस्त ब्राह्मण सूर्यकिरणों के स्पर्श होते ही मर गया था, तथापि इसे हमलोगों ने पुनर्जीवित करके युवा

कर दिया है। महाभारत में ऋषिकुमार रुरु के द्वारा अपनी आयु से अपनी मृत प्रेमिका (और भावी पत्नी) को पुनर्जीवित करने का वर्णन है -

प्रमद्वरा रुरोर्भार्या देवदूत यदीच्छसि। उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरोरेव समन्विता॥
(सौतिरुवाच)
एवमुक्ते ततः कन्या सोदतिष्ठत्प्रमद्वरा। रुरोस्तस्यायुषोऽर्धेन सुप्तेव वरवर्णिनी॥
(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ०९, श्लोक - २१-२२)

हे देवदूत ! यदि रुरु की पत्नी प्रमद्वरा को पुनर्जीवित करना चाहते हो तो ठीक है। यह रुरु की आधी आयु का आश्रय लेकर जी उठे। इस प्रकार कहने पर वह प्रमद्वरा नामकी कन्या, रुरु के आधे आयु को पाकर वैसे ही जीवित हो गयी जैसे सोया हुआ व्यक्ति जग जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मृत गुरुपुत्र जीवित करके वापस लाया था, यह तो सर्वविदित बात है।

अधीत्य वेदशास्त्राणि तस्मात्तौ द्विजपुङ्गवात्।
मृतं पुत्रं समानीय ददतुस्तस्य दक्षिणाम्॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - २४६)

बलराम और कृष्ण ने अभी वेदशास्त्रों को उन ब्राह्मणश्रेष्ठ से पढ़ा और दक्षिणा के रूप में उनके मृत पुत्र को (यमलोक से) वापस लाकर दे दिया।

श्रीमद्देवीभागवत महापुराण आदि में वर्णन है कि परीक्षित् को डंसने के लिए जब नागराज तक्षक जा रहे थे तो कश्यप नाम के एक ब्राह्मण मिले जिन्होंने कहा कि वे मरने के बाद भी मंत्रबल से राजा को जीवित कर देंगे और उन्होंने इसका प्रमाण भी तक्षक को दिया था।

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रेन्द्र विषनाशकरः किल।
जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल ॥
(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध - ०२, अध्याय - १०, श्लोक - ०५)

बाद में तक्षक ने राजा के श्राप, नहीं टलने वाली भवितव्यता को बताकर और धनादि के दान से ब्राह्मण को वापस भेज दिया था। ये ब्राह्मण कश्यप, प्रजापति कश्यप ऋषि से भिन्न हैं। ये सर्पविद्या में निपुण थे एवं इनका उस विद्या पर लिखा एक प्राचीन ग्रंथ आज

भी हमारे पास सुरक्षित है।

ऐसे ही राजा संजय के पुत्र सुवर्णष्ठीवी की कथा का वर्णन है। यह बच्चा अद्भुत था। इसके शरीर से मल नहीं, स्वर्ण निकलता था। इसके आंसू, पसीना, थूक, मल, मूत्र आदि के स्थान पर स्वर्ण ही निकलता था। इसीलिए डाकुओं ने सोचा कि इसे मारकर पेट से सारा सोना निकाल लेंगे और उन्होंने वही किया। किन्तु (सोने का अंडा देने वाली मुर्गी के समान) कुछ प्राप्त न हुआ। बाद में नारद जी ने कृपा करके राजा संजय के उस चमत्कारी पुत्र को पुनर्जीवित कर दिया था।

नारदोऽपि नरेंद्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात्। आनयामास तरसा तथारूपं यथा हतम्॥
(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व, अध्याय - १३, श्लोक - ४३)

बृहस्पतिपुत्र कच, जिसे राक्षसों ने कई बार मार दिया था एवं देवयानी के कहने पर शुक्राचार्य जी ने संजीवनी विद्या से उसे कई बार पुनर्जीवित भी कर दिया था, इस कथा को भला कौन नहीं जानता है ?

अथैह्येहीति शब्देन मृतं सञ्जीवयाम्यहम्।
ततः सञ्जीवनीं विद्यां प्रयुक्त्वा कचमाह्वयत्॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय - २५, श्लोक - ३५)

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्गीता के माहात्म्य प्रसङ्ग में एक गीतापाठी तपस्वी के द्वारा राजा बृहद्रथ को पुनर्जीवित करने का वर्णन भी मिलता है -

शृणु विप्र महीपाल पितासीन्मेबृहद्रथः। प्रारब्ध हयमेधोऽसौ दैवेन निधनं गतः॥
अद्यापि तस्य देहोऽस्ति तप्ततैलेन शोषितः। तस्य संजीवनं भूयः कर्त्तुमर्हसि सत्तम॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - १८६, श्लोक - ५२-५३)

राजकुमार ने कहा - हे विप्रवर ! मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करके दैववश मर गए। उनका शरीर आज भी तेल से भरे कड़ाह से रखा हुआ है। आप उन्हें पुनर्जीवित कर दीजिए क्योंकि आप ऐसा करने में समर्थ हैं। (फिर महालक्ष्मी देवी की सम्मति से उन्होंने राजा को जीवित कर दिया था)

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भले ही सामान्य स्थिति में मरा व्यक्ति पुनर्जीवित न होता हो किन्तु दिव्य औषधि, मणि, मन्त्र या देवताओं के वरदान से जीवित होता है, ऐसे ही

श्रीरामजी की कृपा से ब्राह्मणपुत्र भी जीवित हुआ था इसमें संशय नहीं करना चाहिए और इस प्रकार से शम्बूक वध की कथा ऐतिहासिक एवं सैद्धांतिक आधार पर पूर्ण प्रामाणिक निर्विवाद है, भले कोई अपने हठ के कारण कितना भी माथा फोड़ ले।

अब मैं आपको बताता हूँ कि इन प्रक्षिप्तवाद के गिरोहों की कार्यप्रणाली क्या है। मान लीजिये कि इनके गिरोह में दस व्यक्ति हैं। प्रथम और द्वितीय विदेश में कहीं के प्रोफेसर हैं। तृतीय और चतुर्थ इसी देश के प्रोफेसर हैं। पञ्चम और षष्ठ सामाजिक हस्ती जैसे कि कवि, साहित्यकार आदि हैं। सप्तम एवं अष्टम मीडिया आदि से हैं। नवम और दशम व्यक्ति किसी स्वयंभू पीठ के राजनीतिक समर्थन एवं शासन से पुरस्कृत धार्मिक व्यक्ति हैं।

अब ये लोग अपना भ्रमजाल कैसे फैलाते हैं, ये देखिए। सबसे पहले विदेश वाले प्रोफेसर भारतीय इतिहास एवं धार्मिक ग्रंथों पर *रिसर्च* के नाम पर धर्मविरुद्ध अप्रामाणिक बातें कहीं किसी शोध के नाम पर लिखवाएंगे और फिर उसे प्रकाशित कराएंगे, साथ ही इस प्रकार से आशंका जताएँगे कि ग्रंथों में प्रक्षिप्त अंश है। उसके बाद उसी गिरोह के भारतीय प्रोफेसर दो तीन वर्ष के बाद धीरे धीरे, सेमिनार आदि में, ऑनलाइन ब्लॉग, पत्रिका आदि में उसी कथित विदेशी शोध का हवाला देते हुए कहेंगे कि ग्रंथों में प्रक्षिप्त अंश है। इसके बाद तीसरा समूह, जो कवि एवं साहित्यकार है, वह उल्टे सीधे बयानों, साक्षात्कार एवं आलेखों से इस भ्रम को और भी पुष्ट होगा तथा इतने के बाद समाज का एक बड़ा वर्ग मानने लगेगा कि हाँ, ग्रंथों में कुछ तो समस्या अवश्य है।

इसके बाद मीडिया वाले वर्ग के लोग "हिन्दू धर्म का सच" ... "जानें भगवान् राम ने क्यों किया ऐसा" ... "क्या है महाभारत का महारहस्य !!" ... आदि आदि शीर्षकों के नाम से लंबे लंबे कार्यक्रम चलाकर अनर्गल भ्रम का बीजारोपण करेंगे। अब इस भ्रम से निकलने के लिए जब समाज अपने धर्मगुरुओं की ओर देखेगा, तो उसी नवम एवं दशम व्यक्ति को, जिसे समाज विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ मानता है, उनके माध्यम से यह कहवा दिया जाएगा कि धर्म में मिलावट है, ग्रंथ ही नकली हैं, ग्रंथ ही गलत है और समाज वाले उसी को सत्य मान कर स्वयं ही इस भ्रम का प्रचार करने लगते हैं। कोई विरोध करे तो उन्हीं प्रायोजित प्रोफेसर, कवि, जगद्गुरुओं की बात का हवाला देने लगते हैं एवं स्वयं को ज्ञानी मान लेते हैं। यह गिरोह ऐसे ही कार्य करता है।

मैंने पहले भी बताया था कि इतने विशाल और परंपरासिद्ध ग्रंथों में मिलावट करना बहुत ही असंभव कार्य है, इसीलिए ग्रंथों में मिलावट करने की अपेक्षा लोगों के मस्तिष्क में

मिलावट कर दी गई और यह बैठा दिया गया कि ग्रंथ में प्रक्षिप्त अंश हैं। उस बात को पुष्ट करने के लिए अपने ही षड्यंत्र से दस बीस प्रोफेसर, कवि और फर्जी धर्मगुरुओं को खड़ा कर दिया गया। अब इनके प्रक्षिप्तवाद का आप एक उदाहरण देखें। कोई भी व्यक्ति या संस्था, जो ग्रंथों को प्रक्षिप्त मानती है, एकमत नहीं है जैसे गायत्री परिवार वाले जिन अंशों को प्रक्षिप्त मानते हैं उनको आर्य समाज वाले सही मानते हैं। आर्य समाज वाले श्रीमद्भगवद्गीता के ही कई अध्याय और श्लोकों को गलत मानते हैं क्योंकि सही मानने से उनका पूरा षड्यंत्र ही समाप्त हो जायेगा। लेकिन कई सारे सरकारी सम्मान वाले बाबा, जो टीवी चैनल पर आते हैं, वे लोग गीता जी के ऊपर भाष्य लिखकर उसे प्रामाणिक बता चुके हैं। इस प्रकार से जितने भी लोग हैं, एकमत नहीं हैं, क्योंकि वास्तव में कोई प्रक्षिप्त अंश है ही नहीं।

जिस बात को एक संस्था प्रक्षिप्त कहती है, उसी को दूसरी संस्था प्रामाणिक मानती है और वह दूसरी संस्था जिसको प्रक्षिप्त कहती है उसको पहली संस्था प्रामाणिक मानने लगती है। क्योंकि जब यह भ्रम बैठा दिया गया षड्यंत्र के द्वारा, तो यह तय किया नहीं गया कि कौन से भाग को गलत कहना है, इसलिए आशंका के आधार पर जो जो बातें, जिस जिस व्यक्ति को समझ में नहीं आईं, उस उस बात और श्लोक के मिलावटी घोषित करने का फैसला दे दिया गया। कुल मिलाकर सार यही है कि जिस व्यक्ति या संस्था के पाखण्ड को शास्त्र के जिन जिन वचनों से चुनौती मिल सकती है, उन उन वचनों को वह संस्था प्रक्षिप्त घोषित करती जाती है।

पहले कहते थे कि अंग्रेजों के समय मिलावट हुई, फिर तर्क दिया कि मुगलों के समय हुई, फिर कहते हैं कि नहीं नहीं, हूणों और बौद्धों के समय हुई और अब तो कहने लगे हैं कि महाभारत काल से ही मिलावट है। और हां, जिसने मिलावट की, उसका नाम कभी नहीं बताएंगे ये लोग। ले देकर एक गुणाढ्य का नाम सामने आया है किंतु यह नहीं बताया कि जब सभी लोग कठोरता से परम्परागत गुरुकुलों में पढ़ते थे, पूरे ग्रंथों को स्मरण रखते थे, उस समय एक अकेले गुणाढ्य ने सारे पुराण, महाभारत, रामायणों की, पूरे देश की सारी प्रतियों में उन सबकी मूल हस्तलिपि की ही नकल करते हुए इतने बड़े बड़े प्रक्षेप डाल दिये और किसी को न पता चला और न किसी ने विरोध किया !! यह कैसे सम्भव हुआ ?

समाज में तो अब लोग ग्रंथ पढ़ते नहीं, बहुत श्रद्धा हुई तो कथा सुन लेते हैं जो स्वयं ही

श्रृंगार प्रधान नर्तकी और प्रक्षिप्तवादियों के घुसपैठ से आक्रांत है। आप ग्रंथ नहीं पढ़ते किन्तु वामपंथी गिरोह पढ़ता है और जब वामपंथी आपके पास आक्षेप लेकर आते हैं तो उचित शास्त्रीय प्रमाण के अभाव में आप उन अंशों को ही गलत कहने लगते हैं। कुछ बातें समझ लीजिए -

१) कोई भी सनातनी परम्परागत ग्रंथ मिलावटी नहीं है।
२) भगवान् की किसी भी लीला में कोई अमर्यादा अथवा दोष नहीं है, यदि आपको दिखाई नहीं देता तो खराबी आंख में है, न कि दृश्य में।
३) सनातन धर्म में एक ही ग्रंथ नहीं है, या एक ही ग्रंथ में सब कुछ नहीं है। सार सबका एक ही है किंतु वर्णन सबका अलग अलग है इसीलिए समन्वय का अध्ययन आवश्यक है। यहां सैकड़ों ऋषिप्रणीत रामायण, उपनिषत्, तन्त्र, पुराण, उपपुराण, वेद, उपवेद, शास्त्र, स्मृति, उपस्मृति, भाष्य, दर्शन एवं इतिहास ग्रंथ हैं और सबके सब ठोस रूप से प्रामाणिक हैं।
४) वामपंथियों के कुतर्क का उत्तर देने के लिए अध्ययन दृढ़ करें और अध्ययन भी इस विश्वास के साथ कि ग्रंथों का एक एक अक्षर सत्य है। फिर देखिए, कैसे बिना किसी अंश में प्रक्षिप्तवाद का भ्रम किये, आप शास्त्र से ही शास्त्रीय आक्षेपों का उत्तर देने लगेंगे।

हिन्दू समाज को गिरने से बचाना है तो चार बातें स्मरण रखें -
१) अनावश्यक घमंड करके के स्थान पर यह देखें कि मैं वर्णाश्रम के अनुसार, अपने व्यवहार के कितने अंशों में धर्म की मर्यादा के अनुसार कार्य कर रहा हूँ।
२) मस्तिष्क अधिक चलाएं और वाणी कम। आज की स्वतंत्रता में कोई भी कुछ भी बोल और लिख रहा है। पहले अधिकारी जन ही बोलते थे, अब सब के सब ब्रह्मा ही बने फिर रहे हैं।
३) स्वयं को अल्पज्ञ मानकर श्रद्धापूर्वक परम्पराप्राप्त आचरणनिष्ठ आचार्यों के मार्गदर्शन में वर्णाश्रम के अनुसार शास्त्राध्ययन करें और फिर प्रतिक्रिया दें।
४) मन के संशय एवं विकारों को दूर करके कल्पना की अपेक्षा ग्रंथोल्लिखित वाक्यों को अधिक प्रधानता दें।

स्वयं श्रीहनुमान् जी प्रभु श्रीराम जी उपासना करते हुए कहते हैं कि - हे प्रभो ! आपकी यह जो लीला है, यह जो अवतार है, वह केवल राक्षसों के वध के लिए नहीं है। वह

मनुष्यरूप में इसीलिए है ताकि मानवीय आदर्शों का आचरण करते हुए आप मनुष्यों को उसी आदर्श की शिक्षा दें।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम् रक्षोवधायैव न केवलं विभोः
(श्रीमद्भागवत महापुराण, पञ्चम स्कन्ध, अध्याय - १९, श्लोकार्द्ध - ०५)

इसीलिए भगवान् की लीलाओं में दिव्य एवं प्राकृत दोनों गुणों को समयानुसार जोड़कर उसका रहस्य समझना चाहिए कि कहां उन्होंने दिव्य व्यवहार किया है, एवं कहाँ मानवों के समान प्राकृत व्यवहार किया है, अन्यथा सदैव उलझे ही रहेंगे। भगवान् के ऊपर तो देवी सती को भी संदेह हो गया था कि जब वे ब्रह्म हैं तो नारी विरह में कैसे फंस गए ? ऐसा ही प्रश्न आज भी कुतर्कबुद्धि वाले उठाते हैं और भगवान् की लीला को अपने अनुसार मोड़ने का प्रयास करते हैं। भगवान् आपकी उम्मीद के अनुसार व्यवहार नहीं करते, वे संसार के कल्याण के लिए जो आवश्यक है, उसके आधार पर लीलाकार्य करते हैं।

यदि आप अपनी हथेली को नेत्रों के सामने रखें तो सूर्य नहीं दिखेगा। इसका अर्थ है कि आपने नेत्रों की क्षमता को सीमित कर दिया है। इसका अर्थ ये कदापि नहीं है कि आपकी हथेली का आकार सूर्य जितना बड़ा हो गया है और आपने सूर्य को ढक लिया है। शास्त्रवाक्य को अपनी बुद्धि के अनुसार बदल कर मत समझिए, अपितु अपनी बुद्धि को शास्त्रवाक्य के अनुरूप श्रेष्ठ बनाइये। इस प्रकार इस श्रृंखला में यह दशम लेख पूर्ण हुआ, जिन्होंने इन्हें नहीं पढ़ा है वे सभी भागों को क्रमशः पढ़ें, ताकि प्रक्षिप्तवाद के भ्रम का निवारण हो सके। किसी को भी बाहरी आवरण से गुरु न मान लें, यह कलिकाल है। यहां तो ...

देवदेशद्विजद्रोही शास्त्रप्रक्षिप्तवाचकः।
दृष्टः प्रतिगृहं नेता ग्रामे ग्रामे जगद्गुरुः॥

देवता, देश एवं ब्राह्मण से द्रोह करने वाले "नेता", एवं शास्त्रों को प्रक्षिप्त कहने वाले "जगद्गुरु" तो आपको घर-घर एवं गांव गांव में मिल जाएंगे। इन्हें अधिक महत्व न दें। व्यक्ति के नहीं, शास्त्र के पीछे चलें।

यतो धर्मस्ततो जयः
| इति शम् |